







THE  
SANSKRĪT ŚIKSHIKĀ  
A HINDI VERSION  
OF  
THE 'SANSKRIT TEACHER'

BY

RĀO BHĀDUR VĪDYĀBHUŚHĀNĀ KĀMĀLĀŚĀNKĀRĀ PRĀNĀSĀNKĀRĀ  
TRĪVEDĪ, B A,

RETIRED PRINCIPAL P. R. TRAINING COLLEGE AHMEDĀBĀD

(HONORARY FELLOW OF THE UNIVERSITY OF BOMBAY

AND

EXAMINER IN SANSKRIT IN THE BOMBAY AND THE PANJAB UNIVERSITIES)

Translated into Hindi

BY

PĀNDĪT LĀKṢHĪMĀNĀ ŚĀSTRĪ TĀILĀNGĀ ŚĀHĪTYĀCHĀRYĀ

PROFESSOR OF SANSKRIT QUEEN'S COLLEGE BENARÉS



MACMILLAN & CO, LIMITED

LONDON, BOMBAY, CALCUTTA, AND MADRAS

1917

Price Rs 2/-

All rights reserved

PRINTED BY LENDRA NATH BHATTACHARYA  
HAIL IPESY  
40 BECHU CHATTERJEE STREET CALCUTTA

# संस्कृतशिक्षिका

अर्थात् द् गणनाकर।

रावबहादुर विद्याभूषण कमलाशङ्कर प्राणशङ्कर त्रिवेदी, बी ए,

रिटायर्ड् प्रिन्सिपल, पी आर् ट्रेनिंग् कालेज, अमरावती,

मुम्बई विश्वविद्यालयके आनररी फेलो, बम्बई तथा पलाय

विश्वविद्यालयके संस्कृत परीक्षक विरचित

‘संस्कृत टीचर्स’का

हिन्दी रूपान्तर

—

अनुवाक

पण्डित लक्ष्मणशास्त्री तैलङ्ग, साहित्याधाय,

संस्कृत प्रोफेसर, फ्री-स-कालेज,

बनारस ।

प्रकाशक

म्याक्समिलन् एण्ड कम्पनी लिमिटेड्,

लण्डन्, याचे कलकत्ता, और मद्रास ।

—  
१९१७

मूल्य २)

सर्वे हक स्वाधीन ।





## भूमिका ।

—०—

संस्कृत भाषा प्राचीन साहित्यका एक अमूल्य निधि है और यह प्रवृत्तत्वशास्त्र, भाषाशास्त्र, तथा इतर शास्त्रोंकी दृष्टिसे सब जातियोंको लाभदायक है, विशेषतः हिन्दुओंको, जिनका जीवन धम्ममय है। मातृभाषाके यथार्थ ज्ञान तथा परिपाकके लिये और धार्मिक तथा आध्यात्मिक साहित्यके—जो सभ्य जगत्का एक आदर्श है—बोधके लिये संस्कृत भाषाका अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। इसकी लालसा लोगोमें अवश्य उत्पन्न होनी चाहिये। जर्मन्, अंग्रेज, अमेरिकन् इत्यादि जातियाँ इस पर सुग्ध होकर इसके अभ्यासके लिये अपना जीवन समर्पण करती हैं।

मैं जब स्कूलों तथा कॉलेजोंमें कार्य करता था तब मेरे ध्यान में यह बात आयी कि विद्यार्थियोंमें रुचि न होनेसे संस्कृतकी बड़ी हानि हो रही है। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें संस्कृतका अनुराग उत्पन्न हो सकता और यह स्थिर भी हो सकता है यदि योग्य दिशासे उसका निरूपण किया जाय और साहित्यके बहुमूल्य खजाने उनके सामने खोले जाय। 'संस्कृत शिक्षिका' कुछ नयी रीतिपर बनायी गयी है और इसका उद्देश यह है कि संस्कृतमें विद्यार्थियोंका अनुराग उत्पन्न हो और उसका अभ्यास सुकर हो।



इस ग्रन्थमें विशेष बातें ये हैं —

(अ) प्रति पाठमें विद्यार्थियोंके लिये सस्कृतसाहित्यका सारांश दिया गया है। वाक्य, प्रबन्ध तथा श्लोकोंके चुनावमें बड़ा ध्यान दिया गया है। वे महाकवियोंके प्रबन्धोंसे, महापुराणोंसे तथा उपनिषदोंसे लिये गये हैं। इनमें कइ श्लोकी-कृतियां हैं जो प्रतिदिनके जीवन तथा वातचीतके लिये उपयुक्त हैं (जैसे—भतानुगतिकी लोकी न लोक पारमाथिक, अयमपरो गण्डम्योपरि स्फीठ आम्भान् पृष्ट कोविदारान् व्याचष्टे क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया, महदपि परदुख शीतल सम्यगाहु ), तथा कइ ऐसे श्लोक हैं जो उपदेश तथा उपयोगितासे पूर्ण हैं। इनसे चित्तपर उदात्त शील, श्रद्धा, उत्तमोंके प्रति आदर तथा विनय, विद्याका अनुराग, शक्ति, तथा प्रभुताका आदर, तथा परमेश्वरकी भक्ति, इत्यादिके संस्कार दृढ़ होंगे।

(आ) इसमें गद्यपद्यमय कविताओंका बड़ा संग्रह है। गद्य भाग पञ्चतन्त्र, दशकुमारचरित, कादम्बरी तथा श्रीशङ्कराचार्यके ग्रन्थोंसे लिया गया है। इनमें विद्यार्थियोंको विविध रीतियोंके नमूने मिलेंगे। पद्यभाग चाणक्य, भर्तृहरि, कालिदास, भवभूति, इत्यादिके ग्रन्थों तथा रामायण, महाभारत, तथा अन्य ग्रन्थोंसे चुना गया है।

(इ) भाषाका उत्तम अभ्यास काव्यांसे ही सकता है जिनमें उत्तम विचार मनोहर रचनामें प्रकाशित किये गये हैं। ऐसे ऐसे पाठ्यपत्रोंके कण्ठस्थ कर लेनेसे भाषापर अधिकार तथा गाढ़

अनुराग उत्पन्न होगा। पाठोंमें तथा ग्रन्थके अन्तमें दिये श्लोकोंके चुनावमें, जो लगभग २०० के हैं, इस बातपर विशेष दृष्टि दी गयी है।

(इ) विद्यार्थियोंका सस्कृतके छन्द तथा अलङ्कारोंमें प्रवेश करानेका यत्न किया गया है। गणोंके तथा मालिनी, वसन्त तिलका, हरिणी, शिखरिणी, इत्यादि प्रचलित छन्दोंके लक्षण दिये गये हैं। उपमा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, अन्योक्ति, इत्यादि प्रसिद्ध अलङ्कारोंके लक्षण पाठोंमें तथा पुस्तकान्तकी टिप्पणियोंमें स्पष्ट किये गये हैं।

(उ) विद्यार्थियोंका ध्यान पहिले साहित्यकी ओर आकृष्ट किया गया है और व्याकरण उसका अङ्ग बनाया गया है, और ऐसा ही होना चाहिये। यह उद्देश अधोलिखित मार्गसे सिद्ध हुआ है। प्रतिपाठके आरम्भमें कुछ वाक्य दिये गये हैं जिनका हिन्दीमें अनुवाद किया गया है। इनमें नये व्याकरणके रूप मोटे टाइप्समें दिये गये हैं जिसमें विद्यार्थियोंका ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हो। इसके बाद तैयार रूपायली है। सबके अन्तमें नियम हैं जो उन रूपोंसे निकाले गये हैं। इस प्रकार अनुसृत पद्धति तुलनात्मक है। यह स्कूलके लड़कोंसे लेकर सस्कृतके जिज्ञासु एवं पुरुषोत्तम सभीको शिचाप्रद तथा मनोरञ्जक होगी। स्कूलके विद्यार्थियोंकी पहिले रूपोंका पहिचानना सीखना चाहिये और इसके बाद उनका अभ्यास करना चाहिये। जिज्ञासु बच्चोंके लिये केवल उनका पहिचानना पर्याप्त है।

(ऊ) इसमें मधेपमि प्राय वे मध् व्याकरणके विषय था गये हैं जिनका जानना मस्कृत साहित्यके अध्यामके लिये अत्यन्त आवश्यक है। अप्रयुक्त रूप जान धुक्कर छोड़ दिये गये हैं। अध्यापक तथा परीक्षकक नातमे मुक्त इस बातका अनुभव हुआ है कि विद्यापीठों में अनियत रूपोंकी कयन परीक्षाके लिये रट लेते हैं और परीक्षाके दुटकारा पाते हैं। उनको भुल जाते हैं। वे लोग भाषामें प्रचलित शब्दरूप तथा धातुरूपोंके साधारण नियमोंको नहीं समझते। इस चूटिके दूर करके नियम साहित्यमें साधारणतः प्रचारमें आनेवाले रूपोंपर विद्यार्थियोंका ध्यान आलक्ष्य किया गया है। इसी उद्देशसे सन्धिके नियमोंका, जो विविध रूपों के बनानेमें लगते हैं, बड़ी सावधानीसे निरूपण किया गया है और वे उदाहरणों से स्पष्ट किये गये हैं।

(ए) जो विषय अधिक सुगम तथा प्रचलित हैं वह पहिले दिया गया है और पीछेसे अधिक दुगम तथा कम प्रचलित विषय। समास तथा भूत कृत्यों का प्रयोग मस्कृत साहित्यमें बहुत आया करता है, इसलिये उनका पहिले प्रकरणों में समावेश किया गया है। भविष्यत् कालोंका परीक्षभूतके पृथ तथा सामान्य भूत कालके चतुर्थ तथा पञ्चम प्रकारोंका निरूपण अन्यप्रकारोंके पृथ किया गया है।

(इ) अन्तिम पाठमें कर्त् तथा तद्धित प्रत्ययोंका वर्णन है जो प्राय भाषामें मिलते हैं।

(ओ) मस्कृत व्याकरणके पारिभाषिक शब्दोंमें यह

विशेषता है कि वे अभिप्रायगर्भित हैं। यदि यह बात विद्यार्थियों को भलीभांति ममभायी जाय, तो उनका कार्य बहुत कुछ सुगम होगा। मुझे यूनीवर्सिटीके परीक्षकके सम्बन्धमें यह कहते खेद होता है कि यह बात योग्य रीतिसे विद्यार्थियों के ध्यानमें नहीं लायी जाती। यही कारण है कि विद्यार्थी लोग 'बहुव्रीहि' इत्यादि शब्दों के निखनमें अनेक प्रकार की गलतियाँ किया करते हैं—जैसे कोई 'बहुरि' लिखते हैं, जो अत्यन्त उपहामास्पद है। इस आपत्तिको दूर करने के लिये इस पुस्तकमें प्रत्येक व्याकरण के पारिभाषिक शब्दोंका व्याख्यान किया गया है जिससे विद्यार्थियों के मन पर उनका सस्कार दृढ होगा। जब विद्यार्थीको यह मालूम हो जाता है कि 'बहुव्रीहि' शब्द स्वयं बहु व्रीहि समास है और उस समासके लक्षणकी बताता है, जब वह यह समझ लेता है कि 'तत्पुरुष' शब्दका विग्रह दो प्रकारोंसे ही सकता है और यह दोनी प्रकारके समासोंके

करता है, जब उसे इस बातका ज्ञान्ति	}	३२—३६
तथा भूत ये शब्द स्वयं क्रमशः		
उसके समझमें यह वादिर अव्ययीभाव,	}	३७—४३
उस छन्दके प्रादमें ह्य शब्द, भूतछन्द		
उसका याद कर्त्तृ, त्, च्, तथा ज् में	}	४३—५१
है और उसकसात होनेवाले शब्द		

(और) इकारान्त तथा उकारान्त स्त्रीलिङ्ग  
लिये वाक्य, लोट्, लकार (प्राज्ञार्थक) के रूप

विषय	पृष्ठ
पाठ १५—विधिमिठ (विध्य) षट्	६८—७६
पाठ १६—लडनकार वा चनद्यता भूत , षमद और युषद }	७७—८३
पाठ १७—ककारान्त शब्द	८४—८९
पाठ १८—ङ, ञ तथा ककारान्त नपुंसक शब्द	८०—८५
पाठ १९—नकारान्त शब्द	८६—१०३
पाठ २०—कसणि प्रयोग और भावे प्रयोग	१०४—१११
पाठ २१—यत्मान लुदन्त	११२—११८
पाठ २२—यस् तथा ईयस्मि ममात् होनेवाले शब्द	११९—१२४
पाठ २३—मत्यावाचक (१ से १० तक)	१२५—१३२
पाठ २४—अनियत सज्ञावाचक	१३३—१४०
पाठ २५—स्यादि तथा तनादिगणके धातु	१४०—१४८
पाठ २६—क्रादिगणके धातु	१४८—१५६
पाठ २७—अदादिगणके धातु	१५७—१६७
पाठ २८—अदादिगणके धातु	१६७—१८१
पाठ २९—रुधादि तथा अदादिगणके धातु	१८१—१८४
पाठ ३०—चुहोत्यादिगण	१८४—२०६
पाठ ३१—विशेषण तथा क्रियाविशेषण	२०६—२१८
पाठ ३२—समास—अर्थयोभाव तथा तत्पुरुष	२१८—२२७
पाठ ३३—बहुव्रीहि तथा हन्ममास	२२७—२३४
पाठ ३४—कारक	२३४—२४५

विषय	पृष्ठ
पाठ ३५—भविष्यत् तथा क्रियातिपत्ति	२४६—२५८
पाठ ३६—परोक्षभूत वा लिट्	२५८—२६८
पाठ ३७—परोक्षभूत	२६८—२७७
पाठ ३८—कुछ अणियत रूप	२७८—२८७
पाठ ३९—तद्धित और कृत् प्रत्यय	२८७—२९७
पाठ ४०—सामान्यभूतकाल	२९८—३०८
पाठ ४१—आशीर्निङ्, इच्छार्थक, अतिशयार्थक, नामधातु }	३०८—३१७
पाठ ४२—स्त्रीप्रत्यय तथा पञ्चलेखनका प्रकार	३१७—३२६
१। चटकदम्पत्यो	३२७—३२८
२। धामदेवशिष्यकथिता कुमारवार्ता	३२८—३३०
३। सिद्धशकयो	३३०—३३२
४। सपमण्डकयो	३३२—३३५
५। मान्याट्टवृत्तान्त	३३५—३३६
६। कुमार चन्द्रापीड' प्रति महाराजाज्ञा	३३६—३३७
७। चन्द्रापीड प्रति शुकनासोपदेश	३३७—३३८
८। ब्रह्मज्ञानविषयक गुरुशिष्यसवाद	३३८—३३९
९। नीति	३४०—३४१
१०। राजभक्ति	३४१—३४२
११। अराजक राष्ट्रम्	३४२—३४३
१२। पञ्चवटी	३४३—३४४

विषय	पृष्ठ
१३। शीनिवासस्थानानि	३४४—३४५
१४। दम्पतीस्रोह	३४५—३४७
१५। मंगम	३४७—३४८
१६। आपदि शोक्तव्याम्	३४८
१७। मन्तोप	३४८
१८। आत्मज्ञानम्—कतव्यज्ञानम्	३५०—३५१
१९। अजविनाप	३५१—३५२
२०। प्रकीर्णानि सुभाषितपद्यानि	३५२—३६२
२१। स्तुतिपद्यानि	३६२—३६३
उद्धृत गद्यपद्योपर टिप्पणी	३६५—३८३
परिशिष्ट (क) क्त धातुके रूप	३८४
परिशिष्ट (ख) प्राणिनीय पद्धति	३८५—४००
परिशिष्ट (ग) छन्दस्वरूप	४०१—४०७
शब्दिपत्र	४०८—४१८

## प्रशसापत्र ।



**सूचना**—वांशु गवमेंटने 'संस्कृत टीचर' और उसके गुजराती अनुवाद संस्कृत शिक्षिका' का स्कूलों तथा ट्रेनिंग कालिजीम पाठ्य पुस्तककी तरह उपयोग किया जाना मजूर किया है। मध्यप्रदेशकी गवमेंटने संस्कृत टीचर का द्वितीय श्रेणीके स्कूलोंमें तथा अलहाबाद यूनीवर्सिटीने सन् १९१८ की म्यात्रिक परीक्षामें पाठ्यपुस्तक की तरह उपयोग किया जाना मजूर किया है।



माननीय न्यायमूर्ति सर एन् जी चन्द्रावरकर, एम् ए, एन् एल् बी महामय लिखत हैं —

मने आपकी पुस्तक (संस्कृत टीचर) की पढा और उसे अत्यन्त उपयोगी पाया। पाठोंका रचनाक्रम, टिप्पणिया, और उद्धृत गद्यपद्यसंग्रह अतुत्तम हैं।



प्रो० ए ए मक्डानल, आक्सफोर्ड —

आखिर इसकी आपकी पुस्तक पढ़नेका अवसर मिला। अज्ञातक मेरा अनुभव है भारतवर्षके विद्याधियोंकी मछलतविद्यामें प्रवेश करानेके लिये इसी उत्तम पुस्तक भारतवर्षमें लड़ी नहीं है। नवीन विद्याधियोंकी मछलतविद्या बहुत रीघक बनायी जा सकती है यदि वह दीर्घ मार्गसे पन्नाइ जाय। परन्तु न समझता हूँ आजकल भारतवर्षमें कनी कई पुस्तकोंमें, जिनको मने देखा है, यह बात नहीं पायी जाती। वे विद्वेषत पढानेके लिये बनायी गयी हैं। उनमें मनीहर टिप्पणियोंके रूपमें बहुत कम ज्ञातव्य विषय होता है और उनमें अनावश्यक नियम तथा अप्रयुक्त रूप बहुत होते हैं। आपका व्याख्याता प्रकार, संस्कृत साहित्यसे सावधानीके साथ जुने हुए गद्यपद्य, हन् तथा अलहाबाद पर टिप्पणिया तथा पाणिनीय व्याकरणपद्धति ये सब विषय मेरी समझमें अत्युत्तम है।

न समझता हूँ भारतवर्षीय यूनीवर्सिटीकी एकलेश परीक्षाके लिये यह दान्य अत्यन्त उपकारक होगा।





महामहोपाध्याय पं हरप्रसाद शास्त्री एम् ए, मिथिलापत्तन,  
गयसेट् संस्कृत कालिन्ध कर्मकर्ता —

अच्छा होता यदि आपको पुस्तक हम प्राप्तमें भी चलायी जाती। वह पर चर्चितक कही प्रस्ताव नए संस्कृत परानका टपी बना लाना है किन्तु विचारों प्रकाश न है। संस्कृत व्याकरणके नियम चरक किन्तु और औरत वनेके कारण विचारों माद संस्कृत काट हता भाषाओंका प्रयोग समझ करके है। मधुमत्त ही आपने संस्कृत व्याकरणकी एक सुरस और विद्याधरियोंके चित्तकी अपनी और धीचनेवाली पीज बना डाला। रमयत्त शब्दों और रचनाका इतना चितका सुमानवाना है। नए संस्कृतभाषाकी नियम वर धर्मिकके और औरत वनेके कारण प्रकाश न है। यह है किन्तु ही प्रस्ताव प्रकाश करके है जो करने यह को बचता रहता है। किन्तु प्रकार मधुमत्तका क टकर लुट्टीकी मधुमत्तक पर बन लुट्टी हीनें टकी प्रकार किन्तु नियम और उनको महीचला लुट्टीकी संस्कृत मादिकके हीनें और मधुमत्तक पर चर्चितक प्रकाश न है। परन्तु आपकी मधुमत्तकिया पालीवाने चरु पुरुषक कुशल हस्तमें मम मधुमत्तकियोंकी उडा टिया और गहद हमार मधुमत्तकिये सुलभ कर दिया है। यह बात नियमपूर्वक कही जा सकती है कि आपके परिश्रमोंम आपका प्राप्त अच्छी तरह लाभ उठायगा। आपन यह सिद्ध कर दिया कि संस्कृत भी यह भया है जो किमा भाषाके कम लुट्टी। मधुमत्तकिये आपने यह भी सिद्ध कर दिया कि व्याकरणके भाषाका अन्तम अधिक उर्ध्वनी है, भाषाका जाननेवाला मधुमत्तकिये नियम बना ले सकता है। मधुमत्तकिये उत्तम बात तो यह है कि नियमोंके उदाहरणोंमें आपने आधुनिक संस्कृत न देकर प्राचीन कार्योंमें गद्य पद्य चुने। मेरी यह इच्छा है कि इस कायमें आपको पुण मफलता प्राप्त हो। मैंने अपने लुट्टीके आपकी पुस्तकका पुण उपयोग लेनेके लिये कहा है।

श्रीयुत रिवरेड् प्रो० ए० हेग्लिन्, संस्कृत प्रोफेसर, भेवियर्स  
कालेज बर्बर्ड —

संस्कृतकी विरुतियां अनेक ग्रन्थरूप, तथा धातुरूप विद्यादियोंकी छुतिगतिपर बडा  
शोक डालते हैं। आपने बडी चतुराईसे विशेष प्रचलित रूपोंमें  
सीमाबद्ध कर इस कामकी हलका बना डाला है। नियमोंकी  
योग्य रचना और क्रमिक पाठोंका सनिवेश इस कामको और  
हलका करते है। आपने (छटाइगणाय) दिये हुए वाक्य तथा पुनकके अन्तमें  
दिये हुए गद्य पद्य उत्तम रीतिसे चुने हुए, भिन्न भिन्न विषयोंके, मनो  
रञ्जक, तथा कार्योंसे उद्धृत है।

विद्यार्थियोंका यह देखकर बडी प्रसन्नता होगी कि प्रति पाठमें दिये हुए भाषाके  
वाक्य कम और छोटे हैं। टाइप भीटा तथा स्पष्ट और पुनकका आकार छोटा है।  
पुनककी सम्पूर्ण रचना मनीहर है। मेरी रायमें संस्कृत टीचर स्कूलोंमें प्राथमिक  
व्याकरण और पाठ्य पुस्तककी तरह उपयुक्त होनेके योग्य है।

प्रो० घी एम् घाटे, एम् ए, संस्कृत प्रोफेसर, डेकन कालेज,  
पूना —

मैंने आपके 'संस्कृत टीचर' के कुछ अक्ष पढ़े हैं। मैं प्रसन्नतासे इसे स्कूलों  
में चलाये जानिकी शिफारिस करता हूँ।

पहिले संस्कृत वाक्य निकार छनपर व्याकरणनियमके बँडानेकी आपकी राति अधिक  
सामाजिक है और मुझे निश्चय है कि यह संस्कृतकी पढाईको अधिक मनो-  
रञ्जक बनायगी।

गद्यपद्योंका मध्यह उत्तम और मनोरञ्जक है। व्याकरणके  
भिन्न भिन्न विषय योग्य रीतिसे व्यवस्थित किये गये हैं, जैसे पुस्तकके पूर्व भागमें  
छात्रात्मक १. व्याकरणका अर्थ, तथा परीक्षार्थके पुत्र दोनों भविष्यत्

ए महादेव शास्त्री, बी ए, संस्कृत पुस्तक निरीक्षक तथा मैसूर  
संस्कृत शीरीर्जके सम्पादक —

आप विश्वास रखें कि आपने पढ़ानेकी रीतिमें बड़ी उन्नति  
कर दिखायी है। पढ़ा की हम बहुत आभासिक रीतिमें संस्कृतका पढ़ाना  
अधिक मनोरञ्जक होगा। अन्तर्गत भी संस्कृत काव्यविधि में बड़ी है,  
साहित्यम लोगकी रुचि उत्पन्न करेंगे।

ए अनन्ताचार्य शास्त्री, मैसूर प्रकृतस्वविभाग, बंगलौर —

मैंने आपकी पुस्तक पढ़ी। आपकी रीति उत्तम है। अंग्रेजी विभागके संस्कृत  
विद्यार्थियोंके लिये यह पुस्तक अच्छी सहायक होगी। दूसरी पुस्तक अन्तर्गत विद्यार्थियोंका  
सहायता दे सकता है जिनका फल ही संस्कृत भाषाकी अच्छी व्युत्पत्ति है। पढ़ने  
वाला नकर बात उनके शब्दकी निष्ठा निरूपण करनेकी रीति विद्यार्थियोंकी साहित्य  
पठनमें सहायता देता है। आपमें उत्तमताय अने एए गद्य पद्य केवल उपदेश  
पर ही नहीं है किन्तु विस्मरण रखने योग्य तथा भावि जीवनमें  
उपयोगी भी है।

प्रो० राजराज वर्मा, एम् ए, संस्कृत प्रोफेसर, महाराणा  
कालिङ, त्रिवांड्रम् —

मैंने आपकी पुस्तक पढ़ी। मैं देखता हूँ कि इसकी योजना बड़ी योग्यता  
से कल्पित और बड़ी कुशलतासे रची गयी है। इसमें सत्तेप और  
सुगमताका योग हुआ है जिसके लिये आप धन्यवादार्ह हैं। नये  
विद्यार्थियोंके लिये बना यह पुस्तकमें सरोकारके रीतिमें सुलभात्मक रीतिका अवलम्बन  
करना एक नयी बात है। इस नयी रीतिका अवलम्बन उन विद्यार्थियोंके लिये उत्तम तथा  
स्विकर करनेमें अत्युक्त होगा जिनके हाथमें यह पुस्तक हो जायगी। इसके गद्य पद्योंके  
विषयमें मुझे विशय है कि उनकी विचित्रता और उत्तमता सर्वत्र आदृत

होगी। सवधा इममें यदि मतमें ही सकता है तो वइ कटाचित् इमके परिमाणके विषयमें। सभव है कि इसे कुछ लाग नये विद्याधियोंके लिये अपर्याप्त समझ। इसी प्रकार संस्कृतमें अनुवादके लिये वाक्य कटाचित् बहुत कम समझ जाय गी सम्भव है। परन्तु मुझे पूण विषय है कि नये विद्याधियोंके लिये बनार्द गयी ऐसी पुस्तकमें कुछ भीमा भी होती है। पुस्तकके अन्तमें लिये ३० गद्य पद्य भस्त्रीभाति चुने गये हैं और सदाचार के अच्छे निदर्शक हैं। व ए न्ना परोक्षाकी एक वधकी पदाईके लिये पर्याप्त हैं। मैं अपने विद्यार्थियोंमें इसका प्रचार करूंगा और सामान्यतः स्कूलोंमें इसके उचित उपयोगकी शिफारिस करूंगा।



प्रो० यीरेञ्जर शास्त्री द्रविड, सस्कृत प्रोफेसर, महाराजा कालेज, जयपुर -

स्कूलों तथा भारतवर्षीय युनीवर्सिटीयोंके म्याट्रिक्युलेशन परीक्षाके छात्रोंकी अपेक्षाये पूर्ण करनेमें यह पुस्तक अत्यन्त उपयुक्त है। अपने परिश्रमसे संस्कृतमें अविद्यमान विद्याधियोंके लिये ही यह अमूल्य है। आपने अवदम्बन की हुई तुलनात्मक पद्धति नूतन विद्याधियोंको उस नीरसताकी कम करेगी जिसका उनको प्रायः अनुभव हुआ करता है। चुने हुए वाक्य सुगम तथा सुव्यवस्थित हैं और प्रकृत व्याकरण नियमोंको अच्छी तरह स्पष्ट करते हैं। पुस्तकके अन्तमें लिये हुए विविध विषयोंके गद्य पद्य इस पुस्तकमें अपुत्र हैं। उनका बार बार पठना विद्याधियोंको संस्कृत भाषाकी रचना और मर्म समझने में बहुत उपकार करेगा।



टी गणपति शास्त्री, संस्कृतपुस्तकनिरोधक तथा विवाङ्म सस्कृत सीरिजके सम्पादक -

आप ऐसे लोग लोगोंके बीच प्रचारके उपकार करनेमें सतथ हैं। उन्हें अपने

इस अनेक उपकारीमें हनि नह। वे ऐसी दिशास फिर भी लोगोंका उपकार करनेकी इच्छा करते रहते हैं। सतथा यह नयी पुस्तक गुणधर्मि अवग्न प्रवेग पावगी।

नारायण शास्त्री, हेड्मास्टर, मस्कृत पाठशाला, त्रिवांड्रुम् तथा भूतपूर्व संस्कृत प्रोफेसर, महाराजा कालेज, त्रिवांड्रुम् —

मने सावधानतासे साधन आपकी पुस्तक पढ़ी। मुझे इसमें कहीं कीद भी चीज दृष्ट वा असुन्दर देखनेमें न आरी। यहाँसे उद्धृत कर पढ़ाकी नयननि प्रतिपादन करनेकी आपकी शली पणितिक किस बैयाकरणके प्रत्यकी सुगध न करगी। सस्ये बदकर प्रगसाकी बात तो यह है कि इसमें प्राचीन उत्तम कार्योंसे सगृहीत वाक्य, गद्य, तथा पद्य मधुर कीमल तथा सुदुर्दर्शपर हैं। अधिक क्या लिखें? आपकी पुस्तक संस्कृतभूमानिधीके मनके 'अर्थलौके फलनेसे संस्कृतका प्रचार संकुचित हो रहा है इस कण्टकक दूर करवेम रामबाय चौधर है यही मेरा निहित मत है।

आपने प्रभावनामि जो निरुद्धा है कि यह पुस्तक स्कूलके विद्यार्थियों तथा अधिक वय धानि अर्थलौके विद्वानोंकी जो संस्कृत जाननेकी अभिलाषा रखते हैं, शिष्याप्रद तथा मनीरधक हारी इससे भी सङ्गत हू। ऐसा आदमी न मिलना जो इस विषयमें विचार करे कि यह पुस्तक स्कूलोंमें उत्तम पाठ्यपुस्तकका स्थान पावे योग्य है। सदेव यह है कि इस प्रकारका आपका उद्योग मुझ ऐसी लोगोंकी बहुत आनन्द देता है। पाठशालाओं में पाठ्यपुस्तकाका विचार करनेके अवसरपर कौन संस्कृत टीचर की भूमिका? सधन फलसे अपना हृदय प्रकट करत है।

शास्त्री केदारनाथ दुर्गाप्रसाद, महामहोपाध्याय काश्यमालाकी सम्पादक, जयपुर —

आपका 'संस्कृत टीचर' नामका संस्कृतशिक्षक एकवारगी व्याकरण कीश तथा साहित्यमें उत्तम ध्युपति करनेमें समथ है।

इसमें सन्देह नही कि संस्कृत साहित्यमें प्रवेश करनेकी इच्छा रखनेवालोंकी यह अत्यन्त

उपरीली तथा नवीन श्रेणीकी पुस्तक बहुत उपकारी होगी। संस्कृतानुगामी सङ्घर्षीय भी सान्तर यह प्रार्थना है कि केवल संस्कृत ज्ञाननेकी दृष्ट्या रखनेवालोंके स्थिति से लीग इसी शीतिपर सुरक्ष संस्कृत अथवा हिन्दीमें दस्य भीम बनने। पदानेमें किछ परिपाटीका भीकार करना आदिदं यह बात 'संस्कृत टीचर्' अच्छी तरह सिखाता है। संस्कृतमें हम इसे टीचर् नहीं, भीतर कहते हैं। बालिक पाठ्यलि काव्याशन तथा पतञ्जलि यह मुनित्रय केवल श्रद्धावर्धनं व्युत्पत्ति करा सकता है और यह एक ही में कीम, व्याकरण, तथा काव्य सिखाता है। इसी प्रकार यह भीषमूलर—कावि—आपटे—इनके पुस्तकोंसे भी निराया है। इस कारणसे भी यह भीतर है। हममें जरा भी सन्देह नहीं कि यह संस्कृतसाहित्यमें प्रवेश तथा व्युत्पत्ति आइनेवालोंका उपकार करेगा। यह संस्कृत भीतर अत्र योग्य समदपर छदित प्रथा। प्रतिदिन बटनेवाली इसकी कलाये संस्कृत व्युत्पत्ति आइनेवालोंकी अपनी सिखावपी अन्द्रिका द।



गजलि शरदि न वर्षति वर्षति वर्षासु ि स्वनी मघ ।  
नीचो वदति न कुरुते न वदति सुनन करोत्येव ॥

० ० ० ०

कल्याणानो त्वमसि महमां भाजन विभ्रमूते  
धुर्या सप्तमीमघ मयि भृग धेहि देव प्रसीद ।  
यदात्पाप प्रतिजहि जगन्नाथ नम्रस्य तन्मे  
भद्र भद्र वितर भगवन् भूयमे महलाय ॥

० \* \* ०

शरण करवाणि कामद ते शरण याणि चराचरोपजीव्यम् ।  
करुणामृणै कटाक्षपातै कुरु मामस्य कृतार्थभार्थवाहम् ॥

# संस्कृतशिक्षिका

पाठ १ ।

वर्ण ।

संस्कृतमें अधोलिखित वर्ण जाते हैं —

(अ) अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ए, ऐ, औ, ओ ।

(ब) क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, ह, तथा ङ् ।

(अ) से चिह्नित वर्णों को स्वर कहते हैं, क्योंकि और किसी वर्ण की सहायताके बिना ये उच्चारण किये जा सकते हैं ।

(ब) से चिह्नित वर्णों को व्यञ्जन कहते हैं, क्योंकि ये अपने उच्चारणमें स्वरोंकी अपेक्षा रखते हैं, क, ख, इत्यादि वर्णोंका बिना किसी स्वरके मिलाये उच्चारण नहीं हो सकता, व्यञ्जन शब्द वि + अङ्ग + णन को जोड़ने से बना है और उसका अर्थ मिलना है । उदाहरण—क = क + अ, का = क + आ, को = क + ओ ।

अ, ई, ऊ, और ऋ ये अ, इ, उ, तथा ऋ इनको दीर्घरूप हैं, लृको शीघ्र नहीं होता ।

अरको ऊपर को बिन्दु दिया जाता है उसे अनुस्वार तथा उनको याँ को शो शिष्यु शिष्ये जाते हैं उनको विसर्ग कहते हैं । जैसे—, , क, क ।

दो या अधिक व्यञ्जन जहाँ मिले रहते हैं उनको सयुक्ताक्षर कहते हैं । जैसे क् = क + त्, क् = र + क्, ङ् = ङ् + च्, च् = च् + म्,



सकृत्प्रतिष्ठा ।

$द्य = द + य$ ,  $द्व = द + व$ ,  $श्र = श + र$ ,  $च = च + य$ ,  $क्ष = क्ष + य$ ,  
 $क्षु = क्ष + ल$ ,  $क्षु = क्ष + ल$  ।  
 क्षरय रखना चाहिय कि क्ष = क् + य् से विनायेक तथा य् = य् + र्  
 स बना हुआ है ।

पाठ २ ।

वर्तमान काल ।

मज्जति (वह) मज्ज करता है ।  
 लिखति (वह) लिखता है ।  
 विश्रति (वह) प्रवेश करता है ।  
 स्पृशति (वह) छूता है ।  
 निश्रति (वह) निश्चिन्ता है ।

मथ्यति (वह) नष्ट होता है ।  
 नृथ्यति (वह) नाशता है ।  
 कुप्यति (वह) क्रोध करता है ।  
 लुप्यति (वह) लोभ करता है ।  
 क्रुप्यति (वह) क्रोध करता है ।

१। ऊपर शिथे हुए शब्दोंके देखनेसे यह मान्य होगा कि वर्तमान कालिक क्रियाके प्रथम पुरुषके एकवचनका प्रत्यय ति है ।

मज्जति (मज्ज् + ति)  
 लिखति (लिख् + ति)  
 विश्रति (विश्र् + ति)  
 स्पृशति (स्पृश् + ति)  
 निश्रति (निश् + ति)

मथ्यति (मथ् + ति)  
 नृथ्यति (नृथ् + ति)

अनुसार धातु कई धातों में विभक्त हैं । य स्मृतमें ऐसे वग दस हैं जिनको गण कहते हैं ।

२ । अ तुङ्गिगणका, और य दिवादिगणका चिह्न है ।

शब्दसंग्रह ।

तुङ्गिगण ।	दिवादिगण ।
दिग्—दिखाना	कुप्—कोप करना
लिख्—लिखना	कुध्—क्रोध करना
सृज्—सिखाना	नश्—नष्ट होना
स्फुग्—कूना	वृत्—नाचना
त्रिग्—प्रवेश करना	लुभ्—लौभ करना

पाठ ३ ।

वर्तमान काल ।

वसत ( वे दो ) रहते हैं ।	पूजयत ( ये दो ) पूजा करते हैं ।
खसत ( ये दो ) खोलते हैं ।	कथयत ( ये दो ) कहते हैं ।
चरत ( वे दो ) चलते हैं ।	गणयत ( वे दो ) गिनते हैं ।
पठन्ति ( ये ) पठते हैं ।	रक्षयन्ति ( वे ) रक्षते हैं ।
दृष्टन्ति ( ये ) छलाते हैं ।	स्पृष्टयन्ति ( ये ) चाहते हैं ।
पतन्ति ( ये ) गिरते हैं ।	पीडयन्ति ( वे ) कष्ट देते हैं ।
नमन्ति ( ये ) प्रणाम करते हैं ।	सूचयन्ति ( ये ) सूचना करते हैं ।

१ । ऊपरके शब्दोंसे यह मालूम होगा कि वर्तमान कालिक शिवासे प्रथम पुरुषके द्विवचनका त्त यह चिह्न है, तथा अन्ति वर्तमान प्रथम पुरुषके बहुवचनका चिह्न है ।

वसत ( वस्-अ-त )	पूजयत ( पूज्-अ-य-त )
वदत ( वच्-अ-त )	कत्रयत ( कच्-अ-य-त )
चरत ( चर्-अ-त )	गणयत ( गण्-अ-य-त )
पठन्ति ( पठ्-अ-अन्ति )	रचयन्ति ( रच्-अ-य-अन्ति )
मृदन्ति ( मृद्-अ-अन्ति )	मृदयन्ति ( मृद्-अ-य-अन्ति )
पतन्ति ( पत्-अ-अन्ति )	पडयन्ति ( पौड्-अ-य-अन्ति )
नमन्ति ( नम्-अ-अन्ति )	मूचयन्ति ( मूच्-अ-य-अन्ति )

निम्न प्रकार द्वितीय पाठमें नियं हुए सृजति इत्यादि धातुओंमें अ लगना है उसी प्रकार वसत इत्यादि वर्गोंमें भी अ लगता है ।

२ । अ ध्वनिगणके धातुओंका चिह्न है । वस्-इत्यादि धातु सृज्-इत्यादि धातुओंसे धृयन् विभक्त क्यों है यह बात आगे चलकर मान्य होगी ।

पूजयत इत्यादि वर्गोंमें धातुओंसे अय जाडा गया है ।

३ । अय चुराणिगणका चिह्न है ।

पठन्ति रचयन्ति इत्यादिमें अन्तिके पहिल रहनेवाला अ निकल गया है ।

४ । अन्ति क पहिल रहनेवाला अ निकल जाता है

जयति ( वच् ) जोतता है ।

नयति ( वच् ) ले जाता है ।

भयति ( वच् ) होता है ।

स्मरति ( वच् ) स्मरण करता है ।

तरति ( वच् ) तेरता है ।

बोधति ( उच् ) जानता है ।

नाटयति—(वच्) भाव करता है ।

क्षामयति (वच्) धोता है ।

चोरयति ( उच् ) चुराता है ।

धारयति ( वच् ) उठाता है ।

कवर नियं हुए धातुएव ध्वादि और चुराणिगणके है । जयति = जम् + अ + ति ( जि + अ = ज + अ = जम् + अ ) जि का, नयति = नम् + अ + ति ( नी + अ = ने + अ = नम् + अ ) नी का, भयति = भय् + अ + ति ( भू + अ = भो + अ = भय् + अ ) भू का, स्मरति = स्मृ + अ = स्मर + अ

खृ का, तरति = तर् + अ + ति ( तृ + अ = तर् + अ ) तृ का,  
वाधति = बोध् + अ + ति ( बुध् + अ = बोध् + अ ) बुध् का रूप है ।

३ । ऊपरके रणोंसे यह मालूम होता कि अन्तिम स्वर तथा उपान्तर  
( अन्त्यके समीपका ) ह्रस्व स्वरोंमें गणचिह्न अ के पहिले कुछ परिवर्तन  
घाता है । ( इ, वा ईं का ए, उ, वा ऊ का आ, अ वा अृ का अर,  
तथा लृ का अल् हो जाता है ) ।

६ । ए, ओ, अर्, तथा अल् इ वा ईं उ वा ऊ, अ, वा अृ, और लृ  
के यथाक्रम आदेश हैं और इनको गुण आदेश कहते हैं ।

ज + अ = जय् + अ, ने + अ = नय् + अ, भो + अ = भय् + अ—

७ । मङ्कलमें लव एक साथ दो स्वर आते हैं तो वे विभेय परि  
उत्तनमें मिल जाते हैं । हमका मन्थि कहते हैं ।

८ । लव ए तथा ओ के वाच कोई स्वर आता है तो वे यथाक्रम अय्  
तथा अय् में बदल जाते हैं ।

नाटयति, दानयति घोरयति, धारयति इत्यादि चुरादिगणके धातु  
रूप हैं ।

नट् + अय् + ति = नाटयति, चल—चालयति; कण्—कणयति, चूर्—  
घोरयति, षोड्—षीयति स्पृह्—स्पृहयति, धृ—धारयति—

९ । उपान्तर ( अन्त्यके समीपका ) अ प्राय इसकी वृद्धि आमें  
बदल जाता है, परन्तु कण, गण, चर् इत्यादिमें नहीं बदलता ।

१० । स्पृह् इत्यादि कौड़ कर अ के सिवा दूसरे उपान्तर ह्रस्व स्वरको  
गुण घाता है ।

११ । अन्त्य स्वरको वृद्धि होती है । अ की वृद्धि आ, इ तथा  
ए की वृद्धि ऐ, उ तथा ऊ की वृद्धि औ अ तथा अृ की वृद्धि आर,  
आर लृ की वृद्धि आल् है ।

एवति, विशति, और स्पृशति तुभ्यं गणके रूप हैं । हमको बोधति  
का साथ मिलाओ ।

१२ । त्रिस्र प्रकार भ्याङ्गिगणके धातुश्रीमें श्र के पहिले गुण होता है  
उस प्रकार गुणाङ्गिगणके धातुश्रीमें नही होता ।

शब्दभण्ड ।

भ्याङ्गिगण ।

चर—चलना  
त्रि—त्रितना  
सृ—पार करना  
दृ—जलाना  
नी—ले जाना  
पठ—पढ़ना  
पत्—गिरना  
बुध्—जानना  
भू—होना  
धत्—बोलना  
वम्—रहना  
श्मृ—स्मरण करना

चुराङ्गिगण ।

कप्—कहना  
क्षल—घोना  
मण—गिनना  
चुर—चराना  
धृ—धकड़ना या उठाना  
नठ—नाचना  
पीद्—कष्ट उना  
पूज्—पूजा करना  
रच्—रचना  
सूच्—सूचन करना या सुझाना

५१

पाठ ४ ।

वर्तमान काल ।

कुप्यमि—( तू ) कोप करता है ।  
नश्यमि ( तू ) नष्ट होता है ।  
हरथ ( तुम ने ) खे जाते हो ।  
मथथ ( तुम ने ) ले जाते हो ।  
बुध्यथ ( तुम लोग ) सूझते हो ।  
बुध्यथ ( तुम लोग ) सोम करते हो ।

क्षयामि ( मैं ) नाश करता हूँ ।  
रक्षामि ( मैं ) सिरखता हूँ ।  
स्पृश्याम ( हम दो ) छूते हैं ।  
त्यक्ष्याम ( हम दो ) झाड़ते हैं ।  
वशाम ( हम लोग ) बोलते हैं ।  
स्पृह्याम ( हम लोग ) चाहते हैं ।

उपर्यो उदाहरणोंसे ये नियम निकलते हैं —

१। सि, थ, और थ यथाक्रम वर्तमानकालिक क्रियाके मध्यम पुरुषके एकवचन, द्विवचन, तथा बहुवचनके प्रत्यय हैं, और मि, व, म वर्तमानकालिक क्रियाके उत्तम पुरुषके एकवचन, द्विवचन, तथा बहुवचनके यथाक्रम प्रत्यय हैं ।

२। स्पृष्ट्यामि, स्पृष्ट्वाथ, वदाम —मि, व, म के पूर्व थ को दीर्घ हो जाता है ।

शाभ्यामि—मैं शान्त होता हूँ ।

शान्याम —हम लीग चकते हैं ।

शान्याथ —हम दो सभा करते हैं ।

माश्यामि—मैं मत्त होता हूँ ।

काम्यति—वह शुभाता है ।

धाम्यन्ति—वे घूमते हैं ।

धम्यति—वह घूमता है ।

धम्यसि—तू घूमता है ।

इन उदाहरणोंसे ये नियम सिद्ध होते हैं —

३। शम्, श्रम्, चम्, मद्, और क्रम इन धातुओंके थ को दीर्घ होता है ।

४। भूम भ्यामि तथा श्रियामि दोनों गणोंमें पड़ा हुआ है । और श्रियामिमें थ को विकल्पसे दीर्घ होता है । इस प्रकार इसके तीन रूप होते हैं —भूमति, चमरति, आमरति ।

गच्छसि—तू जाता है ।

दृच्छामि—मैं चाहता हूँ ।

तिष्ठन्ति—वे खड़े रहते हैं ।

पृच्छाम —हम लोग पूछते हैं ।

पश्य—तम लोग देखते हो ।

पिबत —व हो पीते हैं ।

५। गणविद् ( विकरण ) के पहिले कुछ धातुओंके खानमें दूसरे आदेश हुआ करते हैं । जैसे—गम् के खानमें गच्छ, द्रव के खानमें दृच्छ, ध्या के खानमें तिष्ठ, पच्छ के खानमें पृच्छ, दृग् के खानमें पश्य, और धा के खानमें पिब आदेश होता है ।

गच्छाम्—इमं नाम ज्ञानं है ।

आगच्छामः—इमं ज्ञानं प्राप्तं है ।

वर्षामि—मैं रहता हूँ ।

निर्वर्षामि—मैं रहता हूँ ।

नवध—नमः न ले जाते हैं ।

आनवध—नमः न ले जाते हैं ।

तराम—इमं ज्ञानं प्राप्तं करत है ।

अवतराम—इमं ज्ञानं अवतरत है ।

६। धातुश्रीके पहिले लगे हुए धा, नि अत्र इत्यादि उपसर्ग कहते हैं । य बहुधा धातुश्रीके अर्थको बतल दत है ।

सास—इध न महान है ।

यान्ति—य जान है ।

साव—सा धातुका रूप है, और यानि या धातुका । य अर्थात्सावसे धातु है ।

७। अर्थात्सावके धातुश्रीके काइ मन्त्रविद् नही जाना । धातुश्रीके वाँ ही प्रथम लगावे जान है ।

अष्टमशतकः ।

भ्वादि ।

गद् ( गच्छ ) जाना

आगम्—( गच्छ ) जाना

सि—साज करना

अत्र नृ—उतरना ( अत्र=नीचे )

त्यज—छोड़ना

दृम् ( पश्य )—देखना

आ नी—जाना

पा ( पिम् )—पीना

असु—धूमना

नि वध—रहना

खा ( तिष्ठ )—खड़ा रहना

दृ—दरख करना ।

दियादि ।

कम् ( ज्ञाम् )—यकना

जम् ( ज्ञाम् )—जाना करना

सुम्—सोभना

धम् ( धाम् वा भम् )—धूमना

मद् ( माम् )—मत होना

शम् ( ज्ञाम् )—ज्ञान होना

सुष—सूचना

धम् ( धाम् )—यकना

तुदादि ।

हम् ( हृच्छ )—वाहना

मच्छ ( पृच्छ )—पूछना

अदादि ।

या—जाना

खा—नहाना

## पाठ ५ ।

## उपमा ।

अपनयति—बड़ हटाता है ( अय = दूर ) ।	प्रतिवदाम—हम लोग उत्तर देते हैं ( प्रति = ब-लीमें ) ।
अनुसरति—बड़ पीढ़े चलता या अनुकरण करता है ( अनु = पीढ़े ) ।	उपगच्छत—उ दो समीप आते हैं ( उप = समीप ) ।
उत्पत्तामि—मैं जाता हूँ ( उत् = ऊपर ) ।	अयमच्छात्र—हम दो जानते हैं । ( यहापर अय का अर्थ 'नीचे' नहीं है । )
विनश्यति—तुम दो नष्ट होते हो ( वि = पूरा रूपसे ) ।	प्रचरमि—तुम चलत हो ( प्र = आगे ) ।

## गम—ख्याति ।

	ए व ।	दि व ।	व व ।
प्रथम पुरुष	गच्छति	गच्छत	गच्छन्ति
मध्यम ,,	गच्छसि	गच्छथ	गच्छथ
उत्तम ,,	गच्छामि	गच्छाथ	गच्छामः

## पुष—दिवानि ।

प्र पु	पुष्यति	पुष्यत	पुष्यन्ति
म पु	पुष्यसि	पुष्यथ	पुष्यथ
उ पु	पुष्यामि	पुष्याथ	पुष्यामः

## इष—तुनानि ।

प्र इ	इच्छति	इच्छत	इच्छन्ति
म इ	इच्छसि	इच्छथ	इच्छथ
उ इ	इच्छामि	इच्छाथ	इच्छामः



## वर-चुराणि ।

प्र पु	घोरयति	घोरयत	घोरयन्ति
म पु	घोरयसि	घोरयथ	घोरयथ
व पु	घोरयामि	घोरयाव	घोरयाम

## स्ना-शान्ति ।

प्र पु	स्नाति	स्नात	स्नान्ति
म पु	स्नासि	स्नाथ	स्नाथ
व पु	स्नामि	स्नाव	स्नाम

उत् + पतामि = उत्पतामि, यद्वा उत् का तु ह्रस्वा है ।

यद्वा खानना आद्यप्रथम है कि अपने२ स्थानोंके अनुसार खर और ध्रुवन किम यौगों में विभक्त हैं ।

अ, आ, कु, ( क्, ख् ग्, घ्, ङ् ) ए, और विशर्गा—कण्ठस्थानीय ।

इ, ई, वु ( व्, ष्, ज्, झ्, ञ् ), यू, और ञ्—तालुस्थानीय ।

श्रु श्रु, ( ष् ष्, ङ् ङ्, ञ् ) र् और य्—मूढस्थानीय ।

लृ, ल, ( लृ, लृ, वृ, धृ न ) ल, और स्—दन्तस्थानीय ।

उ, ऊ पु, ( प्, फ्, ब्, भ्, म् )—श्रोष्ठस्थानीय ।

ए और ऐ—कण्ठतालुस्थानीय ।

ए=अग्रस्य ( अ वा आ ) + इयण ( इ वा ए ), ऐ=अर्धवर्ष ( अ वा आ ) + ऐ ।

ओ तथा औ—कण्ठोष्ठस्थानीय ।

ओ=अग्रस्य ( अ वा आ ) + उवण ( उ वा ऊ ), औ=अग्रस्य ( अ वा आ ) + औ ।

ॐ धृ—दन्तोष्ठस्थानीय ।

ह्, ङ्, ञ्, न्, और म्—इनका ऊपर लिखे हुए स्थानोंके सिवा नासिका स्थान भी है और वे अनुनासिक कहलाते हैं ।

य्, व्, और ल् अननुनासिक भी हैं और अनुनासिक भी । क् से म् तकके पाचो वर्गोके ( कश्म, चश्म, टश्म, तश्म, और पश्म ) वय व्यर्थ कह्वाते है, क्वा कि इन वर्गो के उच्चारण करनेमें जिह्वाका अग्र, उपाग्र, मध्य, और मूल इनके उच्चारण स्थानोको ( कच्छ, तालु, मूर्हा, मन्त, और ओष्ठोको ) धर्ष करता है ।

पांचो वर्गोके प्रथम, तृतीय, तथा पञ्चम वय और य्, र्, ल, व्, अल्प प्राण कह्वाते है । कोकि इनके उच्चारणमें कम श्वासकी अपेक्षा है और उनका उच्चारण सुगमता से हो सकता है । इनके सिवा अन्य वर्ग महाप्राण कह्वाते है, कोकि इनके उच्चारणमें अधिक श्वासकी अपेक्षा है और इनका उच्चारण कठिनतासे जाता है ।

वर्गोके प्रथम और द्वितीय वय तथा, ञ्, घ्, ञ्, अघोष ( कठोर व्यञ्जन ), और, य्, र्, ल्, व्, तथा ह् अघोष ( कोमल व्यञ्जन ) कह्वाते है ।

य्, र्, ल, और व् अन्तःस्थ वा अन्त स्था ( अन्त स्वर ), और ञ, घ, ञ, तथा ह् ऊपरन् कह्वाते है ।

उद् + पतति = उदपतति, उद् + तरति = उदतरति, उद् + पात = उदपात, उद् + साह = उदसाह, उद् + सेजनम् = उदसेजनम् ।

नियम—अनुनासिक वा अन्त स्था को छोड कर और कोई व्यञ्जन, जय इनके धात्वा काई अघोष वय हो, अपने वर्गके प्रथम वयमें बन्ल जाता है ।

शब्दसङ्ग ह ।

अनु ह् ( ध्यात् ) पीछे जाना, अनुकरण करना ।

अप नी ( ध्यात् ) ले जाना ।

अय गम् ( ध्यात् ) जानना ।

उद् पत् ( ध्यात् ) ऊपरना ।

उप गम् ( ध्यात् ) पास जाना ।

प्र चर ( ध्यात् ) आगे चलना ।

प्रति यन् ( ध्यात् ) विमृष्टं धोतना , उत्तरं यना ।  
 वि नयन् ( णिधात् ) पूजयति नष्टं होना ।

### पाठ ६ ।

शकाराणां शब्द ।

वान् क्रीडति—लड़का खेलता है ।  
 श्रव् धरति—श्रव्यधरति—धोड़ा चलता है ।  
 जन सरति—जनधरति—ग्राम्यो तीरता है ।  
 धीरो धारयति—श धीर धुराम है ।  
 वृक्षो धतत—श वेड़ मारते हैं ।  
 युधा पठन्ति—धण्डित लोग पढ़ते हैं ।  
 देवा अर्पन्ति—श्या अर्पन्ति—द्वय लोग जीतते हैं ।  
 पणम् शुष्यति—पण शुष्यति—पता सूखता है ।  
 नयने पश्यतः—श श्राम्ने देखते हैं ।  
 पापानि नश्यन्ति—पाप नष्ट होत है ।  
 ट खानि गच्छन्ति—हु ख गलत है ।  
 धमम् उच्यन्ति—धममुच्यन्ति—में धर्मका उद्देश्य करता है ।  
 श्रमत्यम् यदय—श्रमय यदय—गुम लोग भूत खोलते हो ।  
 धान्नां ताडयति—यद शो लड़काको मारता है ।  
 वेदान् पठाम—धम लोग वेदाको पढ़ते हैं ।  
 पुस्तकानि लिखन्ति—व लोग पुस्तकोंको लिखते हैं ।  
 वक्ष, सुष्टु, भण्डि—लड़के, तू अच्छा कहता है ।  
 धात विभक्तियां है ।  
 प्रथमा—यद प्रातिपदिकाथमे लगती है ।  
 द्वितीया—यद द्विपदाक कमको लिखाती है ।  
 तृतीया—यद कियो कियोको कता या करणको लिखाती है ।

चतुर्थी—यह उसको जियाती है जिसको कोई वस्तु डी जाय ( सम्प्रदान ), किया जिससे लिये कोई काम किया जाय ( ताटय्य ) ।

पञ्चमी—अपादान वा हेतुको जिखाती है ।

षष्ठी—सम्बन्धका बोध कराती है ।

सप्तमी—यह किसी क्रियाके अधिकरणको बताती है ।

सम्बोधन कोई आठवाँ कारक नहीं है यह केवल प्रथमाका बाध कराती है और किसीको पुकारनेमें इसका प्रयोग किया जाता है जैसे—ह वरुण, सुष्ठु मण्डि ।

योध शरी स्रपति, शरी स्रपति योध, या स्रपति शरी योध = वीर तो बाणा को फेंकता है ।

संस्कृतमें वाक्यके शब्दोंके क्रमके लिये कोई नियम नहीं है ।

इस पाठमें अकारान्त शब्दोंके प्रथमा, द्वितीया, और सम्बोधनके रूप लिये राय है ।

राम—पु लिङ्ग ।

	ए व ।	द्वि व ।	उ व ।
प्रथमा	राम	रामो	रामा
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान
सम्बोधन	हे राम	ह रामो	ह रामा

फल—नपु सक लिङ्ग ।

प	फलम्	फले	पनाति
द्वि	”	”	’
स	हे फल	”	”

अव्य + चरति = अव्यचरति, जन + तरति = जनस्तरति ।

नियम—

१ । जिसके लिये वाक् लव च् वा क् आये तो यह श् में बदल जाता है, और सब उसको बाध त तथा य आये तो यह स में बदल जाता है ।

२ । यदि चिसमस्य षट्क्षे या हा शोर उपस्य यां काह स्वर या कामस्य व्यञ्जन ही तो वसका लाप हो जाता है ।

३ । त्रिसमाका लाप होने पर पाप पाप रहवशात् स्वरोंमें सन्धि काय नहीं होता ।

(अ) पुष्यम् + हरति = पुष्य हरति—

(ब) वनम् + गच्छति = वन गच्छति या वनद्गच्छति—

(क) पुस्तकम् लिखति = पुस्तक लिखति या पुस्तकलिखति —  
नियम—

४ । विभक्तिपूर्वके मर्दित ङीको प् कहत हैं जैसे—राम, फले, गच्छत ।

५ । (अ) पय्य हरति—जब किसी प्के अन्तमें य हा शोर वसक यां श, प, स, द, वा र हा तो यह अनुस्वारमें बदल जाता है ।

(ब) वन गच्छति, या वनद्गच्छति—जब म के यां काह अन्य व्यञ्जन हो तो यह अनुस्वारमें अथवा जिस थगका यह व्यञ्जन हो उसके अनुनासिकमें बदल जाता है ।

(क) पुस्तक लिखति—या—पुस्तकलिखति—जब म के यां य, थ, वा ल हो तो यह अनुस्वारमें अथवा अनुनासिक ए, थ, वा ल में बदल जाता है ।

दृ प नम्यति ।

जरमस्यति शीर ।

अनृत वन्धि ।

तिष्ठन्ति पयता ।

स्तनाशोरयन्ति ।

ताडयन्ति शीरान ।

पर्णानि पतन्ति ।

शब्दसमष्ट ।

अकारान्त पुलिङ्ग शब्द ।

अश्व —घोड़ा

वीर —वीर

जन —मनुष्य

देव —देवता

धर्म —धर्म

पत्रत —पत्राङ्क

बाल —लड़का

सुध —परिणत

योध —सिपाही

यत्स —प्रिय बालक

वीर —वीर

सृष्ट —पेड़

वेद —वेद

शर —तीर

स्तेन —चोर

नपुंसक ।

अनन्तम—भूठ

असत्यम—भूठ

दुःखम—दुःख

नयनम—नेत्र

पदम्—पत्नी

पापम्—पाप

पुस्तकम्—पुस्तक

वनम्—जंगल

धातु ।

अस ( अक्षति ) दिवादि—केंकना ।

उपदेश ( उपदिशति ) मुनादि—उपदेश करना ।

कोड ( क्रीडति ) च्यादि—खेलना ।

गल ( गलति ) च्यादि—गलना ।

तड ( ताडयति ) चुरादि—पौठना , मारना ।

भण ( भणति ) च्यादि—बोलना ।

## पाठ ७ ।

शकारान्त शब्द ।

रथेन श्रागच्छति—रथेनागच्छति—वह रथसे आता है ।

पादाभ्या चलति—वह दो पैरोंसे चलता है ।

अक्षराणि गणयति बाल—लड़का अक्षरोंको गिनता है ।

बाले सह क्रीडामि—म लड़कोंके साथ खेलता हूँ ।

रामाय नम—रामका नमस्कार ।

क्रोधाद् भवति क्षमोह—क्रोधसे अज्ञान होता है । (क्रोधात्+भवति भी क्रोधाद् भवति से बराबर है) ।

चक्र रथस्य अङ्गम्—चक्र रथस्याङ्गम्—चक्र रथका एक भाग है ।

व्याघ्रस्य भयम्—व्याघ्रस्यो भयम्—व्याघ्रोंसे भय ।

चन्द्रो नक्षत्राणा भूषणम्—चन्द्रो नाराश्रीका भूषण है ।

आकाशि शुक्र उत्पतति—आकाशे शुक्र उत्पतति—आकाशमें शुक्र उड़ता है ।

पुरुषेषु उत्तम—पुरुषेषूत्तम पुरुषात्तम—पुरुषोत्तम वा त्रिषु पुरुषेषु उत्तम है ।

हस्तयो प्रहरति—हाथों पर मारता है ।

इस पाठमें शकारान्त शब्दोंकी प्रथमासे सप्तमीतक चतुर्विध विभक्तिपा ली गयी है ।

राम—पु ।

	ए व ।	द्वि व ।	च व ।
प्र०	राम	रामी	रामा
द्वि०	रामम्	"	रामान
तृ	रामेभ्य	रामाभ्याम्	राम्यै
च	रामाय	रामाभ्याम्	रामभ्य
प	रामागू		"

ध	रामध	रामधा	रामाधाम
घ	राम	१	रामधु ।
चं०	राम	रामो	रामा।
		प्रम -मधु ।	
छ०	प्रमम	प्रमे	प्रमात्रि
झ०	१	१	१
ण	प्रमम	प्रमाध्याम	प्रमे
त	प्रमाप		प्रमभ्य
थ	प्रमाप्		१
द	प्रमम	प्रमदा	प्रमादाप
ध	प्रमे		प्रमधु
घ ०	प्रम	प्रमे	प्रमात्रि

रामध रामाधाम पीर प्रमम, प्रमानाम हम वही पर धाम ही ।  
 यदिनि ही वनीं म का न ह। प्रमा है ।

म का न् हीवसे प्रिमम

१। प्रिमममम प्रिममाम्, म + म - म, म् + म मम +  
 म् + म ममम -

अथ म् + म ( म् + म् + म्, म्, म् + म् से मम म् मम है म्  
 ममम म् म् ममम है ।



५। क्राधात् + धयति = क्राधाद् धयति — पदके अन्तमें आनवाता अनुनासिक क्रि या अन्त स्वसं विद्या काई व्यञ्जन अन्त वगैरे वृत्तोंप अन्त में अन्त जाता है, यदि उसके धा कोई स्वर या घाघ वर्ण हो ।

रत्र + अघ = अघाघ , देघ ; आनयम् = देहालयम् , रत्न + आगच्छति = रत्नागच्छति , कत्रि + हेम्बर = कत्रीम्बर , रागु + उत्तम = रघुत्तम ; पुरुषेषु + उत्तम = पुरुषेषुत्तम — अधानिचित नियमके अनुसार होने हैं —

६। उच्च अ इ उ, ऋ ( इत्य या दीर्घ ), तथा लृ के धात्र यही इत्य या दीर्घ स्वर आते हैं तो उन नानों परीके खानमें दीर्घ होता है ।

इस प्रकार अघरा + अघरा = अघा , इयल + इयल = ई , अयल + अयल = ऊ , अयल + अयल = अृ , लृ + लृ = लृ । (कोकि लृ को दीर्घ नहीं होता, और अृ तथा लृ अयल या अघरा में हैं । )

व्याघेभ्य + भयम् — यही पर त्रिसगको उ हुधा, और उचका पहिला अ तथा उ मिलकर अधोलिखित नियमके अनुसार ओ हो गया :—

७। मन + रघ = मनारघ , मन + भाघ = मनोभाघ , मन + वृत्ति = मनोवृत्ति , मन + हर = मनोहर , धाम + अस्ति = धामो अस्ति ( अन्तमें धामोर्गिक पाठ ८, नियम ४) — उच्च त्रिसगके पहिले अ हा और उचके धा अ या कोई घीप लृ हा तो उच त्रिसगका उ हो जाता है ।

यह उ तथा उचके पहिला अ मिलकर अधोलिखित नियमके ओ हो जाता है ।

८। परल + इरर = परमेरर , अलृ + उच = अलृोच , गङ्गा + उचकम् = गङ्गोचकम् —

उच्च अ या आ के धा इ, उ, ऋ ( इत्य क्रिया दीर्घ ), या लृ आता है तो उन दीर्घोंके खानमें इ उ, अृ, तथा लृ के मूल अर्थात् इ, ओ, अर, तथा अल आदेश होने हैं ।

इस प्रकार अयल + इयल = ए , अयल + अयल = आ , अयल +

श्रवण=श्र, और श्रवण+ल=शल । व्याघ्रभ्य + भयम=व्याघ्रभ्य  
+ उ + भयम=व्याघ्रभ्यो भयम ।

नियम— शुक + उत्पत्ति=शुक उत्पत्ति ।

८ । विशगके पहिले श्र हो, और उसके बाद श्र को श्रिया कोई श्र हो, तो उसके लोप होता है ।

नमो देवेभ्य ।  
शरीर क्षयति ।  
नरा दुर्गाणि तरन्ति ।  
भद्राणि पश्यन्ति जना ।  
पृथानि प्रविशन्ति ।

पुत्रेण सद्य धायति ।  
शश्राद्वतरति योधः ।  
वनेषु व्याघ्रा भ्रमन्ति ।  
सदाहृत पतति शुक ।  
बालस्य चित्त क्षुभ्यति ।

अकारान्त पुलिङ्ग शब्द ।

आकाश — आकाश  
क्रोध — क्रोध  
चन्द्र — चन्द्रमा  
दुग्ध — कठिनाह  
नर — मनुष्य  
पाद — पैर  
पुत्र — लड़का  
पुरुष — १ पुरुष, २ आत्मा

पुरुषोत्तम — विष्णु  
रथ — रथ  
राम — राम  
व्याघ्र — व्याघ्र  
शुक — तोता  
समोह — अज्ञान  
दक्ष — दास

अकारान्त नपु मक शब्द ।

शङ्खम् — शरीरका श्रवण ।  
शस्त्रम् — शस्त्र  
आकाशम् — आकाश  
घटम् — घट  
शकम् — शक  
दुग्धम्

नक्षत्रम् — नक्षत्र ।  
भद्रम् — मङ्गल  
भयम् — डर  
मूषणम् — गहना  
शरीरम् — शरीर

## विशेषण

सप्तम—सप्तमं शब्दा ।

अथय ।

षट्—षाय ( षट् या एषी अयने नम—नमस्कार ( षट् अक्षरोंसे  
दूमरे शब्द जैसे चाक्षुष मातृशु, माय प्रयाग क्रिया आता है ।  
द्वितीयाके माय आता है )

शान् ।

चन ( चलति ) च्याङि—चनना ।

प्रविश ( प्रविशति ) श्वाङि—चुमना ।

मद् ( महरति ) च्याङि—मारना या प्रहार करना ।

ष [ षाज ] ( घायति ) च्याङि—शौचना ।

पाठ ८ ।

इकारान्ता, उकारान्ता, तथा ञकाराना शब्द ।

रवि उच्य याति—रविद्वय याति मय्ये उच्य का आता है—सूय  
उच्यि आता है ।

राम कपिभि रात्रलं जयति—राम कपिभो रात्रलं जयति—राम  
बल्लरोंसे रात्रलको जीतता है ।

अवय भूपतीनाम् चरितं वक्ष्यन्ति—अवयो भूपतीनां चरितं वक्ष्य  
यन्ति—कवि लोग राजाआज्ञा चरित्तुको बतलन करते हैं ।

गुरवे नम—गुरुको नमस्कार ।

वीर अर्शनं जयति—वीरोऽरीज्वयति—वीर अक्षुर्चाको जीतता है ।

हरये स्वस्ति—हरिको जयनपकार ।

अमनये स्वाहा—अग्निको स्वाहा ( आहुति ) ।

मिशू वृक्षमारोहत—मिशूको पेड़पर चढ़ने हैं ।

मनो अपत्यानि मानवा = मनोरपत्यानि मानवा — मनुके लङ्के मानव (कहाते है) ।

बहव जन्तव, बहून् जन्तून् इत्यानि—

विशेष्य तथा विशेषणका लिङ्ग, वचन, तथा विभक्ति एक होती है ।

शिशा अपि प्रहरति मूर्ख = शिशवापि प्रहरति मूर्ख — मूर्ख लङ्के पर भी प्रहार करता है ।

विपट्टि धैर्य रक्षन्ति धीरा — धीर लोग विपट्टमें भी धैर्यकी रक्षा करते हैं ।

भानु ऋषि मणि — भानुऋषि मणि — सूर्य दिनका रत्न है ।

सुहृदाम् वचन नातिक्रामन्ति = सुहृदा वचन नातिक्रामन्ति— वे लोग मित्रोंकी बातकी उल्लङ्घन नहीं करते ।

इस पाठमें इकारान्त, उकारान्त, तथा ऋकारान्त शब्द ऋषि गये हैं ।

हरि—पलिङ्ग ।

	ए व ।	द्वि व	अ व ।
प्र.	हरि	हरी	हरय
द्वि	हरिम	,	हरीन
तृ	हरिणा	हरिभ्याम	हरिभि
च	हरये	हरिभ्याम	हरिभ्य
प	हरे	"	,
ष	"	हर्या	हरीताम
स	हरी	"	हरिषु
स	हर	हरी	हरय

भानु—पलिङ्ग ।

प्र	भानु	भानू	भानव
द्वि	भानुम्	"	भानून
तृ	भानुना	भानुभ्याम	भानुभि

ख	भानये	भानुभ्याम्	भानुभ्य
घ	भानो	"	"
ग	"	भानो	भानुनाम
घ	भानो	"	भानुषु
घ	भानो	भानू	भानवः

हरि श्रीर भानु शब्दको शब्दको मिलानेपर यह मान्य होता कि इन दोनोंमें एकसा परिवर्तन हुआ है ।

त्रिपङ्—लीलिङ् ।

	ए व ।	द्वि ष ।	स ष ।
प्र	त्रिपङ्	त्रिपङ्गे	त्रिपङ्गः
द्वि	त्रिपङ्गसु	"	"
तृ	त्रिपङ्गा	त्रिपङ्गभ्याम्	त्रिपङ्गि
च	त्रिपङ्गे	,	त्रिपङ्ग्भ्या
प	त्रिपङ्ग	"	"
घ	"	त्रिपङ्गा	त्रिपङ्गाम
घ	त्रिपङ्गि	"	त्रिपङ्गु
सं	त्रिपङ्गु	त्रिपङ्गी	त्रिपङ्ग

इन तथा इनको पहिले लिखे हुए अक्षरपरिसे ये प्राप्य सुगमतासे मालूम होते हैं —

	ए व ।	द्वि ष ।	स ष ।
प्र	षु	श्री	शस
द्वि	शस	"	"
तृ	शा	भ्याम	भिश
च	ए	"	भ्यष
प	शस		

प	अम्	ओम्	आम्
म	इ	॥	उ
म	उ	ओ	अस

१ । विपश् + स = विपश् — व्यञ्जनान्त शब्दोंका प्रत्यय स का लोप हो जाता है ।

अब हम लोग इस पाठमें दिये हुए वाक्योंमें सन्धिसे नियमोंका विचार करें ।

रवि + उदयम् = रविउदयम् , कपिभि + रायणम् = कपिभिरायणम् = कपिभो रायणम् , मनो + अपत्यानि = मनोरपत्यानि , भानु + दिनश्च = भानुदिनश्च , निर + रस = नीरस , निर + रोग = नीरोग —

नियम —

२ । जब विसर्गके पहिले अ वा आ के सिया कोई स्वर आवे और उससे बाद कोई स्वर या घोष व्यञ्जन हो तो यह र में बदल जाता है ।

३ । जब र के बाद र हो तो उसका लोप होता है, और उससे पहिलेका स्वर, यदि वह द्रव्य हो, दीर्घमें बदल जाता है ।

घीर + अरीन = घीरोरीन —

जब विसर्गके पहिले और बाद अ हो तो यह उ में बदल जाता है ( पाठ ७ नियम ७ ) अ + उ = ओ ( पाठ ७ नियम ८ ) ।

४ । जब किसी पके अन्तमें रहनेवाले ए वा ओ के बाद अ आता है तो यह अ उनमें मिल जाता है, और यह उसका मिलना ऽ चिह्नसे लिखाया जाता है, जिसको अबग्रह कहते हैं ।

गुरो + अपि = गुरोऽपि , नी + अक = ने १ + अक = नायक , पो + अक = पायक ।

१ । अक ( जो धातुसे होने वाला एक प्रत्यय है और कर्ताका बोध कराता है ) के पहिले धातुके अन्तिम स्वरको वृद्धि आद्य होता है ।

ब	भाबउ	भाबुभ्याम्	भानुभ्यः
घ	भाभो	"	"
च	"	भाभ्योः	भानुनाम
झ	भाभौ	"	भानुषु
ञ	भामा	भानू	भानुतः

हरि श्रीर भानु शब्दसे ब्रह्मेश विमानिपर यह मान्य होगा कि इन दोनोंमें एकसा परिग्रहण हुआ है ।

त्रिपञ्च—श्लोक्तिः ।

	ए य ।	द्वि य ।	उ य ।
अ	त्रिपञ्	त्रिपञ्चो	त्रिपञ्
इ	त्रिपञ्चम्	"	"
ए	त्रिपञ्च	त्रिपञ्चाम्	त्रिपञ्चि
अ	त्रिपञ्चं	"	त्रिपञ्चस्य
अ	त्रिपञ्च	"	"
अ	"	त्रिपञ्चो	त्रिपञ्चाम
अ	त्रिपञ्चि	"	त्रिपञ्चसु
अ	त्रिपञ्च	त्रिपञ्चो	त्रिपञ्च

इन तपः इनसे पहिले श्लोके हुए शब्ददोष ये प्रत्यय सुगमतासे मान्य होने हैं ।—

	ए य ।	द्वि य ।	उ य ।
अ	अ	श्री	अस
इ	अस	"	"
तू	आ	भ्यास	भिस
अ	अ	"	अस
अ	अस	"	"

कुर्वेरा निधीनामोश ।  
 मातलिरिन्द्रस्य सारथि ।  
 अत्रय कुसुमाना गन्ध हरन्ति ।  
 साधवो विपत्सु धैय न त्यजन्ति ।  
 बाला पांसुभिः क्लीडन्ति ।

सप्ताशब्द ।

अग्नि ( पु )—आग	धैय ( न )—धीरज
अपथ ( न )—वन्तान	निधि ( पु )—खपाना
अरि ( पु )—शत्रु	पासु ( पु )—धूल
अलि ( पु )—भस्वर	भूपति ( पु )—राजा
इन्द्र ( पुं )—इन्द्र, स्वर्गका राजा	मानु ( पु )—मूय
ईश ( पु )—स्वामी	मथि ( पु )—रत्न
उचि ( पु )—समुद्र	मनु ( पु )—मनु
उदय ( पु )—उदय, उन्नति	मातलि ( पु )—इन्द्रका सारथि
कपि ( पु )—उन्दर	मानव ( पु )—मनुष्य
कवि ( पु )—कवि	रथि ( पु )—मूय
कुर्वेरा ( पु )—कुर्वेरा, धनका प्रभु	रायण ( पु )—रायण
कुसुम ( न )—फूल	वचन ( न )—वचन
गन्ध ( पु )—गुग्गुलु	विपत् ( स्त्री )—विपत्
गुष ( पु )—अध्यापक	शिशु ( पु )—लड़का
चरित ( न )—चरित	साधु ( पुं )—सज्जन
जन्तु ( पुं )—प्राणी	सारथि ( पु )—सारथि
ज्नि ( न )—ज्नि	सुष्टु ( पु )—मित
धीर ( पुं )—गम्भीर पुरुष	हरि ( पुं )—१ कृष्ण, २, किसी पुरुषका नाम



नियम —

५। ए, ऐ, आ, तथा आ को वाञ्छित अक्षर का द्वि स्वर होता है तो सामने वे अक्षर, अक्ष, आय तथा आव में बदल जाते हैं ।

हरये और विष्णवे—इनके द्व तथा व को गुण जानना चाहिए—इसी नियम को अनुसार वन है ।

हरि + ए = हर + ए = हरय + ए = हरये ।

गुरु + ए = गुरो + ए = गुरुव + ए = गुरुवे ॥

६। गुरो + अपि = गुरापि और गुरा अपि—

जब ए, ऐ, आ, तथा ओ, किसी पञ्च अन्तमें हात हैं और उनके बाद कोई स्वर रहता है, तो उनके स्थानमें होनेवाले अक्ष, अक्ष, आय, तथा आव को य तथा व का विकल्पसे लोप होता है, और इस प्रकार उनका लोप होनेपर एक साथ आये हुए स्वर आपसमें नहीं मिलते ।

हर + ए = का केवल हरये होता है, क्योंकि हर का ए पञ्च अन्तमें नहीं है ।

अरीम + जयति = अरीञ्ज जयति मत् + चरितम् = मच्चरितम् —

नियम —

७। अक्ष स या तयगका का द्व वग्न श या चयगका किसी लक्षणके साथ आता है, तो स को श होता है, और तयगके वग्नको चयों म्का का चयगका वग्न होता है । इस प्रकार अरीञ्ज जयति में वग्नक पञ्चम व् को स्थानमें वग्नका पञ्चम ज हुआ, और मच्चरितम् में प्रथम वग्न व् को स्थानमें प्रथम वग्न च हुआ ।

८। अतिक्रान्ति या अतिक्रान्ति—काम् स्थानि तथा दिव्यानि ज्ञानि में है और उनके उपान्त अ को लोप होता है ।

आकाश उड्डयन्ते शुका --तोषे आकाशमें उड़ते हैं ।

वल्मी । सुगु गोभसे विनयन—घची, तू विनय से अच्छी शोभती है ।

असत्य भाषध्वे—तुम लोग झूठ बोलते हो ।

पुष्पाणां गन्ध हरन्ति अल्प = पष्पाणां गन्ध हरन्तालप —धमर  
फूलोंके गन्धको हरते हैं ।

विद्यालान् ताडयति = विद्यालांघ्नाटयति—वह विद्यार्थियोंको मारता है ।

इष्टु अस्त्विति—वह तो वाश्याकी फँकता है ।

प्रतिप० चन्द्रकनीय दिने दिने वर्धते वान्ना—प्रतिपदकी चन्द्रकलाकी  
तरङ्ग त्रिन त्रिन लड़की बढती है ।

कन्ययो विद्याहो (कनयोविद्याहो) वर्तते ऽद्य—आज हो लड़कियों  
का विवाह है ।

इस पाठमें ण्ये हुए वर्तमान कालके रूप पहिले दिये गये होंसे  
भिन्न हैं, जैसे रमन्, शोभन्, भाषन्, उड्डयन्ते । धातुओंसे जाईजानेवाले  
प्रत्यय दो प्रकारके होते हैं परस्मैपद और आत्मनेप० । जिन धातुओंमें  
परस्मैपद प्रत्यय लगते हैं वे परस्मैपदी, जिनमें आत्मनेपद प्रत्यय लगते हैं  
वे आत्मनेपदी, और जिनमें दोनों प्रकारके प्रत्यय लगते हैं वे उभयपदी  
कहाते हैं । वर्तमान कालके दोनों पदोंके हर एक प्रकार होते हैं —

भू-भ्वादि—परस्मै ।

	ए ष ।	हि ष ।	व ष ।
प्र पु	भवति	भवत	भवन्ति
म पु	भवसि	भवथः	भवथ
उ पु	भवामि	भवाम	भवाम

घात

श्रव्य

अतिक्रम (अतिक्रामति, अतिक्राम्यति)  
 (भ्याङि तथा ङिआङि) — पार  
 करना लांघना  
 रत्न (भ्याङि) ब्रधाना  
 आरुह (आरोहति) (भ्याङि) चढ़ना  
 वण (वणयति) (चुराङि) — वणन  
 करना

अपि—भी  
 न—नही  
 अस्ति—अप्यज्यकार । (यद्य चतुर्थी  
 को साथ आता है ।)  
 स्यादा—आहुति देनेके समय उच्चारण  
 किया जाता है । (यद्य चतुर्थी  
 का साथ आता है ।)

विशेषण

बहु—बहुत ।

पाठ ६ ।

आत्मनेपद वक्तमान काल तथा

आकारान्त शब्द ।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकम्—विद्या सबसुख मनुष्यकी बड़ी  
 सुन्दरता है ।

सीतया सह रामो रमते—सीताके साथ राम खेलता है ।

नरपतिविघ्नैः प्रजास्त्रायते—राजा विघ्नोके प्रजाश्रीको बचाता है ।

मयूरा वर्षासु नृत्यन्ति—मोर बरसातमें नाचते हैं ।

रमायाम् हरिश्चतुष्क = रमायां हरिश्चतुष्क — रमा (सरसी) के  
 लिये हरि चतुष्क है ।

पाठशालाभ्यः घाप निगच्छन्ति बालिका—लड़कियां घायशालाको  
 पाठशाखाश्रीके निकलती हैं ।

आकाश उडडयन्ते शुका -तोते आकाशमें उड़ते हैं ।

वत्स ! सुष्ठु शोभसे विनयेन—बच्ची, तू विनय से अच्छी शोभती है ।

अस्य भाषध्वे—तुम लोग झूठ बोलते हो ।

पुष्पाणां गन्ध हरन्ति अलप = पुष्पाणां गन्ध हरन्त्यालय—धरम  
फूलोंके गन्धको हरते है ।

विहालान् ताडयति = विहालान्ताडयति—बच्चा बिल्लियोंको मारता है ।

इषू अस्वति -बच्चा नो बाणको फेंकता है ।

प्रतिपन्थन्द्रकन्नेव िने दिने वर्धते बान्ना—प्रतिपदकी चन्द्रकलाकी  
तरह िन दिन लड़की बढती है ।

कन्ययो विद्याहो (कन्यायोविद्याहो) वर्तते ऽथ—आज हो लड़कियों  
का विद्याह है ।

इस पाठमें िये हुए वर्तमान कालके रूप पहिले दिये गये होंगे  
भिन्न है, जैसे रमसे, शोभसे, भाषध्वे, उडडयन्ते । धातुओंसे जोड़जानेवाले  
प्रत्यय हो प्रकारके होते हैं परस्मैपद और आत्मनेपन् । जिन धातुओंमें  
परस्मैपन् प्रत्यय लगते हैं वे परस्मैपदी, जिनमें आत्मनेपन् प्रत्यय लगते हैं  
वे आत्मनेपदी, और जिनमें दोनों प्रकारके प्रत्यय लगते हैं वे उभयपदी  
कहाते है । वर्तमान कालके दोनों पदोंके हर हम प्रकार होते हैं —

भू भ्वादि—परस्मै ।

	ए ष ।	हि ष ।	व ष ।
प्र पु	भवति	भवत	भवन्ति
म पु	भवसि	भवथः	भवथ
व पु	भवामि	भवाव	भवाम

धातु	शब्द
अतिक्रमम् (अतिक्रामति, अतिव्राम्यति) ( म्वाङि तथा ङिवाङि )—पार करमा, लाघमा	अपि—भी न—नहीं व्यति—व्यय जयकार । (यद्य चतुर्थी के साथ आता है ।)
रत्न ( म्वाङि ) ब्रह्मना	व्याघ्रा—आहुति देनेके समय उच्चारण किया जाता है । (यद्य चतुर्थी के साथ आता है ।)
शामह (आरोहति) (म्वाङि) चंद्रना	
वल् (वलयति) (वुराङि)—वर्णन करना	

---

 विशेषण

 बहु—बहुत ।
 

---

## पाठ ६ ।

आत्मनेपद यत्तमान काल तथा

आकारान्त णञ् ।

 विद्या नाम नरस्य ह्यपमधिकम्—विद्या अचमुच मनुष्यकी वड़ी  
सुन्दरता है ।

मीतया सह रामो रमते—मीताके साथ राम खेलता है ।

नरपतिविभ्रंभ्य प्रजास्त्रायते—राना विघोंके प्रजाओंको बचाता है ।

मयूरा वयासु नृत्यन्ति—मीर वरघातमें नाचते हैं ।

 रमायाम् हरिस्तमुक = रमायां हरिस्तमुक —रमा ( लक्ष्मी ) के  
लिये हरि हरमुक है ।

 पाठशालाभ्य धाय निगच्छन्ति बालिका—लड़कियां धायकुलको  
पाठशाखाओंके निकलती हैं ।

आकाश उडडयन्ते शुका —तोसे आकाशमें उड़ते हैं ।

वत्से । सुगु शोभसे विनयेन—बच्ची, तू विनय से अच्छी शोभती है ।

अमत्य भाषध्वे—तुम लोग भूठ बोलते हो ।

पुष्यायां गन्ध हरन्ति अलय = प्रमाणा गन्ध हरन्तलय —धमर फूलोंके गन्धको हरते है ।

विडालान् ताडयति = विडालास्ताडयति—वह बिल्लियोंको मारता है ।

हृषु अस्वति —वह दो बाणोंको फेंकता है ।

प्रतिपदस्यन्द्रकनेव दिने ऋने वर्धते बाला—प्रतिपदकी चन्द्रकलाकी तरह ऋन दिन लड़की बढती है ।

कन्ययो विवाहो (कन्ययोर्विवाहो) वर्तते ऽद्य—आज दो लड़कियोंका विवाह है ।

इस पाठमें ऋये हुए वत्तमान कालके रूप पहिले दिये गये रूपोंसे भिन्न हैं, जैसे रमते, शोभसे, भाषध्वे, उडडयन्ते । धातुओंसे जोड़ेजानेवाले प्रत्यय दो प्रकारके होते हैं, परस्मैपन् और आत्मनेपद । जिन धातुओंमें परस्मैपन् प्रत्यय लगते हैं वे परस्मैपदी, जिनमें आत्मनेपन् प्रत्यय लगते हैं वे आत्मनेपदी, और जिनमें दोनों प्रकारके प्रत्यय लगते हैं वे उभयपदी कहाते है । वर्तमान कालके दोनों पदोंके रूप इस प्रकार होते हैं —

भू म्याङि—परस्मै ।

	ए च ।	हि च ।	व च ।
प्र पु	भवति	भवत	भवन्ति
म पु	भवसि	भवथः	भवथ
उ पु	भवामि	भवाम	भवाम

वध -- ध्या आरमन ।

	ए व ।	द्वि उ ।	व व ।
प्र पु	वधत्	वधत्	वधत्
म पु	वधत्	वधत्	वधत्
ल पु	वध	वधावद्ध	वधावद्ध

प्रत्यय ( परस्मै )

प्र पु	ति	तस	अन्ति
म पु	सि	यस	य
ल पु	सि	वस	मस

आत्मने ।

प्र व	त्	इत्से	अत्से
म पु	से	इय	भ्ये
ल व	ए	वहे	महे

वधावद्ध--वधावद्धे--वध--वधत्--

१ । वहे और महे का पहिल अ को लीय जाता है जैसे वध और मध को पहिले अ को, और अन्ति के पहिले अ को तरह ए और अत्से के पहिले अ का लीय होता है ।

देखना चाहिये कि सब आरमनपर प्रत्यय ए म समाप्त होत है ।

आकारान्त शब्द भी इस पाठमें लिखे गए है ।

रमा--( स्त्री ) ।

	ए व ।	द्वि व ।	व व ।
प्र	रमा	रमे	रमा ।
द्वि	रमाम	००	रमा
तृ	रमया	रमाभ्याम	रमाभि

	र य ।	द्वि व ।	व व ।
च	रमाये	रमाभ्याम्	रमाभ्य
प	रमाथा	"	"
प	,	रमयो	रमायाम्
स	रमायाम्	,	रमासु
स	रमे	रम	रमाः

हरन्ति + प्रलय = हरण्यलय , प्रति + उत्तरम् = प्रत्युत्तरम् , मधु + अरि = मध्वरि ।—

२ । जब इयण, उवण, अयण और लु के बाद उनसे भिन्न प्रकारका (अध्वर्य) स्वर आता है तो ये क्रमसे य, व्, र और ल में बदल जाते हैं ।

विडालान् + ताडयति = विडालास्ताडयति ।—

३ । जब पन्धे अन्तके न के बाद च, छ, त, थ, ट वा ठ हो तो उसका अनुस्वार तथा विसर्ग दोनों ह्रात हैं ।

४ । जब विसर्गके बाद च् वा छ् हो तो उह श में, जब उसके बाद त् वा थ हो तो स् में, और जब उसके बाद ट् वा ठ हो तो ष् में बदल जाता है ।

कपी + आगच्छत, इष्ट + अत्यति, लभेने + अनू यहाँ सन्धिकार्य नहीं हुआ है ।

निर्गम —

५ । हंकारान्त ककारान्त, वा एकारान्त भक्षा क्रियाधातुक शब्दोंके द्वियचनके अन्तिम स्वर उनके आगमके स्वरके साथ नहीं मिलते, इस प्रकार आगमके स्वरसे न मिलने वाले हं, क और ए प्रत्यय कहाने हैं ।

उट्ट + डयते = उट्टयत ।



विषयः -

६। उच्यते यथा तत्राकाकाद एतत्तु यथा ह्यर्थात् विधीयते  
मायया हेतुः यथा यथा हेतुः तत्राकाकाका यथा यथा  
का तत्राकाका यथा यथा हेतुः ( यथा यथा यथा यथा, यथा यथा यथा यथा  
यथा यथा ) यथा यथा यथा यथा यथा यथा यथा यथा यथा यथा ।

हरिद्वानुक्त — यथा यथा यथा यथा यथा यथा यथा यथा यथा यथा  
यथा यथा यथा यथा यथा यथा यथा यथा यथा यथा यथा ।

कथायतिवाह विष्णुपादम् ।  
यातयात् सुयत यातयत्सुम् ।  
यातयात् सुयत म यातयति ।  
यातयात् सुयत म यातयति ।  
यातयात् सुयत म यातयति ।

भयानुक्त ।

यातय ( पुं ) - एक यथाका नाम	यतयति ( पुं ) राजा, यथाकाका
यति ( पुं ) - यथा	यथायति ( पुं ) यथायति
यातय ( पुं ) - यथा, यथा	यथायति ( पुं ) यथायति
यातयत्सु ( म ) - यथा	यथायति ( म ) - यथायति
यथा ( पुं ) - यथा	यथायति ( स्त्री ) - यथायति
कथा ( स्त्री ) - कथायति	यथायति ( म ) - यथायति
यथा ( पुं ) - यथा	यथायति ( स्त्री ) - यथायति
यथायति ( स्त्री ) - यथायति	यथायति ( पुं ) - यथायति
यथायति ( स्त्री ) - यथायति	यथायति ( पुं ) - यथायति
यथायति ( पुं ) - यथायति	यथायति ( पुं ) - यथायति

यथायति

बाला ( स्त्री )—लड़की  
 बालिका ( स्त्री )—लड़की  
 विडाल ( पु )—खिलार  
 भार्या ( स्त्री )—पत्नी  
 मयूर ( पु )—मोर  
 रमा ( स्त्री )—लक्ष्मी, विष्णु की स्त्री  
 रूप ( न )—सुन्दरता  
 लीपामुद्रा ( स्त्री ) श्रगभ्यकी भार्या

यत्सा ( स्त्री )—प्रिय बालिका  
 धर्मा ( स्त्री )—धरमात  
 (यह शब्द सर्वदा बहुवचन ही  
 में प्रयोग किया जाता है )  
 विद्व ( पु )—विद्व  
 विद्या ( स्त्री )—ज्ञान  
 विद्याह ( पु )—विद्याह  
 शीता ( स्त्री )—शीता

विशेषण ।

अधिक—अधिक

| उत्सुक—उत्सुक

अवयव ।

शब्द—शब्द

| नाम—सवमुच

द्वय—तरह , सदृश ,

| शायम—शायङ्काल

धातु ।

श्रम ( श्रमति ) ( द्विधा परस्मै )—  
 फँकना

भाष ( भाषते ) ( द्विधा आत्म )—  
 बोलना

उड्ड + डी ( उड्डो—उड्डयते )  
 ( द्विधा आत्म )—उड़ना

रम ( रमते ) ( द्विधा आत्म )—खेलना  
 लभ् ( लभते ) ( द्विधा आत्म )—पाना

चिन्त ( चिन्तयति ) ( द्विधा परस्मै )—  
 सोचना

वृत् ( वृत्ते ) ( द्विधा आत्म )—घुटना  
 वृध् ( वृधते ) ( द्विधा आत्म )—बढ़ना

वृ ( वृषते ) ( द्विधा आत्म )—  
 बघाना ।

शुभ ( शुभते ) ( द्विधा आत्म )—  
 शोभना

निर् + गम ( निर्गच्छति ) ( द्विधा परस्मै )  
 —निकलना

## पाठ १० ।

## सव्यगाम ।

सव्य भ्यां समीहत—सव्यस्व्याय समीहत—सव्य अपना स्वार्थ  
चाहता है ।

सव्येभ्य दिवेभ्यो नम = सव्येभ्यो दिवेभ्यो नम —सव्य दिवीको नमस्कार ।

सवामु कलामु चर एय बाल = सव्यांस्तु कलामु चतुर एय बाल —  
यह लड़का सव्य कलाश्रोत्रं चतुर है ।

कस्य एय पुतु = कस्येष पुतु —यह लड़का किसका है ?

का याता यतते ? —क्या यत्र है ?

अन्य क अपि एय = अन्य काऽप्येष —यह काहें दूसरा ही है ।

किम् अपि एया कथयति = किमप्येषा कथयति—यह कुछ भी  
कहती है ।

भूपते । एया श्व सा ऊर्मिका = भूपते ! श्वेय शामिका—सहाराज,  
यही वह श्रगूठी है ।

के एते कस्ये—ये दो लड़किया कौन हैं ? ( ये श्रौर एते का स्वर  
प्रपद्य है, इस लिये सन्धि नहीं हुई ) ।

तेषाम विद्या न विद्यते = तेषा विद्या न विद्यते—उनको ज्ञान  
नहीं है

धाम

## सर्व—( पु )

	ए य	दि य	व य
प	सव्य	सव्यो	सर्व
द्वि	सव्यम्	”	सर्वान्
तृ	सर्वेषु	सव्याभ्याम्	सर्वे
च	सर्वेषु	”	सर्वस्य

	ए व	द्वि व	व व
प	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वभ्य
ष	सर्वस्य	सर्वयो	सर्वेषाम्
भ	सर्वस्मिन्		सर्वेषु

सप्त ( न )

	ए व	द्वि व	व व
प्र द्वि	सप्तसु	सर्वै	सर्वाणि

श्रीर सप्त षप प लिङ्गको समान ।

सप्त सर्वनाम है । इसका स्त्रीलिङ्गका षप सर्वा होता है । राम, रमा, तथा फल शब्दको समान षसको तीनों लिङ्गोंमें षप होती हैं । केवल अधोलिखित सर्वामें विशेष है ।

	पु	स्त्री	न
प्र व व	सर्वै		
च ए व	सप्तस्मै	सप्तस्यै	पु लिङ्ग को समान
प ,	सर्वस्मात्	सप्तव्या ( ष ए व भी )	
ष व व	सर्वेषाम्	सर्वासां	
भ ए व	सर्वस्मिन्	सप्तव्याम्	

परस्मै, आभ्युपगाम्, विभक्तौ—पर (वृत्तरा), आत् (वृत्तरा), श्रीर विश्व (सप्त) सर्वनाम है, श्रीर इनको षप सर्वको समान होती है ।

सप्त—( पु ) ।

	ए व	द्वि व	व व
प्र	स	सौ	सौ
द्वि	सप्त	,	सप्तान
पु	सप्त	सप्तभ्याम्	सप्तै

यञ्—( ञो )

	य य	द्वि त्र	य य
य	ययै	याभ्याम्	याभ्यः
प	यथा		"
ब	"	ययोः	याभ्याम्
भ	यथाम्		याभ्यु

किमु—( न ) ।

य	किमु	क	कानि
द्वि	"	"	"
तृ	कन	काभ्याम्	कै

जन्—( न )

प्र, द्वि	जन्तु	जन्तु	जन्तानि
-----------	-------	-------	---------

एतञ्—( षं )

प्र	एष	एतो	एतं
द्वि	एतम् एनम्	एतो ञो	एतान् एनाम्
तृ	एतेम एनन	एताभ्याम्	एतीः
ब	एतश्मे	,	एतभ्य
प	एतश्मात्	"	"
य	एतभ्य	एतया एनयो	एतयाम्
भ	एतस्मिन्		एनेषु

एतद्—( ङो )

द्वि	एताम् एनाम्	एते एन	एता एना
तृ	एतया एनया		
य भ		एतया —एनयोः	

एतञ्—( म )

द्वि	एताद् एतञ्	एत एन	एतानि एनानि
------	------------	-------	-------------

तद्, यद्, एतद्, और किम् मथनाम है । उनके त, य, एत, और क मथनामा चादिप । और इनके रूप सजका समान होते है । तद् को पु लिङ्ग के प्रथमाके एकवचनमें स और एतद् का एप रूप होता है । तद् को स्त्रीलिङ्ग के प्रथमाके एकवचनमें सा और एतद् का एषा रूप होता है । तद्, यद्, एतद्, और किम् के नर्पुमक लिङ्गक प्रथमा और द्वितीयाके एकवचनमें तद्, यद्, एतद्, और विम् ये रूप होते हैं । अन्य को नपु के प्रथमा और द्वितीयाके एकवचनमें अन्यत्—द् रूप होते हैं । एतद् के द्वितीयामें, तृतीयाके एकवचनमें, पठ्ठी, तथा सप्तमीके द्विवचनमें तीर्था लिङ्गा में एत से भी रूप बनते हैं ।

सय + ग्यादम् = सयद्व्यादम्—

नियम ।—

१ । अत्र विभक्तके ब्र + ङ्, य वा स आता है ता वह ङों का त्यो रह जाता है या ङ्, य, वा स म बदल जाता है ।

एष + बाल = एष बाल , स + जन = स जन , एष + पुत्र = एष पुत्र —

नियम :—

२ । अत्र विभक्तके ब्रा + काद् व्यन्त आता है ता उसका लोप हा जाता है ।

कश्च + एष = कश्चैष , गङ्गा + श्रोघ = गङ्गोघा , परम + एश्वयम् = परमेश्वयम् , महा + श्रोषधि = महोषधि।—

नियम —

३ । अयण + ए वा ऐ = ऐ , और अयण + ओ वा औ = औ ।

सर्वो देवता नमामि ।

अन्यदेवता काननम् ।

क एतं बाला ।

देना दाग की ०० हरेकृपा ।  
 क देना पुर्ण ।  
 जात के ०० ।

द्वन्द्वसंज्ञक ।

अ-भाष ।

दग दूधा	दर-दर
दगु-दर	दरु-दर
दिय-कोर । का ०	दरु-दर

वचनस्य ।

जागा ( जा ) ( अ क ल )	देना ( दे )—देनी
( दार )—दा	दगु । द )—दगुका
कीरका ( की )—दगुका	दानी--( दी )—दानी
दना ( दी )—दना	दारा ( दी )—दारा
क-दर ( क )—क-दर	दर ( द )—दर
कीर--( की )—कीर	दर द ( द )—दर-दर
( दरा कीरि--दर-दर )	

०००००

दर द

दगु--दगा  
 दग दगा

दर--दर-दर, दरा-दर

शेष ।

दगु ( दगुनि ) ( दगा दग )—दगुनि काका ।  
 दिर ( दिरान ) ( दि, दा )—दिरान ।  
 दग+दर ( दगीरग ) ( दग दग )—दगीरग ।

पाठ ११ ।

दृष्ट श्रौर तत्पुरुष , ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्द ।

अर्थे षा पञ्चवटी—क्या यह पञ्चवटी है ?

अर्थे षा गोदावरी—क्या यह गोदावरी है ?

अर्थे तत् तपोवनम्—क्या यह तपोवन है ?

षा हि कुलपते प्राणा—यह तो कुलपतिका जीवण है ।

नक्ष्त्रीनारायणाभ्यां नमः—लक्ष्मी श्रौर नारायणको प्रणाम ।

विघ्नघ्नभयेन नीचा फाय न प्रारभन्ते—विघ्नाको भयसे नीच लोग फायको प्रारम्भ नहीं करते ।

उत्तमजना कदापि धर्म न त्यजन्ति—अच्छे लोग कभी धर्मका नहीं छोड़ते ।

पञ्चपात्रे पूजामामयी वसत—पञ्चपात्रम् ( पांच पात्रोंका समुदाय ) पूजाका सामान है ।

सरस्वत्या जल पावनम्—सरस्वत्या जल पावनम्—सरस्वतीका जल पवित्र है ।

कुर्वे स्वर्गयाम् अ( म )लक्षायां वसति—कुर्वे अपनी नगरी अलक्षामें रहता है ।

पत्न्यै कुर्वति माणवक्रः—माणवक्र अपनी स्त्री पर क्रोध करता है , ( कुर्व चतुर्थीस साध आता है ) ।

शरया तटे अक्षित्तापस प्रतिवसति—शरयातटे कक्षित्तापस प्रतिवसति—शरयूके तटपर क्रोध तपस्वी रहता है ।

श्वश्रा आश्रामनुसरति वधु—श्वश्रा आश्रामनुसरति यद्य—श्वश्रावकी आश्रामका अनुसरण करती है ।

✓ • वित चन, श्रौर अपि—ये अनिश्चित अर्थमें किम्, शब्दके पु, स्त्री, तथा नपुंसक निद्रक रदीक साध जाई जात है—कर्म कक्षित्त, कक्षित्त, जावपि कक्षित् इत्यादि ।



इस पाठमें ईकारान्त तथा ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप दिये गये हैं ।

### नन्वे ( स्त्री ) ।

	ए छ	द्वि य	व य
प्र	नन्वे	नद्यो	नद्य
द्वि	नदीम्	,	नन्वे
तृ	नद्या	नन्वेभ्याम्	नदीभि
च	नद्यं	,	नदीभ्य
प	नद्या	,	,
प	,	नद्यो	नन्वेनाम्
म	नद्याम्	,	नन्वेषु
स	नन्वि	नद्यो	नद्य

### वधू ( स्त्री ) ।

	ए व	द्वि य	व व
प्र	वधू	वध्वो	वध्य
द्वि	वधूम्	,	वधू
तृ	वध्या	वधूभ्याम्	वधूभि
च	वध्वै	,	वधूभ्य
प	वध्या	,	,
प	,	वध्वो	वधूनाम्
म	वध्याम्	,	वधूषु
स	वधु	वध्वो	वध्य

नन्वे तथा वधूके रूप एकसे हैं । परन्तु वधूके प्रथमाके एकवचनमें विभग रहता है, और नन्वेसे प्र ए छ में नहीं रहता ।

लक्ष्मीनारायणाम्याम्, कुलपते, पञ्चदशौ, तपोवनम्, विघ्नभयेन, और उत्तमजना ये सब समास हैं ।

( दो वा अधिक पञ्च अक्षरक सामान्य मिले रहते हैं तो यह समास कहलाता है । प्रायः अन्तिम पञ्चको छोड़ और सब पञ्चोंकी विभक्तियोंका लोप हो जाता है ।

इस लीय अपने इच्छासे पदोंको जोड़कर समास नहीं बना सकते । संस्कृतके व्याकरणोंने इस विषयपर अति सूक्ष्म नियम दिये हैं ।

प्रधानतः समास चार प्रकारके होते हैं — हृद्, तत्पुरुष, बहुव्रीहि, अण्वयीमाद्य । इनमें पहिले दो प्रकारके समासोंका बखन इस पाठमें किया गया है ।

रामलक्ष्मणौ ( राम और लक्ष्मण ), रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नौ ( राम, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न ), भीमाशुनौ ( भीम, और अशुन ), लक्ष्मीनारायणौ ( लक्ष्मी, और नारायण ), पार्वतीपरमेश्वरौ ( पार्वती, और परमेश्वर ), उमामहेश्वरौ ( उमा, और महेश्वर ) ये सब हृद् समास हैं ।

१ । हृद् समास वह है जिसमें भव ( दो वा अधिक ) पञ्चोंके अर्थोंकी एकही प्रधानता रहती है । जब यह समास अलग किया जाता है तो उसका प्रत्येक पञ्च से जोड़ा जाता है । व का अर्थ 'और' है ।

यदि दो पञ्चोंका समास हो तो एचसे द्विवचन आता है और अधिक पदोंका हो तो बहुवचन, अन्तिम पदका लिङ्ग ही समासका लिङ्ग होता है । हृद्का अर्थ है छोड़, हृद् समासमें प्रति पञ्चके अर्थकी एकही प्रधानता रहती है ।

छोटे शब्दका बड़े शब्दसे पहिले प्रयोग होता है । भाइयोंके नाम छोटे बड़ोंके क्रमसे प्रयुक्त होते हैं ।

८. कुलपति — कुलका स्वामी, पशुीतत्पुरुष, तत्पुरुष :— उसका आत्मी, पशुीतत्पुरुष, तपोवनम् ( तपश् + वनम् = तपश् वनम् )

तपोवनम्) — तपका वा, पठितत्पुत्र, विज्ञप्तवम् — विज्ञप्ति मय, पञ्चमौतत्पुत्र —

२ । तत्पुत्र्य यह समास है निम्नका पहला पद प्रथमाको द्वेष्य शर क्रिषी विभक्तिके आरम्भ हो और इस प्रकार यह वृषरे पञ्चमे जोड़ा जाय ।

‘तत्पुत्र्य यह शब्द भी तत्पुत्र्य समास है, और इसका अर्थ है— वगका आत्मी, और इस प्रकार यह तत्पुत्र्य समासके लक्षणको बताता है ।

तत्पुत्र्य शब्दका अर्थ—‘यह आत्मी’ भी है । इसमें पहला शब्द विशेषण है और दूसरा विशेष्य—

विशेषण तथा विशेष्यका समास भी एक प्रकारका तत्पुत्र्य है, इसका कमधारय कहते हैं ।

उत्तमजना — कमधारय समास है ।

३। कमधारय—कम मान क्रिया। इस समासके सब पञ्च एक ही क्रियामें अन्वितहोते हैं, उत्तमजना शब्दन्ति और उत्तमजनान् पूनपामि—में उत्तम तथा जन ये दोनों एक ही क्रियामें अन्वित हैं। पहिलमें ये कर्ता हैं और वृषरेमें कम । इस प्रकार कमधारय समासमें पञ्च समानाधिकरण होते हैं। पञ्चपानुम—पाच पानुंका समुदाय, पञ्चथनी—पाँच बट वृक्षाका समुदाय, —ये द्विगु समास हैं ।

४ । द्विगु कमधारयका एक भङ्ग है। यदि प्रथम पद सख्यावाचक और द्वितीय पञ्च मन्वावाचक हो तो यह द्विगु समास है। यह समाहार (समूह) के अर्थमें नपुंसकके एकवचनमें प्रयोग किया जाता है। कहीं कहीं द्विगु समासके अन्तका अर्थ हो जाता है ।

द्विगु शब्द इस समासके लक्षणको बताता है क्योंकि इसका पहला पद द्वि पञ्च सख्यावाचक है और वृषरा पञ्च गु (गो—गाय, गु में बदल गण है) संज्ञावाचक है ।

५ । समासके अर्थको स्पष्ट करनेके लिये उसके पक्षको अलग अलग कर दिखानेका विग्रह कहत हैं ।

द्वन्द्व—रामश्च लक्ष्मणश्च रामलक्ष्मणौ ।

तत्पुरुष—तस्य पुरुषः तत्पुरुष , विज्ञाद् भय विघ्नभयम् ।

अर्थपरप—उत्तमाद्य ते समाद्य उत्तमजना ।

द्विगु—यज्वानां पातुणां समाहार पञ्चपातुम् ।

ध्रुवन्ति नद्यः ।

कुमार्यां घालपात्पान् भिञ्जन्ति ।

अहो चित्रनेपुण्यमेतेषाम् ।

आस्ताभङ्गं न सहन्ते नराधिपाः ।

प्रयोगो रजनीमुखम् ।

गङ्गायमुने प्रयागे सङ्गच्छन्ति ।

गर्भिण्या इच्छा दोषदम् ।

मद्यस्य प्रती सवानो रुद्रस्य रुद्राण्यौ ।

वेद्या परा सीमा स्नेहस्य ।

क्या घट दन है ?

जिन्ध और पावतीका प्रणाम ।

द्वम लोग पेहू सोचते हैं ।

## समाश्रम ।

प्रथिव ( पु )—प्यामी	पञ्चदश ( स्त्री )—पञ्चदशकारण्यवा
श्वन्ता ( स्त्री ) कुशरको नगरी	एक भाग, जिसमें पौष यष्ट प
श्रान्ता ( स्त्री )—श्राद्ध	पञ्ची ( स्त्री )—भाषा
इच्छा ( स्त्री )—चाह	फण्य ( पुं )—वेद
काय ( न )—काय	पूजा ( स्त्री )—पूजा
कुञ्जर ( पु )—कुञ्जर	पदाय ( पु )—कायकाल
कुम्भारी ( स्त्री )—अग्निदाहित कन्या	प्रयाग ( पु )—प्रयाग
कुम्भपति ( पु ) १ कुलका प्रधान	प्राग ( पु )—(सर्वत्र य य धं
पुरुष, २ गुरु स्त्री १०,०००	प्रयोग होता है )—प्राण
शिशुका पढ़ता और पौष्ट्य	भद्र ( पु )—उत्तम
करता है ।	भय ( पुं )—शय
गङ्गा ( स्त्री )—गङ्गा	भयानी ( स्त्री )—पार्श्वी
गभिणी ( स्त्री )—गभिणी	मालवक ( पु )—जिसे का नाम
गादावरी ( स्त्री )—गोदावरी	मुष्ट ( न )—१ मुष्ट, २ आरम्भ
विनु ( न )—तमबोर	यमुना ( स्त्री )—यमुना
खल ( न )—पानी	रत्नौ ( स्त्री )—रात
खट ( पु, न )—किनारा	खट्ट ( पु )—खट
खपीयन ( न )—खपाशन	खाली ( स्त्री )—पार्श्वी
सापथ ( पु )—सपथी	खमी ( स्त्री )—खमी
ओष्ठ ( पु, न ) गभिणीका	खण्ड ( स्त्री )—स्त्री, पुत्रुषू
मनोरथ	खण्ड ( स्त्री )—खण्ड नदी
नगरी ( स्त्री )—नगरी	खण्ड ( स्त्री )—खण्ड
नारायण ( पं )—पिण्ड	खरखती ( स्त्री )—खरखती नदी
नेपुण्य ( न )—सायुय	खामरी ( स्त्री )—खामान
पञ्चपातु ( न )—पाच पातुका समूह	खीमा ( स्त्री )—खीमा, ह् ।

विशेषण ।

उत्तम—उच्च से अच्छा	पावन—पवित्र, शुद्ध करनेवाला
नीच—नीचा, अधम	याल—सड़का
पर—(स्त्री परा)	घेष्टु—उत्तम
बड़ा (परा सीमा=चरम सीमा)	स्त्र—श्रमणा (मठना) *

घानु ।

कुप् ( कुप्यति ) ( णिधाणि पर )—कोप करना । ( चतुर्थीके साथ आता है ) ।

प्र + आ + रभ् ( प्रारभते ) ( ध्या आत्म )—प्रारम्भ करना ।

सम् + गम् ( सङ्गच्छते )—संगम ( ध्या आत्म ) मिलना ।

सद् ( सद्ते ) ( ध्या आत्म )—सदना

सिच [ सिञ्ज ] ( सिञ्जति ) ( तुधाणि पर )—सींचना ।

स्त्र ( स्त्रति ) ( ध्या पर )—सदना ।

पाठ १२ ।

बहुव्रीहि और अव्ययीभाव , सकारान्तशब्द , भूतकृन्त ।

राम समीत सहजलक्ष्मणी वन गत —राम सीता और लक्ष्मणको साथ वनको गया ।

अश्वमारुद्धो देवन्त —देवइत घोड़ेपर सड़ा ।

\* यह मरनाम है जब इसका अर्थ श्रमणा है । जब इसका अर्थ मठना ना धन है तब यह मरनाम नहीं है ।

फ कोऽनु भा । कुन आगतीऽमि ।—यद्यो कीन हे ओ ? तू कदांने  
आया हे ?

प्रतिदिन मन्थ्यामाचरति—उद्ये घनिष्ठिन मन्थ्यामाचरति करता हे ।

तपोधनाना तप एव परम धनम्—मुनिधोंका तपही बड़ा धन है ।

श्रपयो जितेन्द्रिया जितक्रोधाय—अपि लोग ही है जिन्होंने  
इन्द्रियोंको तथा क्रोधको छोटा ।

य तथा वा भाषाको तरह जो शब्दों श्रुय वा जो याकारोंसे बीचमें नहीं  
आता । उनके प्रयोगपर ध्यान नो । रामथ लक्ष्मणथ वा रामो लक्ष्मणथ ।  
रामो वा लक्ष्मणो वा, श्रुय वा रामो लक्ष्मणो वा, न त्वया माधु इति  
न जानेन ।

परोपदेशवेलायां सर्वेऽपि पण्डिता भवन्ति—दूसरोंको उपदेश देनेके  
समय सभी पण्डित होते हैं ।

अद्ये यद्यस्यैतन्न रमणोयता—याद्ये । इमं घरकी सुन्दरता ।

चन्द्रमा श्रोत्रधीना मायक —चन्द्रमा श्रोत्रधियांनि स्वामी है ।

पयोऽपि पयांसि वर्पन्ति—मह पानी बरसते हैं ।

कुतूहलेन तेषां चेतसि लब्ध पन्थु—कौतुकने उनके धृश्यमें स्थान पाया ।

धन पाठमें बहुव्रीहि तथा अल्पबोधका अर्थन किया गया है ।

बहुव्रीहि—यदि इमं शब्दको बहु व्रीहि ( बहुत धाम ) ऐसा लिख-  
नाय, तो यह कमधारय समझ है, क्योंकि यह विशेषण तथा विशेष्यमें  
दनाया गया है । पर यदि इसका अर्थ 'उद्ये जिसके पास बहुत धाम है  
( बहु व्रीहि यस्य ) ऐसा लिया जाय, तो यह बहुव्रीहि समझ है । इम  
प्रकार यह शब्द अपने लक्षणको बताता है ।

जितेन्द्रिय —यद्ये जिसने अपने इन्द्रियोंको छोटा है ।

जितक्रोध —यद्ये जिसने अपने क्रोधको छोटा है ।

पीताम्बर —उद्ये जिसका वस्त्र पीला है, दिव्य ।

ने मधु बहुव्रीहिना चोदाय है ।

१। विशेषण तथा विशेष्यका समास बहुव्रीहि समास है, यदि वह किसी दूसरेका विशेषण हो। इसका विग्रह दिखानमें यह शब्दका प्रयोग करना आवश्यक है, जो प्रथमाको छोड़ और चाहे जिस विभक्तिमें आ सकता है।

जितेन्द्रिय श्रुति — इसमें जित विशेषण है और इन्द्रिय विशेष्य, और यह समस्त एक अन्य पदाः श्रुतिका विशेषण है। इसका विग्रह यों होता है—जितानि हा द्र्याणि न सः, भीतमन्वर यत्न स।

सहस्रसम्य और ससीत बहुव्रीहि समास है—

२। यह समान भा, जिसमें पहिला पद सह है, बहुव्रीहि है। यह विकल्पसे स में बनल जाता है। ससीत राम — सीतया सह यतते इति ससीतः—

३। यदि बहुव्रीहिका अन्तिम पद सकारान्त स्त्रीलिङ्ग हा और समस्तपद पुलिङ्ग या नपुंसक लिङ्गका हो ता उस 'आ' को 'अ' हा जाता है।

प्रतिदिनम्—प्रति अश्वय है, दिन अश्वय नहीं है, पर यह समस्तपद अश्वय है, दिन दिने इति प्रतिदिनम् (हर दिन) —

४। यदि समासका प्रथम पद अश्वय हा और यदि यह समस्तपद भी अश्वय हो तो इसका नाम अश्वयीभाव समास है।

अश्वयीभाव शब्दका अर्थ है—जो अश्वय नहीं है, अश्वय हो जाता है। दिनम् सदाऽह्न है, पर प्रतिदिनम् में यह अश्वय है।

५। अश्वयीभाव समासका रूप प्रायः नपुंसक प्रत्यये द्वितीयाके एकवचनकी समास होती है।



अनु—अभि, पाप्मी प्रतपान क्रियः ।

	ए ट	हि ष	ह ठ
प्र	अभि	अप	अपि
प्र	अभि	अपः	अप
ह	अभि	अप	अपः

सजाताना इतीह दीजिहू तथा मपुंसह विहूव एव भो इम प्रठ  
 र्थ विवे मये हे ।

अनुसम—ये ।

	ए ट	हि ष	ह ठ
प्र	अनुसम	अनुसम	अनुसमः
हि	अनुसमसु	"	"
उ	अनुसम	अनुसमाभ्याम्	अनुसमि
ख	अनुसम	अनुसमाभ्याम्	अनुसोभ्य
घ	अनुसम	"	"
ङ		अनुसम	अनुसमाप्
च	अनुसमि	"	अनुसमसु ण णुष णु
छ	अनुसम	अनुसमो	अनुसमः
ज	अनुसम	अनुसमो	अनुसमि
झ	अनुसम	"	"
ञ	अनुसम	अनुसमाभ्याम्	अनुसमि
ट	अनुसम	"	अनुसोभ्य
ठ	अनुसम	"	"
ड	अनुसम	अनुसमो	अनुसमाप्
ण	अनुसमि	"	अनुसमसु-अनुसम
त	अनुसम	अनुसमो	अनुसमि

अनुसम—न ।

यं रूप सन्धिके नियमक अनुसार शब्दोंके आगे प्रत्यय जोड़नेसे बन  
 है । पुनिङ्ग के प्रथमाक एकवचनमें उपात्त्य अ को दोष होता है ।

द्व नपुंसक शब्दके प्रथमा, द्वितीया, तथा सम्बोधनके द्विचनका  
 प्रत्यय है, और द्व नपु० शब्दके उन्ही विभक्तियोंके बहुवचनका प्रत्यय है ।  
 पर्यायिके तरफ ध्यान दो ।

६ । अनुनासिक अथवा अन्तस्य व्यञ्जनोंको छोड़ और किसी  
 व्यञ्जनमें समाप्त होनेवाले नपुंसक शब्दके प्रथमा, द्वितीया, तथा सम्बोधन-  
 में अन्तिम व्यञ्जनके पूर्व न् आता है, जय इ आगे रहता है ।

जय इस न् के बाद श्, ष्, स् या ह् होता है, इसको अनुस्वार  
 होता है, और जय और कोई व्यञ्जन आगे रहता है, यह न् इसको आगे  
 रहनेवाले व्यञ्जनके समके अनुनासिकमें झल जाता है । सकारान्त शब्द  
 तथा महत् शब्दमें इस अनुनासिकके पहिले रहनेवाले स्वरका दोष  
 होता है ।

क्तप्रत्ययान्त तथा कृत्यप्रत्ययान्त शब्दोंके रूप भी इस पाठमें दिखाये  
 गये हैं । सकृत्तमें क्तप्रत्ययान्तका बहुत प्रयोग जाता है । वे बहुधा  
 अनद्यतन भूतकी समस्त प्रयोग किए जाते हैं ।

भूतकृत्—भूत यह शब्द स्वयं भूतकृदन्त है, और इस बातको  
 दिखाता है कि धातुसे भूतकृदन्त किस प्रकार बनाया जाता है ।

० । मू + त = भूत । त भूतकृदन्तका प्रत्यय है ।

गम्	गत	} इन धातुओंमें अन्तिम मू का लोप हुआ है ।
नम्	नत	
रम्	रत	

ध्रु	ध्रुत	य चत्त इय एकधि है । ध्रुम् + त = ध्रुम् + य =
त्रि	त्रित	त्रि + य = त्रिय - त - त्रिय किमी वर्गका चतुर्थ अक्षर
नी	नीत	वचने पहिले रहता है - य हा जाता है, और वचने
धुम्	धुम्भ	पहिले रहनेवाला धमचतुर्थ धमके हृत्तीयवचने वचन
म्भु	म्भु	जाता है ।
लम्	लम्भ	लम् + त = लम् + त = लम् + य = लम् + ङ ( लम्भ
लुम्	लुम्भ	धुम्भुधन्य ट् से अक्षर गया की कि यह ट् को साथ
कम्	कम्भ	मिलाया गया ) = कम्भ, पर लुम्भ न म्भु को लोचनही
वृष्	वृष्	हुया - अत्र अनुनासिक या अन्त स्वर धण के विना और
वृद्ध	वृद्ध	काह् अक्षरान आगे रहता है, धातु के अन्तिम ट् को
वृद्ध	वृद्ध	ट् होता है, ट् अत्र आगे रहता है तो ट् का लोप

होता है, और अ् को छोड़ कर वचने पहिले रहनेवाले स्वरको, यदि यह वृद्ध हो, लोच होता है ।

रमणीय कैसे बना है इधर ध्यान दो ।

८ । गम् - गन्तव्य, गमनीय, गमा ( जाने योग्य ) - तव्य, अनीय, और य विधायक प्रत्यय हैं ।

शुष् - शोषनीय, कृ - करणीय - कर्तव्य, शुच - शोच्य, धृ - क्षाय -

९ । अनीय तथा तव्यके पहिले धातुके अन्तिम स्वर तथा उपात्त ध्रुम्भ स्वरके स्थानमें गुण्य आदेश होता है, और य के पहिले प्रायः अन्तिम स्वरको ह्रस्व आदेश होता है ।

१० । रमणीय - सुन्दर, रमणीयता - सुन्दरता - भाववाचक प्रत्यय ता और ल्य हैं । इनके लगानसे विशेषणोंसे भाववाचक शब्द बनते हैं ।

अत्र न पराजयते ।

अध्ययनात् पराजयते ।

उखाति वेदवत्तस्य पृष्टायि ।  
 गत न शोचनीयम् ।  
 देवि रमणीयमेतत् सर ।  
 अहो प्रियवशन कुमार ।  
 अपि सतिहितोऽतु कुलपति ।  
 अचिन्त्यानप्यर्थान् विधिघटयति ।  
 भवन्ति नम्रास्तस्य फलागमे ।  
 न खलु स उपरतो यस्य बल्लभो जनः स्मरति ।  
 तानि यवांसि तस्य हृदये शल्यानि समूतानि ।  
 एतस्यां परिषदि बहव पण्डिता सन्ति ।  
 ययस्य ! जय शून्यहृदयो भवसि ।  
 गुणेन शूनाः पशुभिः समानाः ।  
 पुरा यत् स्रोत पुलिनमधुना तसु सरिताम् ।

हम लोग प्रतिदिन गङ्गामें नहाते हैं ।  
 ये लड़के कहांसे आये हुए हैं ?  
 जब नगरमें बहुत पण्डित रहते हैं ।

### सञ्ज्ञाशब्द ।

अध्वपन ( न )—पढ़ना  
 अप ( पुं )—इच्छा  
 आगम ( पुं )—आना  
 इन्द्रिय ( न )—इन्द्रिय  
 उपदेश ( पुं )—उपदेश  
 अग्नि ( पुं )—गुनि  
 श्रोत्रधि ( पुं )—जनर्थाति

कुतूहल ( न )—कोमुझ  
 कुमार ( पुं )—लड़का  
 क्रोध—( पुं )—क्रोध  
 गुण ( पुं )—गुण  
 चन्द्रमस् ( पुं )—चन्द्रमा  
 चेतस ( न )—मन  
 जन ( पुं )—लोग



शून्य—खाली, (शून्यपुं० = जिसका मन ठिकाने नहीं)	संनिहित—(सम् + नि + धा + त) — उपस्थित
शोषनोप—शोक करने योग्य	सभूत—(सम् + भू + त) — सम्पन्न समान—तुल्य

श्रवण ।

श्रधुना—श्रद्धा	पुरा—पूर्वकालमें
कथम्—कैसे ?	प्रतिनिम्—परिनिम्
कुत—कहाँ से ?	भोष ( भो ) च् ।
खलु—निश्चयसे	कुतु—कदा ?
तनु—दहाई	

धातु ।

- श्रम् ( श्रप्ति ) ( श्र पर )—होना ।  
 श्रा + श्व् ( श्राश्चरति ) - ( च्वा पर ) - करना ।  
 घट् ( घटयति ) ( घु पर )—बनाना, पूरा करना ।  
 पराजि ( पराजयते ) ( भ्या श्रा )—१ पराजय करना, २ यफना  
 ( दूसरे श्रवणमें पञ्चमीके साथ प्रयोग किया जाता है )  
 वृष् ( वृषति ) ( च्वा पर ) धारणा ।

पाठ १३ ।

इम्, त्, च् तथा ज् में समाप्त होनेवाले शब्द ।

क अयम् ऋषिकुमार = कौशिककुमारः—यह कौन ऋषिकुमार है ?  
 अलम् अनेन अतिविस्तरेण = अरामनेनातिविस्तरेण—यह विस्तार ब्रह्म  
 है—श्रद्धा बहुत न कहिये ।

१। भोष के स् का भोष हीता है, जव तक की वां कीर्ण रूप वा भोष व्यङ्गन  
 जाता है ।

अथ अयम् मत्त तस्मै यद्वाप्य — अथ अयं यत्तत्तौ मत्तय-  
यद् मत्त तस्मै तस्मै तस्मै तस्मै ( यत्तत्तौ ) इति ।

मत्तयि मत्तयम् इति शिवायः कनयः — मत्तयि मत्तयम् इति शिवायः  
कायः — मत्तयि मत्तयम् इति शिवायः मत्तयि मत्तयम् इति शिवायः ।

मत्तयान् अयम् ( मत्तयान् ) कर्तव्याणां विभक्तयः — इति कर्तव्याणां विभक्तयः  
का ज्ञेयं यद्वा इति ।

युधानां परिचयि अनेन ( परिचयनेन ) मत्तयानो लक्ष्यम् — परिचयानो  
मत्तयि मत्तयं यद्वा यत्तत्तौ ।

मत्तयान्ति युधानि यद्वायानि आभ्याम् ( यद्वायान्ति ) युधानाभ्याम् —  
इति मत्तयान्ति युधानि यद्वायानि आभ्याम् इति ।

नि मत्तयान्ति युधानि यद्वायानि आभ्याम् ( युधानि ) इति ।

एभि कने कि मत्तयान्ति मत्तयान्ति — इति मत्तयान्ति मत्तयान्ति इति ?

ययम् अस्मि — ययम् अस्मि — ययम् अस्मि ।

ययान्ति इत्येवमपि ययान्ति ययान्ति ययान्ति — ययान्ति ययान्ति ययान्ति  
ययान्ति ययान्ति ययान्ति — इति ययान्ति ययान्ति ययान्ति इति ।

इति मत्तयान्ति ।

य	ययम्	इति य	ययम्
द्वि	ययान्ति ययान्ति	इति ययान्ति	ययान्ति ययान्ति
तृ	ययान्ति ययान्ति	ययान्ति	ययान्ति ययान्ति
च	ययान्ति	,	ययान्ति
प	ययान्ति	,	ययान्ति
प	ययान्ति	ययान्ति ययान्ति	ययान्ति
म	ययान्ति	,	ययान्ति

\* इति, अर्थ प्रयोगान्न किमपि और इनके समान अर्थि यत्तत्तौ इति ययान्ति ययान्ति इति ।

इत्सु—स्तौ ।

	ए ष ।	द्वि ष ।	अ ष ।
प्र	इत्सु	इत्से	इत्सा
द्वि	इत्साम् एनाम्	,,—एष	,,—एना
तृ	अनया—एनया	आभ्याम्	आभि
च	अथौ	"	आभ्यः
प	अथा	"	"
प	,	अनयो—एनयो	आभ्याम्
अ	अस्याम्	, "	आभ्यु

इत्सु—न ।

	ए ष ।	द्वि ष ।	अ ष ।
प्र	इत्सु	इत्से	इत्सामि
द्वि	,—एसत्	,,—एने	,,—एनानि

शेष पुं० की समाप्त ।

अगत—न ।

	ए ष ।	द्वि ष ।	अ ष ।
प्र	अगत	अगतो	अगन्ति
द्वि	"	"	"

भगवत्—पुं० ।

	ए ष ।	द्वि ष ।	अ ष ।
प्र	भगवान्	भगवन्तो	भगवन्तः
द्वि	भगवन्तम्	"	भगवन्त



	ए व ।	द्वि य ।	व व ।
वृ	भगवता	भगवद्भगाम्	भगवद्भि
च	भगवते	,	भगवद्भ्य
ए	भगवत	"	"
प्र	,	भगवतो	भगवताम्
स	भगवति	"	भगवत्सु
स	भगवन्	भगवन्तो	भगवन्त

## महत् - पुं० ।

	ए व ।	द्वि य ।	व व ।
प्र	महान्	महान्तो	महान्त
द्वि	महात्तम्	,	महत
वृ	महता	महद्भ्याम्	महद्भि
च	महत	"	महद्भ्य
ए	महत	"	"
प्र	"	महता	महताम्
स	महति	,	महत्सु
स	महन्	महान्तो	महात्त

## वाच्—स्त्री ।

	ए व ।	द्वि य ।	व व ।
प्र	वाक्	वाची	वाच
द्वि	वाक्	"	"
वृ	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भि
च	वाच	"	वाग्भ्य

	ए व ।	द्वि व ।	अ व ।
ए	वाच	वाग्भ्याम्	वाग्भ्य
ए	,"	वाचो	वाचांम्
अ	वाचि	,	वाचु
अ	वाक्-ग्	वाचो	वाच

सुखभाज्—पु० ।

	ए व ।	द्वि व ।	अ व ।
अ	सुखभाक्—ग्	सुखभाजो	सुखभाजः
द्वि	सुखभाजम्	"	"
ए	सुखभाजा	सुखभाग्भ्याम्	सुखभाग्भि
अच	सुखभाजि	"	सुखभाग्भ्य
अ	सुखभाज	"	,
अ	,	सुखभाजो	सुखभाजाम्
अ	सुखभाजि	"	सुखभाजु
अ	सुखभाक्—ग्	सुखभाजो	सुखभाज

मदत्—न ।

अ, द्वि, अ मदत्—इ मदी मदीति

मदीति—मदत् का स्त्रीलिङ्ग है ।

सुखभाज्—न ।

अ, द्वि, अ सुखभाक्-ग् सुखभाजो सुखभाजि

१ । भगवन् + भ्याम् = भगवद्भ्याम्—

अनुनासिक वा अन्तःस्थ को छोड़कर पहले वीचका शीर कोई व्यञ्जन, अब, उसके बाद दसका तृतीय या चतुर्थ वरु होता है, अन्तःस्थ को तृतीय वरुमें बदल जाता है ।



अपि तपो यधते ।

भानुरिययतो मणि ।

धिक् चौरान् ।

धिमिय दरिद्रता ।

अल श्रमेश ।

रमणीयेय लता ।

अहो मधुरमासां कन्यानां अर्जुनम् ।

अहो मयाःतमुभगोऽप्यमुक्षेण ।

कपय कियदेवशिशु रत्नया इति ।

न खलु धीमता कश्चिदधिपयो नाम ।

अनेन तीर्थेनास्य समोद्धित साधयाम ।

५ अथ च बलभिदो मित्नु दुप्यन्त ।

तद्विन्मरख्य यद्विमधिर भीतया सद्य राम उचित ।

लीधशदनलेन किम् ।

अर्यो हि कन्या परकीय एव ।

नि सारस्य पन्थयस्य प्रायेणाहम्भरो महान् ।

कन्या नाम मद्यत्र दुःखं धिगहो मद्यतामपि ।

७ शैले शैले न भाणिक्य मोक्षिक न गजे गजे ।

साधयो न हि मत्रनु चन्दनं न वने वने ।

यदा इम स्रोत ईं ।

इत पत्नीका क्या काम है ?

इस सूर्यको धिक्कार ।

सुम लोग ऐसे व्यस क्यों हो ?

७ नर कीद मन्दी बार प्रयोग किया जाता है तब उस का अर्थ 'हर' होता है  
 \*सु-सैमि सैमि=हर पदाक्षर ।

## संज्ञाशब्द ।

अतिविकार ( पु )—बड़ो लबाह	पयात ( पु )—( प्रकृष्टो यात ) अच्छा पयन
अय ( पु )—प्रगोछन	यनभिद् ( पुं )—इल अशुरका नागक इन्द्र
अनन ( पु )—अग्नि	मद् ( पुं )—मद्, पहलवान
अरण्य ( न )—यन	मालिक्य ( न )—मालिक
* अविषय ( पु )—(नज्जमान) जिबकी ज्ञान नहीं सकते	मित्त ( न )—मित्त
आहम्भर ( पु )—अिध्याय	मोक्तिक ( न )—मोतो
अवेश ( पु )—अवेश, स्वान	यशम्—( न )—यश
गज ( पु )—हाथी	खता ( स्त्री )—खता
अन्दन ( न )—अन्दनका पेड़	लाभ ( पुं )—लोभ
अमात् ( न )—अमार	आशुर्वेद्य ( पु )—कृष्ण यमुनेय का लड़का
तौय ( न )—उपाय, घाट, मार्ग	विशम ( पु )—धराधम
अरिद्रता ( स्त्री )—अरिद्रता	विभय ( पु )—अक्ति
अशन ( न )—अकाश, देख पड़ना	वियत् ( न )—आकाश
हुख ( न )—कष्ट	त्रेन—( पु )—पहाड़ ( शीले शीले=हर पहाड़से )
दुष्यन्त ( प )—अश राजाका नाम	अय ( पु )—परिश्रम
पनाय ( पु )—यक्षु	समय—( पुं )—काल
परिषद् ( स्त्री )—परिषदोंकी सभा	
प्रयोजन ( न )—मतलब	

० जिस कमधारयनी अ वा अन् पूर्वपर रहता है उसे मज्जमान अइने से  
। केसे अयापम् ( न पापमिनि ) पर अयापम् ( नाभि पापं यन् तत ) कहवैदि है ।

विशेषण :

अर्थाश्रय (अर्थ + शिष् + त) — शाकी	भगवन् — भाग्यवान्
सर्वत — ( सर्व + त ) — रहा	मधुर — मीठा, मनाहर
कतय — करमे योग्य	सहत् — बड़ा
क्रियित — कुह	यन् — जगती
किमपि — कुह	मयोहित ( सम् + ईह् + त ) — इष्ट
क्रियत् — कितना	पापु — अच्छा
धोमत — बुद्धिमान्	सुभग सुन्दर
नि सार ( सहु ) — घेन्म	घोड ( घट् + त ) — सहन किया हुआ
परकीय — दूसरेका	

अव्यय ।

असम् ( १ ) अम ( इम अद् तनु — घटा ) में यह नृसोपासो साथ आता है )	धिक — धिक्कार ( यह प्राय द्वितीया के साथ आता है और कभी कभी प्रथमा और स के साथ )
( २ ) दरादरी का ( इम अर्थ-में यह वतुर्घोषो साथ आता है ।	
इति — यह किसी वाक्यको समाप्ति होने पर आता है ।	प्रापेण — बहुत कर ( प्राय को वृ का ए व )
विरम् — बहुत काल	सयत् — सत्र ठौर
चेत् — यदि ( यह वाक्यको आरम्भ में कभी नहीं आता । )	

१। कुह सबनाम शब्दों में परिभाष्य चर्दमें वन् प्रत्यय होता है। जैसे—यावत् तावत् एतावत्। किंवत् तथा इयत् में यह यत् में वल्ग जाता है इनके रूप भगवत् के समान होते हैं।

२। मन् प्रत्यय है। जिस शब्दोंको चल्त् वा ल्पान्त् अ, या वा म ही उनका मत वत् में वल्ग जाता है। जैसे—भगवन्, भावन्त् पयम्बन्त्, लघीवन्त्। पर यवमत और भूमिमत् अव्यय हैं। मत् में समाप्त होनेवाले शब्द भगवत् के समान होते हैं।

वामानकी तरह आगमें भी विकरलर लक्षणमें बदलना है ।

पुष्प—रि वा ।

म प            पथ्यन्            पुष्यताम्            पुष्यन्तु

विष्—रि वा ।

म पु            विद्यताम्            विद्यताम्            विद्यन्ताम्

इहागच्छ ( यहाँ आओ ), आनुभ्याम् भव ( चिरजीवो हो )  
इयं प्रसाद ( महाराज ' कृपा कोजिय ) इनसे भाव छपरहो हीं  
मिलाकर दृष्या ।

तियम —

लोट् लकार अत्रल आया हीके अक्षमें नहीं आता । इच्छा, प्रापना,  
तथा आशीर्षा भी इससे अक्ष हैं ।

शित्रा मां रक्षताम्—आशीर्षा का अक्ष में प्रथम, तथा मध्यम पुनश्च  
एकप्रथममें तात् विकल्पमें छाड़ा जाता है ।

म पु            रक्षन्—रक्षताम्            रक्षताम्            रक्षन्तु

म पु            रक्ष —            रक्षताम्            रक्षत

इय पाठमें इकारान्त तथा उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंका वच भी रि  
गये है ।

मति—स्त्री ।

	ए थ	द्वि थ	अ ल
म	मति	मती	मतय
द्वि	मतिसु	"	मती
लृ	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभि
ल	मत्ये—मतय	,	मतिभ्य
लृ	मत्या —मते	"	"

इकारान्त तथा उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों, लाटलकारके रूप । ६३

	ए व	द्वि व	व व
प्र	मथा—मग	मथो	मतीगाम्
प्र	मथाम्—मतो	,	मतिषु
प्र	मते	मती	मतप

धनु—स्त्री ।

	ए व	द्वि व	व व
प्र	धनु	धनु	धनव
द्वि	धनुम्	,	धेन
वृ	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभि
व	धेन्ये—धेनये		धेनुभ्य
प	धेन्वा—धेनो	,	,
प	" "	धेन्वो	धेनूनाम्
व	धेन्वाम्—धनो	,	धेनुषु
व	धनो	धेनु	धेनवः

इकारान्त उकारान्त पुलिङ्ग शब्दोंके रणको इनके साथ मिलाकर अधोलिखित भेदकी ओर ध्यान दी,—

१। स्त्रीलिङ्गमें द्वितीयाके बहुवचनमें नु के स्थानमें विभक्ति होता है। पुं दरीनु, भानून्, स्त्री—मती, धेनु ।

२। इकारान्त उकारान्त शब्दोंके व, प, य, तथा व, के एकवचन में विषयके लीच इकारान्त तथा उकारान्त शब्दोंके समान रूप भी होते हैं।

३। मथा तथा मथ्या प्रत्यय आ के छोड़ने से बने हैं।

नी—नीत्वा—( लेनाकर )

शु—शुत्वा—( चुनकर )

कृ—कृत्वा—( कर )

गम्—गत्वा—( जाकर )

नम्—नत्वा—( प्रणाम कर )

रम्—रत्वा—( खेलकर )

म का लोप हुआ है।



आचार ( आचार ) पु — व्यवहार  
सम्बन्धा आचर ।

आन्ता ( स्त्री ) — आन्त

आषा ( स्त्री ) — प्रतिष्ठित स्त्री

आसन ( आसनम् ) न — आसना

श्रीषध ( श्रीषधम् ) न — दवा

कङ्कण ( कङ्कणम् ) न — कङ्कण

कौन्तेय ( कौन्तेय ) पु — कुन्तीका  
पुत्र, पुत्रिष्ठिर

क्षत्रिय ( क्षत्रिय ) पु — क्षत्रिय

घृत ( घृतम् ) न — घी

चक्रार ( चक्रार ) पु — एक पक्षी  
निसर्क विषयमें कहा जाता है  
कि वह चान्नी खाता है ।

चक्रवाकी ( स्त्री ) चक्रवाती ( यह रातकी  
अपने सदृशरसे विद्युत्क दाती है )

चन्द्रिका ( स्त्री ) — चादनी

कान्तु ( कान्तु ) पु — शिष्य

गात ( स्त्री गाता जर् [ जा ]

ि आ + त ) प्रिय बालक

गान ( गानम् ) न — गान

गन्तधावन ( न ) — दात घोना  
( तरपुत्र )

दान ( दानम् ) न — देना

दुग् ( दुग् — गम् ) पुं, न — कठिनाई

दुर्वाति ( स्त्री ) — अनौति

द्विज ( द्विज ) पुं — जो द्वार वापत्र,  
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इनका  
दो द्वार जन्म होता है । यही  
पक्षीत मन्कार इनका द्वितीय  
जन्म है ।

नपति ( पु ) — राजा

पाणि ( पुं ) — हाथ

पायिष ( पायिष ) पु — राजा

पन-शन ( पुन-शनम् ) न —  
( पुन-शब्द फिर, द-न न ) —  
दूसरो भट

प्रकृति ( स्त्री ) — स्वभाव

प्रतीकार ( प्रतीकार ) पुं — ( प्रतीकार  
भी पुं ) — उपाय

ब्राह्मण ( ब्राह्मण ) पु — ब्राह्मण

भक्ति ( स्त्री ) — भक्ति

भयत् ( भयना ) — श्राप

भागीरथी ( स्त्री ) — गङ्गा

धम ( भ्रम ) पु — धम

मति ( स्त्री ) — बुद्धि

मुक्ति ( स्त्री ) — मोक्ष

सुगया ( स्त्री ) — शिकार

मेतृ ( पु ) — कृषीका नाम ।

रज्जु ( स्त्री ) — डोरी

विकार ( विकार ) पुं — रोग,  
स्वाभाविक स्थितिमें परिवर्त

वेदना ( स्त्री )—पीडा ( सप ( सप ) प—घाप

शब्द ( शब्दम् ) न—शब्द

विशेषण ।

अनपराध ( बहु० )—निर्भीष ।

असत्पु ( नञ्प्रमा०, अ—नही  
+ सत्पु सप्त + हुप् + त )—  
अप्रसन्न

नीरुन् ( बहु०, निर्—निष्क्रान्त =  
निकला + रुन्स्त्री = रोग, त्रिभक्ता  
रोग घटा गया वह

श्रात ( श्रा + श्रुत, श्रु + त )—  
पीडित

हंशर—धनी

उपस्थित ( उप + स्था + त )—  
मास

उपस्थनीय ( उप + आस् + अनीय )  
—पूजाके योग्य

घोर—भयानक

चल—चञ्चल

जड—सुस्त, मड

रिड—गरीब

नष्ट ( नश + त )—नष्ट

पटु—धुर

पथ्य—हितकारी

मान्—बुद्धिमान्

लोल—चञ्चल

वृत् ( वृत् + त )—दुःख

व्याधित—( व्याधि पु राग )—

रोगके पीडित

सत्पु—प्रसन्न

सद्वर—साधु

स्नातव्य—( स्ना + तव्य ) स्नात करने

योग्य

धातु ।

अभि + वाद् ( अभिवाचयते ) ( चु  
द्वा )—प्रणाम करता

अव + गाद् ( अवगाहते ) ( भ्या आ )  
—नहाया

आ + मत् ( आमन्वयते ) ( च आ )  
—विज्ञा सांगना

उप + दिग् ( उपदिशति ) ( तु पर )  
—बैठना

कृष् (कृत) (भ्या आ—यद् ) चतुर्थीक साध आता है )— समय होना उत्पन्न कामना लिये समय होना	[ यच्छ ] ( प्रयच्छति ) (या पर)—पना प्र + च्छ (प्रसौचति) [ मी ] (या पर ) —प्रमन्न होना
चम ( चमते, चाभ्यति ) (भ्या आ ङि पर )—रक्षण करना	मच (भजति—ते) (भ्या उ)—भजन करना
पुष् ( पुष्यति ) (ङि पर)—पुष्ट करना, बढ़ा ।।	भ ( भर्ति ) (भ्या पर)—भरना मन् ( मनति ) (ङि आ )—सोचना जि + च्छ ( प्रितरति) भ्या ष—पना गुभ (शोभत) (भ्या आ )—शोभना चमकना
प्रति + नि + वृत् ( प्रतिनिवृत्त ) ( भ्या आ ) लौटना	संज ( सज्ज ) (भ्या आ )—संज करना
प्रति + पठ् ( प्रतिपठ् ) (ङि आ ) —स्वीकार करना, अभ्यास करना	
प्र + दा [ यच्छ ] या प्र + पमु	

## शब्दयः ।

अनात्वा ( अ + तात्वा—नाका सृत् कृ शब्द )—न जानकर	३ यह वाक्यको शोभाक लिये भी प्रयोग किया जाता है
उत्प्राप ( स्थाका सृ कृ शब्द )— उठकर	ग्रातुम् ( त्रि + तुष्—भ्या आ )— उचाक लिये
कतम् ( कृ + तुम् )—करनके लिये सत्त—उसके अनन्तर	परमायत—यथाय, सच्चतुच ( १ तत्—प्रायः पश्चमीके अथम श्रीर कभी २ सप्तमीके अथम जाता है । )
तथा—उस प्रकारसे	मातर—मात कालमें, सुबह
नात्रत्—१ सप्तमक, २ प्रथमत ,	

१। सब विभक्तिकल्पनि—तम सब विभक्ति कि कभी जाता है। तथापि प्रायः वह  
पश्चमीक और कभी २ सप्तमीक अ म जाता है।

मा-रहो ( यह निर्घधके श्रममे ) यथा-जसे, जिम प्रकारमे  
 लाट् लकारके मध्यम पुरुषके शीघ्रम्-जल्दी  
 पाय आता है ) श्रोतुम्-( श्रु+तुम् ) सुननके लिये

पाठ १५ ।

विधिलिङ् (प्रिधाय) ; श्रम् ।

प्रचरति अस्मी श्रम्य = प्रचलन्तामी श्रम्य — प्र श्रमि चलते हैं ।

य शमी ( योऽमी ) चार स सुहीत — जो वह चोर, यह पकड़ा गया ( योऽमी स — वह प्रसिद्ध ) = यह प्रसिद्ध चार पकड़ा गया है ।

सर्वे अस्मी ( सर्वेऽमी ) हम पण्डितमाद्विद्यन्ते — प्र सप्र इस पण्डितका श्रात्र करतें है ।

अस्मीपा प्राणानो कृते कि न व्यवसितम् एभि ( व्यवसितगभि ) — इन प्राणोंके लिये इन्होंने क्या नहीं किया ?

अपि नामानुस्य वर लभेय — आ ( अपि नाम — क्या जंगम में चाहती हूँ ) योग्य पति पाऊंगी ।

सम्पत्तौ न ह्यथेत् विपत्तौ ( पृथ्यं द्विपत्तौ ) स न विप्रीदेत् प्राण — दुष्टिमान् सम्पत्तिमें प्रसन्न न हो, और न त्रिपत्तिमें चिन्न हो ।

दुबला पुढे वैतर्षा वृत्तिम् आश्रयेत् ( वृत्तिमाश्रयेत् ) — दुबला पुरुष नदार्शमें शतके व्यवहारका आश्रय ले ( शर्षात् नम्र हीय वा भुक्ते ) ।

न्यापशास्त शिनेवहि इतीच्छामि ( शिनेवहीतीच्छामि ) — मैं चाहता हूँ कि हम दोनों न्यापशाम्न पढ़ें ।

श्वपीन् मा कर्षापि प्र ( प्य ) वधीरये — श्वपियोंका कभी शनावर न करो ।

प्रशामाऽऽकटिति न प्रतिनिवतेया चेत् म्रियेय ( प्रतिनिवर्तया येऽम्रियेय ) — यदि प्रवासमें शीघ्र न लोटोगे तो मैं मर जाऊंगी ।

इस पाठमें विधिलिङ (विधर्ष) के तथा अर्न्तुके रूप लिखे गये हैं ।

१ ऊपर लिखे हुए वाक्योंकी देखनेसे यह मालूम होगा कि लिङ्लकार—सभय, आजा, इच्छा, आशीर्षा, आशा, तथा शक्ति—इन अर्थोंमें आता है । इससे कई अर्थ लोट् लकारसे ऐसे हैं । यह अध्याय वाक्योंमें भी प्रयोग किया जाता है ।

### विधिलिङ् ।

भू-भ्या पर

वृत्-भ्वा आ

ए व । द्वि य । व य ।

ए य । द्वि य । व य ।

प्र पु भवेत् भवताम् भवेयु

वर्तत वर्तयाताम् वर्तरन्

स पु भव भवताम् भवत

वर्तथा वर्तयाताम् वर्तध्वम्

उ पु भवेयम् भवत भवेम

वर्तय वर्तवहि वर्तमहि

पुष्-ङि पर ।

सृ-सुत् आ ।

ए व द्वि य व य

ए य । द्वि य । व य ।

प्र पु पुष्येत् पुष्येताम् पुष्येयु

मिषत मिषेयाताम् मिषेरन्

चुर-चु० पर ।

ए व

द्वि य

व य

प्र पु चोरयेत्

चोरयेताम्

चारयेयु

अभिधाङ्-चु आ ।

प्र पु अभिधाङ्तेत

अभिधाङ्तेयाताम्

अभिधाङ्तेयन्

विधिलिङ्को प्रथम द्ध प्रकार हैं —

( पर ) ।

( आत्म ) ।

ए व द्वि य व य

ए व द्वि य व य

प्र पु ईत् ईताम् ईयु

इत इयाताम् ईरन्

स पु ई ईताम् ईत

ईया ईयाताम् ईध्वम्

उ पु इयम् इत इम

ईय इयहि इमहि

वर्तय, वर्तय , कर्ता, कर्ता , वतमान, वतमान , न द्यस्ति, न द्यस्ति, धर्षनुभय , धर्षनुभय इत्यादि दोनो प्रकारको रूप शुद्ध है ।

२ । खत्र र्वा इ किंशौ खरको वाइ आते है तो उनको वा रचनेवाले व्यञ्जनको विकल्पसे द्वित्व होता है ।

—वतमानमें र् खरको वाइ है , र्को वाइ रचनेवाले तुको विकल्पसे द्वित्व होता है ।

अश्स्—पु ।

अश्स्—स्त्री ।

	ए	व	द्वि	ष	व	य	ए	व	द्वि	ष	व	य
म,	असौ	असू	असौ				असौ	असू	असू			
द्वि	असुसु	,	असुसु				असुसु	,				
वृ	अमुना	अमूभ्यासु	अमौभि				अमुया	अमूभ्यासु	अमूभि			
च	अमुन्मै	,	अमौम्य				अमुप्ये	,	अमूम्य			
प	अमुन्मात्	अमूभ्यासु	,				अमुप्या	,				
प	अमुप्य	अमुयो	अमौषामु				,	अमुयो	अमूषामु			
स	अमुषिमत	,	अमौषु				अमुष्यासु	,	अमूष			

अश्स्—न ।

म, द्वि अश् अमू अमूनि

शेष पुलिङ्गके समान ।

चेत् + म्रियेय = चेत्त्रिम्रियेय, वा चेन्म्रियेय ।

नियम —

३ । (अ) वाक् + हरि = वाग्हरि , तत् + आसनसु = तदासनसु — पदके अन्तमें अननाधिकको मित्रा कोइ व्यञ्जन हो और उसको वा कोइ खर वा घोष दण हो तो वच अपने वागके तृतीय दर्शमें अन्त लाता है ।

(घ) चेत् + म्रियेय = चेत्त्रिम्रियेय वा चेन्म्रियेय , तत् + मरणसु = तद्मरणसु वा तन्मरणसु — परन्तु यदि आगे कोइ अनुनासिक हो तो पदके

प्रत्यसे अनुनासिकसे चित्रा जोई व्यञ्जन अपने धारा अनुनासिकसे विकल्प से प्रकृत जाता है ।

(क) तत् + मातृम् = तन्मातृम् ( यत्रन यद् ), चित् + मयम् = चित्मयम् ( ज्ञानमय ), याङ् + मयम् = याङ्मयम् ( ज्ञान ),—मातृ और मय प्रत्यय है । परन्तु अन्तका अनुनासिकसे चित्रा कोई व्यञ्जन नित्य अपने धारासे अनुनासिकसे प्रकृत जाता है—यत् चमक धात् प्रत्यय-मय्यन्ती अनुनासिक है । जैसे—तत् + मरगम् = तन्मरगम् या तद्मरगम् परन्तु तत् + मातृम् = तन्मातृम्, चित् + मयम् = चित्मयम्, याङ् + मयम् याङ्मयम् ।

अन्तसे रूप इस प्रकार बनत हैं —

यु तथा स्त्रीलिङ्गके एकवचनमें असे । इतर रूप धनापना तिये इसको अत्र अत्र समझना चाहिये, जो मन्त्रके रेषा चलता है । इको म् होता है, और उपसर्ग आगवाले स्वरको यत् यद् इत्य हो, उ होता है, यत् यद् हीर्घ हो तो ऊ होता है । पुलिङ्गमें द्वितीयाको छाड़ और मध्वियमक्तिर्षा से बहुवचनमें ऊ का लगट हो जाता है । पुलिङ्गसे तृतीयाक एकवचनमें मुके धात्के स्वरका उ होता है, ऊ नहीं ।

४ । अमी अग्र्य, अमी संज्ञा —अमीके अन्तका इ मध्वय है, अर्थात् यद् अग्रिम स्वरके साथ मदी मिलता ।

पिङ्गुम् ।

\*नास्त्यमतिम मोरपानाम् ।

स्वागत देव्ये ।

नेत्रेण काण्डे । कर्णेन ध्वजिरे । पाद्वेन यत्त्र ।

शोभेण कौशिकीश्वरि ।

चिरं शीव । अनुष्ठितो देवाभ्यः ।

अमी अग्र्याम्बुध धावन्ति ।

० इच्छादि मन्त्र जानी हैं । ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ वे नहीं जानीं ।

सखीसखां पठति कदापि भावलम्बेमहि ।  
 अलमनेनाप्रस्तुतेन । प्रस्तुतमयोपक्रमे ।  
 यद्वाधर्माद्रिवर्तया श्रीभनं भजेत् ।  
 वयस्य ! विरमास्तात्रिष्कलादारम्भात् ।  
 सग्रामो नाम शूराणांभय परम उत्सवः ।  
 वस्त्रे ! इमे अपि प्रये । न युक्तमनयोस्तात्र गन्तुम् ।  
 हला अमू सख्यं क्व नु यत्र भवेयुः ।  
 नाय्या वृत्ति समाचरेत् ।  
 कथं पुनरमो कथय स्रजे रामचन्द्रं च धरयन्ति ।  
 न मुद्दिगद्वृक्षेषु न च धम परित्यजेत् ।  
 शाम्भित् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुजनः ।  
 सवतो जयमन्त्रिच्छेत् पुत्रादिच्छेत् पराजयम् ।  
 विग्रमपभुत यन्त्रिच्छेत् भजेदसुत वा त्रिपमीश्वरेच्छया ।

तुमको अपने मुदनी आजाय करनी चाहिये ।  
 बुरे कामोसे दूर रहा ।  
 तुमको कटना चाहिय कि फिर का हुमा ।  
 अच्छा होता यदि तुम झूठ न कहते ।  
 वे प्रसिद्ध चोर पकड़े मरे हैं ।

सजाशब्द ।

आगति ( स्त्री )—स्थानका आवाय	अपकृच्छ ( पु, न तपु०, अर्थ पु
अधम ( अधमे ) पु—बुरा काम	धन + कृच्छ्र, पु, न—कष्ट—
अमत् ( अमत्तम् ) न ( अ + मृत् =	धनज्ञा कष्ट
मृ + त )—अमत्	आदेश ( आदेश ) पु—आजा

१। अत्र शकुन्तला अदने पतिव दारकी तरफ स मरनेकी भी भोजनक विने प्राधान्य करती है तब यह वाक्य कर्म गुणि लक्ष्य करे ।



पारम्भ ( शारम्भ ) सं — काथ	प्रत्ययकार ( प्रत्ययकार ) पु — प्रति विद्म
इयरेच्छा ( स्त्री ) — ईरको इच्छा ( तत्पु० )	+ ञकार ( ञ ) — वुराईव वुराईमें को वुराई, प्रत्या
उत्पद्य ( उत्पद्य ) पुं — उत्पद्य	प्रयास ( प्रयास ) पु — याता
उपकार ( उपकार ) पुं — उपकार	प्राप्त ( प्राप्ताः ) पु — बुद्धिमत्
कण ( कण ) पुं — कान ।	मनारय ( मनारय ) पु — इच्छा ( मनाघोनाभूमति — यह स्थान जिममें इच्छाय न जाती है )
कलह ( कलह ) पु — भाड़ा	मूय ( मूय ) पु — मुद्
मातृ ( मातृम् ) न — गीतृ	मुह ( मुहम् ) न — लड़ाई
चोर ( चारः ) पु — चोर	रामधन्व ( रामधन्व ) पु — राम
क्षय ( क्षय ) पु — क्षय	धर ( धर ) पु — धति
दुजन ( दुजन ) पु — ( तत्पु० 'प्राप्ति० ) वुरा उपवर्ग वुरा) — वुरा श्राम्भौ	विपत्ति ( स्त्री ) — अ पत्र
मेतृ ( मेतृम् ) न — धाय	विष ( विषम् ) न — विष, लहर
नायशास्त्र ( नायशास्त्रम् ) न — ( तत्पु०, नाय पु + शास्त्र न ) तकशास्त्र	वृत्ति ( स्त्री ) — चालवान
पट्टति ( स्त्री ) — माता	मरौ ( स्त्री ) — मरौनी
पराजय ( पराजय ) पु — हार	महाम ( महाम ) पु — मुह
	मपत्ति ( स्त्री ) — मपत्ति ।

विशेषण ।

श्राम् ( मजना ) यह  
श्राम्भय — योग्य

श्राम्भुत्त ( श्राम्भुत्त, स्त्रा + त )  
— विद्या बुद्ध्या

११ परा इत्यादि उपसर्गों में प्राम् प्र ई इतिविये य प्राप्ति कहाने हैं । कतधाय  
कनाईमें प्रथमवत् प्राप्ति प्राप्तिंका क्री है ना वर प्राप्तिममास कहाता है । दुधी जन, —  
ना श्राम्भौ जनय श्राम्भ ।

अप्रसृत—अप्रकृत	प्रसृत ( प्र + स्तु + त ) प्रकृत
काण—काना	वधिर—वधिरा
खड्ग—लगड़ा	मलीमध ( स्वी—मलीमधा )—
पृष्टीत—( प्रष्ट् + त ) पकड़ा	मलिन
	पुक्त—( पुक्त् + त ) योग्य
दुबल—कमज़ोर	वैतसी ( वैतसका ) वैतकी
निष्फल ( बहु० निष् + फल न ( निर्गत फल परमात् तत् )—	व्ययमित + ( वि + 'श्रव + मो + त ) —निश्चित
	शूर—शक्तिमान्
नाय्य—ठौक	शोभन—अच्छा ( शोभन भवेत्— अच्छा होता )
परेय ( प्र + दा + य )—विवाहमें लौ लानेवाली	

धात ।

अनु + इष्ट् [ इच्छ् ] ( अन्वि- च्छति ) ( तु पर )—चाहना	उप + कम् - ( उपक्रमते—भ्या आ ) —आरम्भ करना
अव + धीर् ( अवधौरयति च् पर ) —अनाइर करना	लौउ ( लौउति, भ्या पर )— लौना
अवयम्ब ( अवयम्बत—भ्या आ ) —आशय लेना, स्वीकार करना	नि + वृत् ( निवृत्तते, भ्या आ )— लौटना
आ + दृ [ दृप् ] ( आदृष्यते ) ( ि आ )—आइर करना	परि + लप् ( परिल्लति—भ्या पर ) —दोड़ना
आ + शि ( आशयति—ते, भ्या उ ) —आशरा लेना	ष् + ष्ट ( ष्टलति—भ्या पर ) —जलना

१। अव शक्ति—निश्चिन्तक की कारणात् धातुर्लौका लौ विकरन् य क पठिते स्मर  
दी पाता इ अस्ते—सी—लति—जे—दि-

सु ( सुहृति ) ( ङि षा ) -

सूक्ष्मज्ञाना

सु [ सिध ] ( सिधत ) ( ङि षा )

-सरना

लभ ( लभत ) । स्या षा ) - घना

१ वि + रसु ( विश्रमति - स्या पर ) -

श्रितस्य परता

वि + मृ [ मीरु ] ( विधीति ) -

( स्या पर ) - विद्वद्दोना [ वीरुना

निष् ( विश्रम ) ( स्या षा ) -

मसु + ता + षा ( भसाचरति -

स्या पर ) - सरना

वृष् ( वृष्यति ) ( ङ षा ) - प्रसन्न

दोना

श्रवण ।

इला - न्नियोक सव्याघनमे

प्रय ग क्रिया जाता है

अपि नाम १ का, जैसा मे चाहता

हूँ ( इच्छा विद्याता है )

२ हो सकता है ( सम्भय

विद्यता है )

कृते - दो तिथ

क - कष्ट

कृति - कष्ट

घ - प्रौर

भटिति - शीघ

सु - १ प्रसन्न आता है २ अनुमान  
विद्याता है

पुनरु १ फिर, २ परसु, ३ धाम

मघासो विध प्रय ग क्रिया

जाता है

ता - श्रवण

श्रवण - ( मथ + तम पञ्चमोक्त  
श्रम ) - सत्र तरफसे

। स्यागतम् - स्यागत ( सु = इच्छा,  
आगत षा + गम् + त आना )

१ । रसु - ता षा है पर पत्र इहके पदि १ ति षा पर स्य आत है तो य  
परस्य भी जाता है ।

पाठ १६ ।

लट् लकार वा अनद्यतनभत, अस्मद् और युष्मद् ।

अयम् अहम् आगतोऽस्मि = अयमहमागतोऽस्मि—यह मैं आया ।

इमे नृ एहा = इमे नो एहा—यह हमारा घर है ।

तस्मै ते नाम ईश्वराय—उस तुम परमेश्वरको प्रणाम ।

एते ययम् अ ( म ) योष्यां प्राप्ता—ये हमलोग आयाधा पहुँचे ।

शिव ते मे अपि शिव यच्छ्रुतात् = शिवस्ते मेऽपि शिव यच्छ्रुतात्—शिव तुम और हमको सुख दे ।

इंद्र त्वा अश्वत्तु मा अपि इष्ट = इन्द्रश्चाश्वत्तु मावीष्ट—यह इंद्रवर तुमको वचन और हमका भी ।

अत्र मामनु ते—तुम्हारा सब हमारे एसा है ( अतुल्य योगमें द्वितीया होती है । )

अनु हरि सुरा—देव लोग हरिसे कम है ।

वृषभानु विश्यातते विद्युत्—वेदकी ओर विद्वली चमकती है ।

अथ प्रातर्मम वास तथाम् अ ( म ) सान्द्रत अपश्कुन द्वि तत्—  
—जान प्रात काल मेरी झाड़ आधर फड़की । तिशय, यह पुरा णकुन है ।

सुर्योऽहाम् अ ( म ) गच्छत्—सूर्य अहाको गया ।

अज्ञा प्रासम् अ ( म ) नयामि—हमनोग वरुणीको गाध ले गये ।

रुधारमपारम् अ ( म ) मनत्—उमन ममारको अमार ममभा ।

दानम् प्रकाशेन निगीये शोषा निक्षीलत् अभवन् ( निक्षीलयोऽभवन् )  
—सहसेके तेजसे आधीरातको तिये प्रकाशहीन हुए ।

इस पाठमें अस्मद्, युष्मद् तथा लट् वा अनद्यतन भूतके एव त्रिपे गये हैं । अस्मद् तथा युष्मद् शब्दों तीनों तिङ्गोंमें समान एव होते हैं ।

अस्मद् । (पु, स्त्री, न)	युष्मद् । (पु, स्त्री, न)
ए य द्वि य य य	ए य । द्वि य । उ य ।
म अहम् आवाम् ययम्	त्वम् युष्मत् पूषम्
द्वि माम् मा , नो अस्मान्	त्वाम् ,— वाम् युष्मान्
	न त्वा य
तृ मया आशाभ्याम् अस्माभि	यथा युष्माभ्याम् युष्माभि
च मद्यम् ,—गो अम्मभ्यम्	तुभ्यम् वाम् युष्मभ्यम्
मे न त	य
प भत् आशाभ्याम् अस्मात्	त्वात् युष्माभ्याम् युष्मत्
प मम मे आद्ययो अस्माकम्	तय त युवया युष्माकम्-
	नो न वाम् य
स मयि आद्ययो अस्मात्	त्वाय युवयो युष्मात्

( अ ) तस्मै तं नम इत्यादि—यहाँ म का प्रयोग किया गया है, क्योंकि तस्मै से यह मालूम होता है कि इत्यत्र पहिले कदा जा चुका है ।

१ ( अ ) अस्मद् और युष्मद्के वैकल्पिक रूप, ऐम मा, नो, न, तथा त्वा, वाम्, य, जहाँ अन्त्यांश रहता है, नियमसे प्रयोग किए जाते हैं, और अणु प्रिकल्पसे । नो एक बार कदा जा चुका उसको पुन कदमीको अन्त्यांश कहत हैं ।

( ब ) दरिद्र्या मां च रक्षतु—यहाँ -या तथा मा का प्रयोग नहीं हो सकता, क्योंकि वे चमे छोड़ें गये हैं—

( ब ) अस्मद् और युष्मद्के वैकल्पिक रूप वाक्यसे आश्रमसे प्रयोग नहीं किये जाते, और न च, या एव से छोड़ें जानपर ।

अनेन व्याकरण पठितमेत काव्यमुपदिश—इमन व्याकरण पटा, इसका काव्य पटाथा ।

२ । इसी प्रकार एतद् वा एनम् इत्यादि वैकल्पिक रूप अन्त्यांशसे प्रयोग किए जात हैं ।

लङ्, लकार ।

भू—भ्या पर ।

वत्—व्वा या

ए व । द्वि ष । ष व । ए व । द्वि ष । ष व ।

प्र पु	अभवत्	अभवताम्	अभवन्	अवतत	अवर्तताम्	अवतन्त
म पु	अभव	अभवतम्	अभवत	अवतथा	अवर्तथाम्	अवतथ्वम्
उ पु	अभवम्	अभवथाव	अभवाम	अवर्त	अवर्तावहि	अवर्तामहि

पुष्—त् पर ।

मृ—त् आ ।

ए व द्वि ष ष व ए व द्वि ष ष व

प्र पु	अपुष्यत्	अपुष्यताम्	अपुष्यन्	अम्रियत	अम्रियताम्	अम्रियन्त
--------	----------	------------	----------	---------	------------	-----------

इन वर्णोंको देखनेपर यह मालूम होगा कि धातुको पहिले अ (आगम) लगा हुआ है ।

इत्—हु पा ।

ऋ ( अर्क् ) व्वा या ।

उ पु	रेक्कम्	रेक्काय	रेक्काम	इ०	आर्क्कम्	आर्क्काय	आर्क्काम	इ०
------	---------	---------	---------	----	----------	----------	----------	----

जिन धातुओंके आरम्भमें स्वर होता है उनमें पहिले अ को बन्ने या होता है, जिसकी आगेके स्वरके साथ वृद्धि आयेगी होता है—गुण नहीं । इस प्रकार आ + इ वा ई = ए, आ + उ वा ऊ = औ, आ + या वा ऋ = आर, तथा आ + ल = आल ।

लङ् लकारके प्रथम ये हैं —

( पाठ्यै )

( आत्मन )

	ए व	द्वि ष	ष व	ए व	द्वि ष	ष व
प्र प	त्	ताम्	न्	त	इताम्	इन्त
म प	म्	तम्	त	थाम्	इथाम्	उडम्
उ प	अम्	व	म	इ	वहि	महि

आत्मि\* नगरम् ।  
 सैय प्राप जैय मनस्य ।  
 कुमार स्वमस्य कृत शाक घोडु नाष्टमि ।  
 मेघेभ्यो क्षन्विन्प्रोऽपतत् ।  
 रजसुषेन पद्माम्बुमौलश् कुमुदिनि च कामोन्वत् ।  
 अष्टौ कथमव्याप्य या मन्ता न प्रतिपद्यते ।  
 त्रसोभिर्वाक्यैरनामसात्प्रयत् ।  
 शरयो रामस्य धियागने प्रादानवचत् ।  
 चित्तुया चङ्ग इय राम सौतया वराजत ।  
 ऋषुना - भवन्नात्ता प्रमाणमित्युक्त्वा वारम् ।  
 यत्से ! न ते मङ्गलकाले रात्रिर्मुचितम् ।  
 प्रमद्वक्षे तस्य ।  
 श्रीशस्त्राधनु माषोष्ट ।  
 वेरेश्वरै चवदोऽम्भान् कृष्ण मज्जदाऽप्यतु ।  
 जिना भक्तप्रमथ्यतु चन्दन न प्ररोहति ।  
 हस प्रवक्ष्य ते कान्तां गतिरस्यास्तवया दृता ।

कत्रय कालिदासाद्या कत्रयो वयमप्येमी ।  
 पत्रतं परमाणी च पत्रावत्प्र प्रतिष्ठितम् ॥  
 पात्राना भय जातात् पदानां शिशिराद् भयम् ।  
 पत्रताना भय वज्रात् साधुना हुजन - भयम् ॥

मञ्जनाशि शब्द कभी नष्टो बन्वतं (सत्) ।  
 मनुष्यको प्राप्तिम भी कतव्य न होइना चादिपे (अहं या  
 प्रयोग करो) ।

\* । भवन्ना ग प्रमाणम्—चापका आन्व सात्प्र किश प्रमाण ।

पापवि दृष्ट उत्पन्न हुए ( उद् + मृ ) ।

गुप्तको प्रणाम ।

क्या ऐसा होगा कि ( अवि नाम ) स गङ्गाम नष्टाऊ !

मन्त्राशब्द ।

अप्रा ( अपका स्त्री ) बकरी  
अपशकुन ( अपशकुनस् ) न — गुरा  
शकुन

अयोध्या ( स्त्री ) — अयोध्या  
ईश ( ईश ) पु — प्रभु  
कान्ता ( स्त्री ) — प्रिया  
काल ( काल ) पु — समय  
कुमुद ( कुमुदस् ) न — रात्रिनिकासि  
कमल

कृष्ण ( कृष्ण ) पु — कृष्ण  
गति ( स्त्री ) — गमन  
दृष्टा ( पु ) ( यह मन्त्रा श य मे  
शता है ) — घर

ग्राम ( ग्राम ) पु — गांव  
वित्ता ( स्त्री ) — एक नक्षत्र  
तक्र ( तक्र ) पु — तक्र  
दीप ( दीप ) पु — दिया  
निशीथ ( निशीथ ) पु — आधीगत  
पदात्त्व ( पदात्त्वस् ) न ( पदाथ  
पु + त्व — भाववाचक पदाथ )  
पदाथका घम  
पद्म ( पद्मस् ) न — प्रभा

परमात्तु पु — ( कमघा० परम—  
बड़ा, + अथ पु कर )  
मन्त्रे छोटा कर

पत्रत ( पत्रतः ) पु — पत्राङ्क  
पाप ( पाप ) पु तत्त्व पाप पु०  
पैर + प ( पा — पीना ) घट  
ओ पैरसे पापी पीता है, पैर  
( पादेन पिशतीति ) ।

प्रकाश ( प्रकाश ) पु — प्रकाश  
प्रमाथ ( प्रमाथस् ) न — यथाय  
दानका कारख

विद्दु पु — बूढ़  
मङ्गल ( मङ्गलस् ) न — शुभ  
मलय ( मलय ) पु — एत पहाड़का  
नाम

मेघ ( मेघ ) पु — मेघ  
वज्र ( वज्रस् ) न — इन्द्रका वज्र  
वाक्ता ( वाक्थस् ) न — वाक्ता  
वात ( वात ) पु — हवा  
विद्युत् ( स्त्री ) — बिजली  
वियोग ( वियोग ) पु — विरह  
त्रिय ( त्रिय ) न — मराठेय



श्रित ( श्रियम् ) न — कस्याय	मशा ( म्नी ) — चतस्र
श्रितिर ( श्रितिर रम् ) पुं न — ठठा	समार ( समार ) पुं — रूपार
श्राज ( श्रौज ) पु ( तत्पु०, श्रौ— स्त्री घनको यथा, + ईञ—पु	सुर ( सुर ) ये — इव
नरमाका पति, श्रिका	स्य ( स्य ) पु — स्य
	स्य ( ईम ) प — इम

## विशेषतः ।

अशेष ( बहु० नास्ति शेषो यस्य ) -- चिमसे शेष नहीं, अत्र	निष्पन्नम् ( बहु०, निम् + ऐञ्च् न ) श्रिमत् सङ्घ निकल गया,
अधार ( बहु० अ-नदी + धार — पुं तस्य ) चिमसे कोइ तस्य नहीं	प्रतिष्ठित ( प्रति + स्थित — र्णा का भूत कृ ) धार
अभातु ( सर्थना ) — इम	प्रसन्न ( प्र + सन् [ डीर् ] र्णा पर का भु कृ ) — गूढ, निर्मल, निर्भीष
आद्य — श्रौसाम्	
उचित — योग्य	
कालिन्वाद्य ( बहु०, कालिन्वास — पु + आद्य विशेष = प्रथम ) कालि दाससे आरम्भ कर	यास ( य + आप + त ) बहुधा युष्मत् ( स्य ना ) — तुम
नीप ( तिका कृतकृन्त ) — नष्ट करन योग्य	याम — श्राया
लेप ( श्रिका कल्पकृ ) जीतने योग्य तुच्छ	सवद्य ( सम् + विच् + य ) — सो ठीक खाना खाए
	दृता ( दृत् ( दृ + त ) का स्त्री ) — ले खाए गयी

## धातु ।

अह ( अहति — र्णा पर ) — योग्य दाना ( ह्यमहति योद्, म् =	रामको उठाना धाम्य है, तुमको उठाना चाहिये )
--	---

१। कृत — कृता घनवत् घनवता — भूत कृन्तका या शीकृन्से स्त्रीनिङ्घ घनता है  
कीर उम्म समान जोनवान विभयवर्तिका स्त्री दृक जाइनेसे बनता है ।

✓ अय् (अयति—भ्वा पर) —वचाना	✓ प्र + रुह (प्ररोहति—भ्वा पर)
✓ उद + मौल् (उन्मौलति—भ्वा पर)	—उठाना
—खिलना, फूलना	मन् (मनाते—ङि आ) —सोचना
दा (यच्छ्) (यच्छति) (भ्वा पर)	✓ वि + द्युत् (विद्योतते—भ्वा आ)
—देना	—चमकना
✓ नि + मौल् (निमौलति—भ्वा पर)	✓ त्रि + राज (त्रिराजति—त—भ्वा
—बन्द होना, मुकुलित होना	उभ) —चमकना
प्रति + प् (प्रतिपद्यते—ङि आ)	✓ शास्त्र् (शास्त्रयति—बु पर) —शान्त
—पाना	करना
प + ष (पच्छ्) (भ्वा पर)	✓ खन्द् (खन्दते—भ्वा आ) —
—देना	फड़कना

अशय ।

अनु (यद् हि वि को साय आता है)

इह—यद्य

इसके अर्थ है—१ सदृशता,

२ हीनता ३ सामीप्य,

४ व्यापकता

अननु—और कहीं

✓ अपि—सम्बोधनमें आता है

✓ अक्षप् (गद्यपद्यथातुओंके साथ आता है) —अक्ष गम्—अक्ष होना

इय—तरह (सदृशता निश्चयता है)

उपमान तथा उपमेय एक विभक्तिमें आते हैं)

✓ उवह्वा (उव् + ह्वा) —कहकर

✓ रोन्तुम् (रन् + तुम्) —रीनेके

लिये

✓ विना—विना (यद् हि त् वा प के साथ प्रयोग किया जाता है)

✓ धोदुम् (ध्व् + तुम्) —उठानेके लिये

सवना—उपकाल

पाठ १७ ।

शुद्धात्मनः कर्म ।

कर्मकर्मता पिता ननु — कर्म कर्म प्रायः पिता ननु है ।

पितर मातर च पूज्य — पितर और माताक पूजा कर्ता ।

पितृभ्य श्रया — पिताश्रयो प्रणय ।

मातु त्रि ( त्रि ) लोकात् पूज — कृष्ण गणेश विष्णवे है ।

श्रया मन्त्रद्वय — श्रि न म म श्रुति द्वय प्राये है ।

अथ सप्त आ ( प्रा ) न्या श्रि — अथ श्रुतियोंकी पहिली श्रुति है ।

मौता भूयो लभ्यन्ते च भाष्य अथ शान्ति — मौता पति और गणेशकी प्राय प्रणयो मर्त्य ।

सत्य विनाशं तर्हि शान्ति — भाष्य, हम तपको मोषो ।

शान्ति श्रुतात् प्रथम — शान्ति श्रुती माताश्रुती प्रणय क्रिया ।

इय पाठमें शान्तिश्रुति प्रथम श्रुति श्रुतियोंके अर्थ श्रुति मर्त्य है ।

श्रु - पुं ।

	क य ।	द्वि य ।	य य ।
प्र	कर्ता	पत्नी	पत्नी
द्वि	पत्नी	"	पत्नी
तृ	कर्ता	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
च	पत्नी	"	कर्तृभ्यः
प	कर्तु	"	"
प	"	कर्तुः	कर्तृणां
स	पत्नी	"	कर्तृणां
थ	कर्ता	कर्तारो	पत्नी

क्षुण्—खी ।

यह नश्रीत समान वनता है । अकारान्त विशेषणोंका स्त्रीनिष्ठा रूप ईं की जोड़नेसे वनता है ।

पितृ—पु ।

मातृ—म्नी ।

	ए	य	।	द्वि	घ	।	य	घ	।	ए	य	।	द्वि	घ	।	घ	घ	।
प्र	पितॄ			पितॄ			पितॄ			माता			मातरौ			मातर		
द्वि	पितॄभ्यः			पितॄभ्यः			पितॄभ्यः			मातरॄभ्यः			मातरॄभ्यः			मातॄ		
तृ	पितॄभ्यः			पितॄभ्यः			पितॄभ्यः			मातरॄभ्यः			मातरॄभ्यः			मातॄभि		
च	पितॄ			पितॄभ्यः			पितॄभ्यः			मातरॄ			मातरॄभ्यः			मातॄभ्य		
प	पितॄ			पितॄ			पितॄ			मातॄ			मातॄ			मातॄ		
प	पितॄ			पितॄ			पितॄभ्यः			मातॄ			मातॄ			मातॄभ्यः		
स	पितॄ			पितॄ			पितॄ			मातरि			मातरि			मातॄ		
स	पितॄ			पितॄ			पितॄ			मातर			मातरौ			मातर		

इन शब्दोंके विशेषमें अधानिपित वाते ध्यानमें रक्षणे —

१ । पहिले पांच रूपोंमें शको आर् द्वाता है, और प्रथमाकी एक वचनमें स ( मय ) की साथ आर्का र् निकल जाता है ।

२ । सम्बन्धबोधक पितृ, मातृ इत्यादि शब्दोंमें तथा नृ शब्दमें श्को आर् होता है, आर् नही ( नृशब्दके रूपोंकी देखा ) ।

स्वर्—स्त्री ।

स्वर्षा	स्वर्षारौ	स्वर्षार
	नष्ट—पु ।	
नष्टा	नष्टारौ	नष्टार
	भर्तृ—पुं ।	
भर्ता	भर्तारौ	भर्तार

६ । अग्रे 'प्रतिम', मद्—प (योग), मद्—पुं (पति),  
 इन प्रकाशं मद् नो व्यास एता के अर्थानि यत् सत्यमयं यत् ।

७-८ ।

	व ल	द्वि ल	य थ
प	ना	नरा	नर
पि	नरय	,	पुत्र
सु	र	सम्बन्धम्	सन्धिः
थ	र		सन्धि
प	र	"	"
य		ना	—नाम पुत्रासु
म	नरि		सपु
म	न	नरा	नर

८ । पुत्र ए विदुः समान आग ई । इत्ता य य से पुत्रासु या  
 नृणाम इत्ता ए ।

९ । पुरारिष्ट, अतन्दि—कन पित इत्यानि रक्षायो मन्त्रिये निये  
 वारि, पितर इत्यानि रक्षन्त समभन्ता आदि ।

लोभो धाता पित्रा सम ।  
 धातु पुत्रा आत्रया धायीया वा ।  
 स्यात् पुत्रु अमीयः स्वस वा वा ।  
 यथैव रि नान्तरि च विदुः ।  
 भन्तः शमनं तिष्ठ ।  
 सपत्नीनामुवाचारा विरवा ।  
 अशमति पुत्रव मांय रक्षति ।  
 अत्र दंभो रदुर्गतिस्त्रिभुक्ति म य विनायथायथोक्तकल्पेन य  
 यमेतन्निष्पद्य ।

अनभ्यन्तर प्राध्यामस्य वृत्तान्तस्य ।  
 भगवति वसुन्धरे ! स्नाय्या हुद्दितरनयेत्तस्व आनकीम ।  
 यन्ता गजान्याभ्यपतद्गलस्यम ।  
 अप्रियस्य च पथस्य वत्ता श्रोता च वृत्तम ।  
 अथ भाष्या अपि नृणा भवन्तीह समागमा ।

मातु पितु स्वसु पुत्रा मातुर्मातु स्वसु सुता ।  
 मातुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञया मातृग्रन्थय ॥  
 काव्यशास्त्रजिनादेन कालो गच्छति धीमताम् ।  
 व्यसनं च भूर्खाशा निद्रया बलदेन वा ॥  
 भद्रं कृतं कृतं मोनं कोकिलैर्ललादागमे ।  
 इदुं रा यतु वक्तारस्वतु मौनं हि शोभनम् ॥  
 प्रापन्नामपहर्तारं दातारं सत्प्रगपन्नाम् ।  
 लोकाभिराम श्रीराम भयो भूयो गमाम्यहम् ॥  
 का तय कान्ता वस्ति पुत्रु सवारोऽयमतीव विचित्रु ।  
 कस्य ह्य वा कुत आयातस्तस्व विलय तद्विभ्रात ॥

वाच्यं लीगं प्रागं कालं वेदका पाठं वरते हि ( पठ् ) ।  
 प्रायं जहां लक्ष्मी रहती है वहा सरस्वती नदी रहती ।  
 शुक्ललाक्षी दो सखिया उषर प्रेम करती थीं ।  
 अथ तथा रीसाका अनात् ( अथवीर ) मत करा ।  
 धनिकोंको चाहिये कि ये दीनोंके रसाक हों ।  
 सेवकमें कहा, 'महाराज, ली आदकी आना' ।  
 क्या ऐसा होगा कि मैं नमस्कार नहीऊ ।

## संज्ञाशब्द ।

आपद् ( स्त्री )—विपद्	भार्तीय ( भारतीयाः ) पु —भतीया
श्रृण ( श्रृणम् ) न—श्रृण	मशु ( मशु ) पु —शौक मशु
कलह ( कलह ) पु —भगहा	मानुल ( मानुल ) पु —मासा
कांकिल ( कोकिल ) पु —कायन	मात्र ( स्त्री )—मा
जलनागम ( जलनागम ) प —तत्पु	मान ( मोरम ) न—बुध रहना
( जलपु तरप० जल दनयाला	रघुपति ( तत्पु० रघूणा पति —प )
संघ + आगम पु प्राणा )—	राम
मेघाका आना	लोक ( लोक ) पु —लोग
जानकी ( स्त्री )—जनकनी लड़का,	यमुधरा ( स्त्री )—पृथ्वी
सीता	विनो ( विनी ) पु —विद्या
तस्य ( तस्यम् ) न यथायता ( त	वहताग
मपना + स्य )	वृत्तान्त ( वृत्तान्त ) पु —वृत्तान्त
इहुर ( इहुर ) पु —गैडक	व्यसन ( व्यसनम् ) न—पुरी आत्त
देव ( देव ) पु —१ देवता,	शासन ( शासनम् ) न—आणा
२ राजा, प्रभु	शास्त्र ( शास्त्रम् ) न—शास्त्र
देव ( पु )—देवा	सहस्रहति ( स्त्री तत्पु० सत् पु
ननाह ( स्त्री )—नग्न	सज्जन + सहति—स्त्री सह )
निद्रा ( स्त्री )—नी	सज्जनोका साध
नु ( पु )—मनुष्य	सुनिकाध ( सुनिकाध ) पु —सासीपा
पितृ ( पु )—पिता	सुत ( सुतः ) पु —पुत्र
सशु ( पु )—सम्बन्धी	सृष्टि ( स्त्री )—सृष्टि
भतृ ( पु )—पति	स्वस्वीय ( स्वस्वीय )—पु ( स्वश मे )
भातृ ( पु )—भाइ	—भाभा
भ्रातृ ( भ्रातृ ) पु —भतीजा	स्वस्वय ( स्वस्वय ) पु भाजा

विभक्तयः ।

१/ धनभ्यन्तर—अपरिचित  
 २ अपघृ—जेजायेवाला, दूर करके  
 या घटानेवाला  
 अप्रिय ( नञ्प्र० )—अप्रिय  
 ३/ अभिगम—सुन्दर  
 अप्रमाद्य ( नञ्प्र० ) प्रियता सम्मय  
 नहीं  
 ४/ आद्य—प्रथम  
 उपदेश—उपदेश देनेवाला  
 कर्तृ—करनेवाला  
 मनस्य ( तत्पु०, मञ्ज पुं दायी + म्य  
 म्वा से )—दायी पर सवार,  
 महायत  
 ज्येष्ठ—बड़ा  
 दातृ—दाता  
 दुर्लभ—दुर्लभ

दृष्ट—देखनेवाला  
 धीमत्—बुद्धिमान्  
 प्रणत ( म + नम + त )—नम्र  
 भद्र—शुभ  
 यन्तृ—इष्टानेवाला, नायक  
 रक्षित—बचानेवाला  
 वक्तृ—बोलनेवाला  
 विवित्तु—अदभुत  
 जिर्णय—( वि + प्रा + य ) जाना  
 योग्य  
 जिरल—कम  
 प्रातृ—मुननेवाला  
 ह्याद्य—छुद्य  
 सम—बराबर  
 मूष्टृ—सृष्टिकता

धातुः ।

अभि + पत् ( अभिपतति ) ( भ्वा पर )  
 —रोकना  
 अघ + ईच् ( अघेत्तते ) ( भ्वा प्रा )  
 —निरीक्षण करना  
 उन् + कश्च् ( उतकश्चते ) ( भ्वा  
 प्रा )—उत्सुक होना

नि + ली ( निलीयते ) ( णि प्रा )  
 —हिनना  
 स्त्रिच् ( स्त्रिद्यति ) ( णि पर )—संघ  
 करना ( महत्सौषे व्याय जाता  
 है । )



अथय ।

अतः—अन्त

सुय सुय —किर किर वार वार

मधु—मधु ( यह महेश समान

होयाश वाप जाता है )

रथा—यह शब्द पितृगणोंको प्रान

कारणमें प्रयग किया जाता

है और चतुर्गोत्र वाप

आता है ।

पाठ १८ ।

इ, उ तथा अकारान्त नपुंसक शब्द ।

यागु यन्न रोग मूषयति—पीना मुह रोगको मथित करता है ।

इनुयशाना तानु स्थानम्—इ अयग, य् और श् का तातु स्थान है ।

भमरा मधुने शुभ्यन्—ममर गच्छमे लिय लुष्य हुष ।

वाताश्रुणि मुञ्चति तपनाभ्याम्—लड़का वाताभि आंमू लीड़ता है ।

समुत्ते वारोणा निधि —समुत्त लताका निधि ( खजाना ) है ।

श्रीषध प्रापेत् अन्वाद् एव ( प्रापणाभ्याद्देव ) स्वाद्दु दित च तं  
 हुषम सत्तु—अपध प्राप वंमया होता है । स्वाद्दु तथा इतकारो  
 श्रीषध निष्पद्ये हुषम है ।

इस पाठमें इकारान्त, उकारान्त, तथा अकारान्त नपुंसक शब्दोंमें इद  
 न्दिये गये हैं । ये इस प्रकार हैं —

वारि—न ।

मधु—न ।

ए व । द्वि व । य य ।

ए व द्वि व य व

प्र० वारि वारिणी वारिणि

मधु मधुनी मधुनि

द्वि० ” ” ”

” ” ”

त वारिणा वारिभ्याम् वारिभि

मधुना मधुभ्याम् मधुभिः

घ	वारिणे	वारिण्याम्	वारिभ्य	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्य
फ	वारिण	"	"	मधुन	"	"
ष	"	वारिणो	वारिणाम्	मधुन	मधुनो	मधुनाम्
स	वारिणि	,	वारिण्यु	मधुनि	"	मधुणु
म	वारि वरि	वारिणी	वारिणि	मधु	मधु	मधुनी

लघु - १ ।

कर्त् - न ।

	इ व	द्वि व	व व	ए व ।	द्वि व ।	उ व ।
म	लघु	लघुनी	लघूनि	कर्त्	कर्त्नी	कर्त्नि
द्वि	,	,	,	,	"	"
वृ	लघुना	लघुभ्याम्	लघुभि	कर्त्ता कर्त्ता	उत्तभ्याम्	कर्त्भि
च	लघुन लघवे	"	लघुभ्य	कर्त्ते कर्त्ते	"	कर्त्भ्य
प	लघुन लघो	"	,	कर्त्ते ऋत्तु	,	"
ष	"	लघुनी - लघुनाम्		"	कर्त्नी - कर्त्ताम्	
		लघ्वो			कर्त्ता	
स	लघुनि लघो	"	लघुष	कर्त्ति कर्त्ति	"	कर्त्तु
म	लघो लघु	लघुनी	लघूनि	कर्त् कर्त्	कर्त्नी	कर्त्ति

ऊपर लिये हुए सर्वोच्चि यष्ट मालम होगा कि इ, उ, तथा ऋकारान्त शब्दोंके नपुंसक लिङ्गके प्रथमा, सन्बोधन, तथा द्वितीयामें प्रत्ययोंका लक्षण जो जाता है, तृतीयामें लेकर सब स्वरान्ति विभक्तियोंमें न् लगता है, श्रीर सन्बोधनके एकत्रवनमें श्रान्तिम स्वरको विकल्पसे गुण होता है ।

गुरु शब्दके स्त्रीलिङ्गको प्रकृति गुरु वा गूर्त्तौ है श्रीर लघुन स्त्री में लघु वा लघ्वो होता है ।—

१ । उकारान्त विशेषणके स्त्रीलिङ्गके रूप विकल्पमें ईं के जोड़नेकी प्रवृत्ति है ।

गुरु—स्त्री, लघु—स्त्री, इत्यादि शब्दोंके रूप धनुषके समान होते हैं, श्रीर गूर्त्तौ लघ्वो इत्यादिकी मन्त्रोंके समान होते हैं ।

एतत्तया कृष्णं च रूपं दद्यात् । इ, उ, तथा वाकारानामनु विर्जय  
 लब्ध्वा इव इ, उ तथा शृकारान्त मन्त्राणां चिन्ता समान एव है, परन्तु  
 उ, उ म य तथा मन्त्राणां चिन्ता उच्यते, और य तथा मन्त्राणां चि  
 यवचनं, इ, उ तथा मन्त्राणां पुनरुक्तौ समान भी एव होते हैं ।

अन मदीपाल तय प्रमेण ।

त्रिभुवतां देव ।

राक्षि भक्षि ।

काय तय प्रपावन तु सुर्वय ।

प्रियाया मधु अर्पित निश्रयार्तं धृष्टीतोऽभ्यन्नाययत् ।

यज्जुता त्रिभुवनेन पयस पदा मे मानस एरति ।

विन्तायाः सम मानात् किञ्चि ० च्छुःपयितुं प्रियते ।

अयि प्रकृतिमापद्यते च मन्त्रौ ।

अथमपरो । गण्डस्योपरि स्फोट ।

शुचि मना यद्यन्ति तीर्थेन किम ।

मधु तिष्ठति त्रिष्टायं दृश्ये तु हलादाम् ।

अथवा मधु वरा त्रिभुवु मुहुनेयारभने प्रजान्तक ।

गुणाङ्गनाया परम त्रिभुवणम् ।

दीनो वा राजहीनो वा यो मे भता मे मे मुहः ।

मे नियमनुरन्तास्ति यथा मय मुपचला ॥

\* । तत् + शिव = तत् + शिव = तस्मिन् वा तस्मिन् तत् + श्रीक — तत् +  
 श्रीक — तत् श्रीक वा तस्मिन् परन्तु तत् + उच्यते — वाक्यार्थतः — जव श् बन्ध  
 प्रथम चार वर्णानि किञ्चि वा उच्यते है श्रीक, उच्यते वात फाई मर अनुनासिक वा  
 अन्तःस्थ ब्रह्मा है ता उच्यते है हीता है । वाक्यार्थतः मे यह नियम नहीं लगता ।  
 क्योंकि शकं वात च है श्रीक मर न अनुनासिक, और न अन्तःस्थ है ।

† । एक = खरि दसरा = खर ।

दक्षिणे लक्ष्मणे यद्य एते च जनकात्मना ।  
 पुरतो मारुतिवद्य त दग्ने रघुनन्दनम् ॥  
 उद्यमेन हि सिधति हायाणि न मनोरथै ।  
 न हि सुप्तस्य विदस्य प्रविशन्ति मुत्से मता ॥

रगति (रघुति म्ना) श्रुतिसे (श्रुति म्नी) श्रयका अनुभरण करती है ।  
 उसन भूमिपर स्वगता मुख अनुभव क्रिया ।  
 शिष्योन्नी चादिपे क्रिय गुरुकी श्रान्ता मान ।  
 गङ्गाका अठ सफे है, और यमुनाका काला ।  
 वाह ! चन्द्रिकाकी सुन्दरता !  
 यदि मन शून्य है तो तपका क्या काम ?  
 वाह ! मे धन्य हूँ । यह होशमें आ रहा है ।

सत्ताञ्जल ।

श्रद्धना ( स्त्री ) - स्त्री  
 श्रु ( ण ) - श्रासू  
 श्रागमन ( श्रागमनम् ) ण - श्राग  
 उद्यम ( उद्यम ) पु - उद्योग  
 काय ( कार्यम् ) न - काम  
 गण्ड ( गण्ड ) पु - एक राग  
 चिन्ता ( त्र्यो ) - चिन्ता  
 जनकात्मजा ( तत्पु, जनक-पु०, +  
 आत्मजा - ( स्त्री )  
 जनककी कन्या, सीता

अल्पित ( अल्पितम् ) न ( जम्प  
 + त ) - अल्पित बोलना  
 विद्या ( विद्यायम् ) न तत्पु०,  
 विद्या - स्त्री + अग्र - न )  
 जिटाका अग्रसारा  
 तालु ( न ) - तालु  
 तीर्थ ( तीर्थम् ) न पठित्नु स्यात्  
 गृणा ( स्त्री ) - लक्ष्मी  
 दक्षिण ( दक्षिणम् ) न - दक्षिण भाग  
 नारायण ( नारायण ) पु - नारायण

० संस्कृतमें बहुवचने भूतकृतम भाववाचक सशर्म प्रथीम क्रिये जात है । इनमें त का अर्थ भाव है ।

तन्धि ( ध )—तन्धाना	त्रयोर्वा—को शान्त्य संज्ञायाः
प्रकृति ( कृते )—प्रकृत्या	शाम
प्रशासन ( प्रशासक ) पु ( तत्पु० )	शीत ( शीत ) पु —शीत
प्रशास्यो + क्तलक्षणे ( कृते )—	श्याम ( श्याम ) म —श्याम
प्रशासिका भाग्ये, प्रस	श्याम ( श्याम ) म —श्याम भाग्ये
प्रशासन ( प्रशासक ) न प्रयत्न	शारि ( श )—शारि
प्रिया ( प्रीति )—प्रिया ( प्रीति )	शिकृति ( शिकृति ) म
प्रयत्नो ( प्रयत्न प्रयत्ना का स्त्री )—	( शि + कृ + त )—शिकृति
भुम्भ ( भुम्भ ) पु —भुम्भ	शिशुवत् ( शिशुवत् ) न —शिशुवत्,
भुम्भु ( भुम्भु ) पु —भुम्भु	गच्छता
भुम्भारम्भ ( भुम्भारम्भ ) पु —भुम्भारम्भ	शुचि ( शुचि )—शुचि
भुम्भोप- ( भुम्भोप- ) पु —भुम्भोप-	शुभ्र ( शुभ्र ) पु —शुभ्र
रक्षक, राजा	शुभ्रवत् ( शुभ्रवत् )—शुभ्रवत्
मानस ( मानसम् ) म —मानस	शुभ्रवत् ( शुभ्रवत् ) न —शुभ्रवत्
माकृति ( कृते )—माकृति	शुभ्रवत् ( शुभ्रवत् ) न —शुभ्रवत्
माग ( माग ) पु —माग	शुभ्रवत् ( शुभ्रवत् ) न —शुभ्रवत्
मद्युग्मन् ( मद्युग्मन् ) पु ( तत्पु० )	शुभ्रवत् ( शुभ्रवत् ) न —शुभ्रवत्
रद्यु पु रद्युग्मन् नमन् पु	शुभ्रवत् ( शुभ्रवत् ) न —शुभ्रवत्
श्यामन् नमदाता, पत्नी—रद्यु	शुभ्रवत् ( शुभ्रवत् ) न —शुभ्रवत्

विशेषण ।

अनुरक्त ( अनु + रक्त + त )—	शेन—शेन
अनुरक्त ( अनु + रक्त + त )—	शुभ्र—शुभ्र
अपर ( अपर ) कृषा	शाम—शाम
अपराध ( अपराध )—अपराध	शारि—शारि
शुभ्र—शुभ्र	शिकृति—शिकृति
	शिशुवत्—शिशुवत्
	शुचि—शुचि
	शुभ्र—शुभ्र
	शुभ्रवत्—शुभ्रवत्
	शुभ्रवत्—शुभ्रवत्

मउङु—मधुर

मृदु—कामल

लघु—हलका

वल्गु—सुन्दर ✓

सम—तुल्य (यद् द्वितीया वा पठौ  
—सो माय आता है )

सुस ( स्यप् + स )—साया सुश्रा

स्वादु—स्वात्पुक्त

हित—हितकारी

हीन—( हा + त )—छोडा सुश्रा,  
रहित ।

### धातु ।

आ + पठ् ( आपठत ) ( ङि आ )—  
पाना

आ + रभ् ( आरभते ) ( स्वा आ )  
—आरम्भ करना

✓ मुञ्ज् ( मुञ्जति ) ( ङि पर )—छोड़ना

वि + जि ( विजयत ) ( भ्या आ )  
—जैतना, सर्वोत्तम होना

सिध् ( सिधति ) ( ङि पर )—सिद्ध  
होना

मूच् ( मूचयति ) ( चु पर )—सूचना  
करना

### श्रवण ।

✓ श्रवण—डा ( पक्षान्तरे = दूषरे  
पक्षमें )

इच्छ—समृद्ध

आत्वा ( ता + त्वा ) ज्ञानकर

✓ मु—परन्तु ( मे = यताता है )

नित्यम्—सद्यः, प्रतिदिन

निश्चय—( नि + श्च + य ) सुनिश्चय

पुरत—आसने

टिसिपुम् ( टिसि + पुम् )—

भार डालनदी विषे

## पाठ १७ ।

नकारान्त ङङ् ।

अथ कुशली भवान्—आ श्राप प्रसन्न है ?

वाच काम ष ( मा ) निरिक्तम्—काम घातमे अधिक बढ़ा है ।

को ऽपि शशिन फलङ्क मारङ्ग इति शङ्कन्ते—काइ लोग शङ्का करते हैं कि चन्द्रमाका फालङ्क गग है ।

आत्मा एव निरिणापने ।—हे पापतीश प्रति, शिव, तूम ( हमारे ) आत्मा हो ।

आत्मा नन्वे मयमपुण्यतीर्था—आत्मा एक नन्वे है, जिनमें मयम ( क्षत्रियोंका ऋण ) रोगे प्रवित्रु तीव ( तट ) है ।

अदुराणा मूर्धा—बु, ठवग, र, तथा ष का मूर्धा स्थान है ।

तत्र वचन स मर्माणि निकृन्तति—तुम्हारी घात नरं ममाको घाटती है ।

वसन्ति हि प्रेमिण्य गुणा न वस्तु—गुण प्रसमें रहते हैं, वस्तुधा में नहीं ।

स्यमतीय हरितो हरिश्च वसन्त एते वाजिन—मचमुष मे घोड़े भूय तथा इन्द्रको घोड़ोंकी भी लांघ कर ( उनसे बढकर ) है ।

यद्भावि तद्भवति नातु विचारखीयम्—तो दोनहार है बढ होता है, इसमें कुछ विचार करने योग्य नहीं है ।

इस पाठमें नकारान्त ङङ्को रूप णिे गये हैं । वे इस प्रकार हैं —

राजन—णु ।

नामन—न ।

ए थ	द्वि थ	व थ	ए थ	द्वि थ	व थ
प्रे राजा	राजानो	राजान	नाम	नामो—नामनो	नामानि
द्वि राजानम्	॥	राज	॥	॥	॥

तृ	रात्वा	राजभ्याम्	राजभि	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभि
च	रान्	राजभ्याम्	राजभ्य	नाम्न		नामभ्य
प	रान्	,	,	नाम्न	,	,
घ	॥	राज्ञी	राज्ञाम्	,	नाम्नी	नाम्नीभ्य
स	रानि—राजनि	॥	राजम्	नाम्नि नामनि	,	नामसु
ष	रापन्	रापानो	रापान्	नाम नाम्	नाम्नी नामनी	नामानि

श्रीमन्—भ्यो ।

ब्रह्मन्—पु ।

ए	व	द्वि	य	व	य	ए	व ।	द्वि	य ।	व	य ।
घ	श्रीमा	श्रीमानो	श्रीमा	ब्रह्मा	ब्रह्माणो	ब्रह्मा	ब्रह्माणो	ब्रह्मा	ब्रह्माणो	ब्रह्मा	ब्रह्माणो
द्वि	श्रीमान्भ्य	,	श्रीमन्	ब्रह्माण्डम्	,	ब्रह्माण्डम्	,	ब्रह्माण्डम्	,	ब्रह्माण्डम्	
तृ	श्रीमन्	श्रीमभ्याम्	श्रीमभि	ब्रह्मणा	ब्रह्मण्याम्	ब्रह्मणा	ब्रह्मण्याम्	ब्रह्मणा	ब्रह्मण्याम्	ब्रह्मणा	ब्रह्मण्याम्
च	श्रीमन्	,	श्रीमभ्य	ब्रह्मणे	॥	ब्रह्मणे	॥	ब्रह्मणे	॥	ब्रह्मणे	॥
प	श्रीमन्	॥	॥	ब्रह्मण	॥	ब्रह्मण	॥	ब्रह्मण	॥	ब्रह्मण	॥
घ	॥	श्रीमन्तो	श्रीमन्नाम्	,	ब्रह्मणो	ब्रह्मणो	ब्रह्मणो	ब्रह्मणो	ब्रह्मणो	ब्रह्मणो	ब्रह्मणो
स	श्रीमन् श्रीमनि	,	श्रीमसु	ब्रह्मणि	ब्रह्मणो	ब्रह्मणि	ब्रह्मणो	ब्रह्मणि	ब्रह्मणो	ब्रह्मणि	ब्रह्मणो
ष	श्रीमात्	श्रीमातो	श्रीमान	ब्रह्मन्	ब्रह्माणो	ब्रह्मन्	ब्रह्माणो	ब्रह्मन्	ब्रह्माणो	ब्रह्मन्	ब्रह्माणो

यन्त्रन्—पु० ।

शमन्—न० ।

ए	व ।	द्वि	य ।	व	य ।	ए	व	द्वि	य	व	य
घ	यन्त्रा	यन्त्रानो	यन्त्रान	शम	शमोणी	शम	शमोणी	शम	शमोणी	शम	शमोणी
द्वि	यन्त्रान्भ्य	,	यन्त्रानः	॥	॥	॥	॥	॥	॥	॥	॥
तृ	यन्त्राना	यन्त्राभ्याम्	यन्त्राभि	शमया	शमभ्याम्	शमया	शमभ्याम्	शमया	शमभ्याम्	शमया	शमभ्याम्

सूधन्—पु

	ए	व	द्वि	य	व	य
द्वि	सूधान्भ्य		सूधानो		सूध	



शशिनू-पु ।

भाशिनू-न ।

ए	य	द्वि	य	ष	य	ए	य	द्वि	य	य	य
प्र	शशो	शशिना	शशिन	शशिन	भाशि	भाशिनी	भाशोनि				
द्वि	शशिनम्	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
तृ	शशिना	शशिभ्याम्	शशिमि	भाशिना	भाशिभ्याम्	भाशिमि	भाशोनि				
च	शशिभ	"	शशिव्य	भाशिभ	"	भाशिव्य					
च	शशिन	"	"	भाशिन	"	"					
प	"	शशिनोः	शशिनाम्	"	भाशिनो	भाशिनाम्					
भ	शशिमि	"	शशियु	भाशिमि	"	भाशियु					
स	शशिनू	शशिनौ	शाशत	भाशि	भाशिनू	भाशिनी	भाशोनि				

ऊपर दिए हुए शशंश यद्य मालूम पड़ेगा कि प्रत्यय तीन भागों में विभक्त हैं ।

राजा, राजानो, राजान, राजानम् राजानो, सोमा सोमानो, सोमान, सोमानम्, सोमानो, तथा नामानि को मिलाकर देखो । इन सभीमें एकसा परिचयन हुआ है और य अन्यस्वोंसे मिलकुश भिन्न हैं ।

(श) पहिले धराम पुलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्गके पहिले पाच प्रत्यय और नपुंके प्रथमा तथा द्वितीयाके बहुवचनके प्रत्यय आते हैं । इन प्रत्ययोंको सवनामस्थान कहत हैं ।

१। सवनामस्थानके आगे रहनेपर ध्रुवमें समाप्त धातेश्च शब्दोंके उपान्तर श्रको हीन होता है ।

राज, राजा, राजे इत्यादि, तथा नाम्नी को मिलाकर देखो ।

(घ) दूसरे धराम में पुं तथा स्त्री के द्वितीयाके बहुवचनके लेश्च स्वरानि प्रत्यय, तथा नपुंके प्रथमा तथा द्वितीयाके द्विवचनके प्रत्यय आते हैं । इन प्रत्ययोंके आगे रहनेपर सूचको—भ—कहते हैं ।

राज, ब्रह्मण, तथा यन्वन, राज् राजनि, नाम्नी—नामनी—का मिलाकर देखो ।

राज् — इसमें उपात्य अका लोप हुआ है । राजन् + अस् = राज् + न् + अस् = राज् + ज् + अस् = राज् + अस् = राज् । वक्ष्य और यन्त्रन में उपात्य अका लोप नहीं हुआ है । इससे यह नियम निकलता है —

२ । यदि अन्तके अन् को पहिले सकारान्त वा वकारान्त स योग हो तो भके उपात्य अका लोप नहीं होता । यदि उष अन्को पहिले ऐसा स योग न हो तो भके उपात्य अका लोप नित्य होता है, और घसमीके एकवचनमें तथा नपु के प्रथमा और द्वितीयाके द्विवचनमें विकल्पसे लोप होता है ।

राजभ्याम्, राजसु, यज्भ्याम्, यज्सु, नाम, भावि—

( क ) तीसरे धर्गमें पुलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्गके तृतीयाके द्विवचनसे लेकर व्यङ्गनादि प्रत्यय, तथा नपुंसक लिङ्गके प्रथमा तथा द्वितीयाके एकवचनके प्रत्यय आते हैं । इन प्रत्ययोंके पूर्व अङ्गको पद कहत हैं । ऊपर लिखे हुए शब्दोंकी देखनेसे यह मालूम पड़ेगा कि पन्के अन्तके न् का लोप हुआ है ।

३ । राजभ्याम्, राजभि, राजसु, अग्निभ्याम्, अग्निषु, अग्नी, इत्यादि—

अन्त गण्डोंके प्रथमाके एकवचनमें अन्त के न्का लोप होता है और उनके पूर्वके खरको हीछ होता है । पन्के अन्तिम न् का लोप होता है ।

राजपत्र, राजपुंस, मूधध्यानम्—इन समासको देखो । इनके देखनेसे यह मालूम पड़ेगा कि नकारान्त शब्दोंके न्का लोप होता है यदि वे समासके उत्तरपद न हों ।

राजन्का स्त्री रूप राज्ञी, और भाविन् का भाविनी है । इस प्रकार नकारान्त शब्दोंका स्त्रीलिङ्ग ह के जोड़ने से जाता है । जिस अङ्गको यह प्रत्यय लगाया जाता है, वह भ अङ्ग कहता है ।

- १ राम इति गुरु सति ।  
 दुःखारं गन्तव्यामाह्वयति ।  
 तदापि कथयति न मत्तामसु ।  
 व्यापमान भय । अथवा अत्रार्थतः यत्र प्रविष्टः ।  
 दुःखारं नाम आरम्भे मत्तां महाधार्मि सिद्धम् ।  
 पुरुषार्थिना सुयमनसः ।  
 प्रियवित्तं कथं यथा वा गताः ।  
 अथवा सन्धिनं यथा प्रान्तामा धारिता यथा ।
- २ किमिदं हि मधुराणां वरुण नानुमीनाम ।  
 इत्यामी न मर्षिषु कृति यानु धारयिषु मो विम ।  
 अर्थाय धर्मं सा न मत्तां किमि सुधि कथयन्ताम य ।  
 नैवमिती सुधियं लघुदम विद्या ।  
 सुधि विनित्तं अरुणयतामनाम ।

- अमति आरम्भेणात्कं धर्मं च यथा मनः ।  
 सुमनासा मत्तां नाम प्रकल्पे वैश्वरूपम् ॥
- ३ मूनां वा मत्तुपुत्रा वा या या को या भगव्यहम् ।  
 मत्तायत्तं कुते सत्तम मत्तायत्तं मु पोद्वयम् ।  
 कोऽतिभारं समाधानं किं दूरं व्यथयामिनाम् ।  
 को विमिश्रं सविद्यानां क्व परं प्रियवित्तनाम ॥  
 मत्ता यम्यं वृष्टं नास्ति भावो वाप्रियवित्तान्मो ।  
 अरुणं तमं शक्तव्यं यथास्थं तया वृद्धम् ॥

१ । यह राम की उक्ति है । क्योंकि उमरं यत्र गन्तव्यं सद्यः

२ । यत्र संशय प्रविष्टित जाता है किन्ति—कौन्सी वस्तु ।

३ । यह अर्थनामात्कं इति अर्थही उक्ति है । या वा को वा—यां वा किन्ती  
 भाष्यका ।

का यह प्रसन्न पजत है । ( 'श्रुति' का प्रयोग करा )

श्रुति लोग हिमालयकी चोटापर रहते हैं ।

तुमको सखड़ा सख झोलना चाहिए । सत्यमागसे कभी न झठो (घल)

ना लोग श्रुती तरह ( साधु ) काम नहीं करते, हु छो हात है ।

उपन बहुत हु छ सहे ।

यदिमान् लोगोंको कुछ कठिन नहीं है ।

मे चाहे जो हूँ, दरिद्र वा नीच, गुण हमारा बल है ।

( 'य' वा को 'य' का प्रयोग करो )

हम लीग उसका प्रयास कर, वध तुम्हारा गुरु है श्रीर हमारा भी ।

### मञ्जागद ।

अतिभार (अतिभार) पु — बड़ा बोझ	श्रैव ( ईश्वम् ) न — भाव्य
अथ ( अथ ) पु — उक्त	नामन् ( न ) — नाम
— अथताडन (अथताडनम्) न — पीटना	पौष्य ( पौष्यम् ) न — बल
आकृति ( स्त्री ) — गुणरता	प्रेमन् ( पु न ) — प्रेम
आत्मन ( पु ) — आत्मा	त्रहान ( पु ) ब्रह्मा, ( न ) परब्रह्म
— कपालनामन् ( न तन्पु० कपाल —	मण्डन ( मण्डनम् ) न — भक्षण
पु खीपड़ी, नामन् — न माला)	ममेन ( न ) — मम
— खीपड़ीकी माला ।	मूर्धन् — ( पु ) — मिर
कामन ( न ) — काम ।	यत्न ( पु ) — यत्न करनेवाला
कलङ्क ( कलङ्क ) पु दाग, धब्बा	राजन ( पु ) — राजा
गिरिजा ( स्त्री ) — पायती	यसन ( न ) — १ कवच, २ सन्तियों
चक्रवर्तिन ( पु ) — साधुभौम	ये नामको श्राते श्राता है
घरण ( घरण ) पु — घेर	यक्षु ( न ) — यक्षु
लम्बन् ( न ) — लम्ब	यात्रिन ( पु ) — घोड़ा
तात ( तात ) पु पिता	विश्व ( विश्वम् ) प — परद्वय

दंश ( दश ) पु — दंश	धीमन ( धी ) — धीमा
शमन ( न ) द्रव्यस्थिति नामके	सूत ( सूत ) पु — शारणि
आम आता है	स्थिति ( स्त्री ) — द्रव्यस्था
गगिन् ( पु ) — चन्द्र	स्वामिन ( पु ) — प्रभु
शूट ( शूट ) पु — शूट	हरि ( पु ) १ दृष्टका घोड़ा ,
सयम ( सयम ) पु — इन्द्रियोंका जय	२ विष्णु
सारङ्ग ( सारङ्ग ) पु — हरिण	हरित ( प ) — धूम्रका घोड़ा

## विशेषण ।

शून्य — शून्य	शान्विन् — शान्विमें परिच्छिन्न
अतिरिक्त ( अति + रिक्त + त ) —	गुप्तसात्मक ( गुप्त = गुप्त - व्या
— अधिक	पर [ गोपायति ] + त =
अप्रियवाग्नि ( स्त्री अप्रियवाग्निनी )	रक्षित, दास — पु नौकर, आ
— ककश बोलनवाला	त्मन प आत्मा, क एक प्रत्यय
अशुचि — अपवित्र	है जो बहु० समासके अंतमें
आयत्त — अधीन	रामाया जाता है ) गुप्त और
आयुमेत — चिरजीवी	नासत्त्व
इन्द्रशमन् — पु ( बहु०, इन्द्र पु —	दुरात्मन् ( बहु० ) — दुष्ट
इन्द्र, शमन् — न मुख, पद	दूर — दूर
ब्राह्मणोंके नामके आगे	धारिन् — जो धनुश्रीको धारण कर
समाया जाता है ) — इन्द्र नाम	सकता है
का ब्राह्मण	नैसर्गिक ( स्त्री नैसर्गिकी ) —
कुशलिन — सुखी	स्वाभाविक
चतुर्भ्रमन् — पु ( बहु०, चतु — पु	पक्षपातिन् — पक्षपाती
चतुर्थ लभन् — न लभ )	पर ( सत्रना ) — दूररा
चतुर्थसे उत्पन्न	पुण्य — पवित्र

प्रपञ्च—(प्र + श्च + त) —  
 प्रपञ्च किये गया  
 प्रियवान्नि—प्रिय बोलनेवाला  
 भाविन्—दानदार  
 भूत—पत्न्य ✓  
 वर—श्रेष्ठ  
 विचारणीय—विचार करन योग्य  
 त्रिभु—त्र्यापन्न, सबव्यापी  
 विषयिन्—विषयी

कवसायिन्—उद्योगी  
 समथ—शक्तिमान  
 सवित्र ( बहु०, स—सह—साथ,  
 विश्वा ज्ञान )—परिच्छिन्न  
 सहाध्यायिन्—साथ पढ़नेवाला  
 सिद्ध ( सिद्ध + त, स्तुौ सिद्धा )—  
 सिद्ध, निश्चित, प्रमाणित  
 सुरभि—सुगन्ध

धातु ।

आ + ह् ( आह्वयति ) (स्वा पर )  
 - पकारमा  
 नि + कृत् [ कृन्त ] ( निष्कृन्तति )  
 (सु पर )—काटग

पा (पाति) (श्र पर)—रक्षक करना  
 ऋ (ऋते) (स्वा आ)—ऋणा  
 वा सन्देश करना

अव्यय ।

✓ अतीत्य ( प्रति + इ + य )—लाघ  
 कर, पार कर  
 ✓ इय—सर्व ( सम्मानना दिखता है )  
 ✓ तथा—औसा  
 ✓ नु—सम्पन्न दिखता है

यथा—उत्त  
 यन्—यन्, अगार  
 सत्यम्—सच  
 सत्रया—सत्र प्रकारसे

## पाठ २० ।

कर्मान् प्रयोगश्च भाषे प्रयोगः ।

देवदत्तः पलायनं निर्यात्—अस्य दत्तः पलायनं निर्यात् ॥

देवदत्तेन पलायनं निर्यात्—अस्य दत्तः पलायनं निर्यात् ॥

भद्र ! गच्छाम्यधुना—१० । अथ ये ज्ञाना कृ

भद्र ! गच्छाम्यधुना मया—भद्र ! अथ ये ज्ञाना कृ

यस्य ! इत्यागच्छाम्य उ न च ) पवित्रं - प्रियं च तत्र, यदा द्याया,  
द्यायनया वेत्ते ।

यस्य ! इत्यागच्छाम्यताम् आ ( मा ) धन उ ( न च ) पवित्रयता  
स्त्रया । प्रियं च तत्र ! मया यदा द्याया जाय, आगच्छाम्य वेत्ते द्याय ।

नृपा पण्डिते मह भाषन्ते—राजा नृप पण्डित,के प्राय वेत्तते ॥

नृपं पण्डिते मह भाषन्ते—राजाश्रीध पण्डितान् प्राय वेत्तते  
जाता ॥

बुधास्तस्मै बोधन्त—पण्डितान् तस्य ज्ञाना ।

बुधैस्तस्मै बोधन्त—पण्डितान् तस्य ज्ञाना मया ।

मञ्जना न कशप्यस्य वदन्ति—माधु जात कर्मो भद्र नही धारत ।

मञ्जनैः कशप्यस्य मुद्यते—माधु त मासे कर्मो भद्र नही धारता  
जाता ।

गण्ठी तिष्ठतु भवतु—आप चतु वेत्त ।

गण्ठी स्थीयता भवता—आपसे चतु वेत्त जाय ।

वनदेवता नवाशः क्रीति गायन्ति—वनध्वजताय राजाश्रीका यज्ञ  
जाती ॥

वनदेवताभिः नवाशः क्रीतिगीयते—वन धताश्रीके राजाश्रीका यज्ञ  
जाया जाता ॥

विजयता भवात्—आप जीत ।

विजीयतां भवता—आपसे जीता जाय ।

राज्ञां यश स्तूयताम्—राजाओंके यशकी स्तुति की जाय ।

यज्ञयता इ ( त ) पाते तासश्च क्रियते मया—जो आपसे चाहा जाता है वह सब सुझाये किया जाता है ।

तद्वि ( तत् + वि ) यामतीन्द्रमणीयम्—मन्त्रमुच वह जगल बहुत सुन्दर है ।

॥ हम पाठमें कर्मणि प्रथम तथा भागे प्रयोगका वर्णन किया गया है । कर्तरि प्रयोगमें धातुके रूप ही कर्ताका बोध कराते है, कर्ताके आगे तृतीया लोडकर कर्ताकी पुनर्क्ति परनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती । इस लिये कर्ता प्रथमान्त रहता है । कर्मणि प्रयोगमें धातुके रूप ही कर्म का बोध कराते है । कर्मके आगे द्वितीया लोडकर कर्म बतानेकी आवश्यकता नहीं रहती, इस लिये कर्म प्रथमान्त रहता है । उक्तद्वितीय पुस्तक लिखाते—में लिखात कर्मणि है अर्थात् कर्मका बोध कराता है । इसलिये कर्म पुस्तक प्रथममें प्रथम किया गया । 'लिखात' से कर्ताका बोध नहीं होता इस लिये कर्ता द्वितीया तृतीयामें प्रयोग किया गया है । ऐवन्त पुस्तक लिखाते—में कर्म अनभिहित है, अर्थात् लिखाते इस रूपमें इसका बोध नहीं जाता, जो कर्तरि है, इसलिये 'पुस्तक' का द्वितीया में प्रयोग हुआ ।

अकर्मक धातुओंका कर्मणि प्रयोग होता है, क्योंकि उनको कर्म होता है, अकर्मक धातुओंका कर्मणि प्रयोग नहीं होता, क्योंकि उनको कर्म नहीं होता । परन्तु उनका भागे प्रयोग होता है अर्थात् इसमें धातुका रूप क्रियाका बोध कराता है । ऐसे तिष्ठामि—कर्तरि प्रयोग है, ऐसे खीयते मया—भागे प्रयोग है । अकर्मक तथा अकर्मक धातुओंका कर्तरि प्रयोग होता है । भागे प्रयोग प्राय कथन प्रथम पुस्तकके एक अचनेमें प्रयोग किया जाता है । //



ना कम णि प्रयोगके रूप ।

यतमान, लट् ।

अनद्यतन भूत, लट् ।

	ए	छ	द्वि	व	य	व	ए	छ	द्वि	य	व
प्र	प	नीयत	नीयो	नीयन्त	अनीयत	अनीयेताम्	अनीयन्त				
म	पु	नीयसे	नीयथ	नीयध्व	अनीयथा	अनीयेथाम्	अनीयध्वम्				
उ	पु	नीये	नीयाद्दृष्टे	नीयामद्दृष्टे	अनीये	अनीयाद्दृष्टि	अनीयामद्दृष्टि				

आज्ञाथ—लोट् ।

विधर्म—लिट् ।

	ए	छ	द्वि	व	य	व	ए	छ	द्वि	उ	य	व
प्र	पु	नीयताम्	नीयताम्	नीयन्ताम्	नीयत	नीयताताम्	नीयेरम्					
म	पु	नीयस्य	नीयेषाम्	नीयध्वम्	नीयेषा	नीयेषाथाम्	नीयेध्वम्					
उ	पु	नीये	नीयाद्दृष्टे	नीयामद्दृष्टे	नीयेष	नीयेषद्दृष्टि	नीयेमद्दृष्टि					

नि—उत्तमान ।

शु—आज्ञा ।

	ए	छ	द्वि	व	य	व	ए	छ	द्वि	व	य	व
प्र	पु	जीयते	जीयेत	जीयन्ते	शूयताम्	शूयेताम्	शूयन्ताम्					

कम णि तथा भावे प्रयोगके रूप धातुको य समाकर उसके आगे आत्मने प् प्रत्यय जोड़नेसे बनते हैं । य जो पूर्व कोई विकरण नहीं लगता ।

कम णि तथा भावे प्रयोगके यके पीछे अधोलिखित परिवर्तन होते हैं —

जीयते, शूयते—

१ । अन्तिम इ तथा उ को दीर्घ होता है ।

जीयते, दीयते, पीयो—

२ । कुछ आकारान्त धातुओंके आगे ई होता है उ धातु ये हैं—  
खा, दा, धा, भा, गै, घा ( पीना ), द्वा ( होटना ), तथा धा ।

गै—गौघते, सो—सौघते—

३। ए, ऐ, ओ, तथा औकारान्त धातुओंको आकारान्त सम्भन्ग चाहिये ।

कु—कृ—क्रियते, छियते—

४। कृकारान्त धातुओंके अ को रि होता है ।

यञ्—यज्यते, वच्—वच्यते, वञ्—वज्यते, प्रष्ट्—प्रष्टरते, छि—छि—  
छियते, छि=छि व् ए=छि उ ए=छि उ=छु=छू ( व्को उ हुआ,  
अगिम स्वरका लोप हुआ और प्रथम नियमानुसार उओ दीर्घ हुआ ) ।

५। कुङ्क धातुओंके य्, व्, र्, तथा एकी इ उ, ऋ, तथा लृ होते हैं इनको सम्भन्गण कहते हैं ।

६। वङ्—व अङ्—उङ्—सम्भन्गणके आगे रहनवाले स्वरका लोप होता है ।

७। शञ्—शस्यते—कुङ्क धातुओंके अनुनासिकका लोप होता है, पर वञ्का वञ्चते होता है ।

श्रयते, क्षयते—

८। श्रु धातुकी तथा सयोगके अन्तमें रहनवाले श्रुकी रुच्य होता है ।

तीघते, कीघते, पूर्यते—

९। लज्ज श्रुकी गूण या वृद्धि नहीं होती और वह ओष्ठगुणानीय वणके वाञ् होता है तो वषका इर् तथा उर् होता है । किसी व्यञ्जनके आगे रहने पर इर् तथा उर् को उका दीर्घ होता है ।

चुर—चौर्यते, तड—तड्यते—

१०। चुरागणके धातुओंमें त्रिकरणके पहिले होनेवाले गुण या वृद्धि आदेश व्योकी ली रहत है ।

कारयति=व्यट कारता है, कार्यते=वससे करया जाता है ।

११। प्रेरणापक इतामन् विधे धातुओंके आगे अथ तगाया जाता

है । अर्थात् गणना धाराश्रीमत् रूप के बहिर्गत जा परिष्कृत हीत है कि यह प्रेरणाशक्ति भी हीत है ।

मूल धाराश्रीमत् समान प्रेरणाशक्ति भी मध्य स्तर पर हीत है ।

प्रेरणाशक्तियों के मूल प्रयोग तथा भाव प्रयोगों पर पुनः मूल के कमलि तथा भाव प्रयोगों पर हीत समान हीत है ।

१२ । धारक + हरि = धारहरि या धारहरि, तद् + हितम् = तद् हितम् या तद् हितम् - यद् ह्ये पूज्ये धारके प्रथम चार वर्णों में ही, तो उसकी उम्र धारका अन्तर्गत हीत हीत हीत है ।

इत्यरथ भूषण ।

शिव भूषणो शिवाय ।

भो ! भयम् ! किमिति त्रयमाश्रये ।

तन राणा कारतुमेध आरम्भत ।

यद् हि सवत्सु गुणैर्निधीयत ।

तद्व्याप्य शोकानुवृत्तम् ।

सूय रय मतिस्त्वपति प्रतिभयते ।

यत्न सत्य ! सतिद्वयामला य ।

मेनःपतिराकृष्यत राणा ।

न रक्षमस्यिष्यति सत्यत हि तद् ।

कुमार ! तथा प्रथमरा यथा नीलाश्रयसे मित्रैर्नालियसे विषय

न त्रिकुण्डले रामस्य नापश्यसे सुखे ।

धिषणे यावत्तुकोऽपि रिपुस्तावन्तुत सुखम् ।

सा वाता परजतोति से जित्तम् ।

आपुष्पात् ३.४ भाग्यति वाक्पा विप्रोऽभिजाते ।

पारथ प्रकृति शरीरस्य विप्रतिर्नोदितमुक्तां दुषे ।

स पृथुस्तौन कस्तत्र भी क्षुत्प्रागमनऽनु क ।  
 मशोक इव कस्मात् एव दमना इव तस्यमे ॥  
 किं पुष्पे किं फलेसाद्य करीरस्य हुमात्मन ।  
 येन वृद्धि समामाश न कृत पश्यग्रह ॥  
 प्रत्यह सपसायाति प्रत्यह जायते पुन ।  
 अत्रापि एतदशया नास्तोऽस्या मधमत्त ॥  
 काम क्रोध माह लोभ यक्षात्मान भावय कोऽहम् ।  
 आत्मलान्त्रिहीना मृदास्त पचन्त नरकनिगूढा ॥



उम अधिकारिकी (अधिकारिन्) मज्जाश्रीम स्तुति की जाती है ।  
 देखो, पेड़ लताश्रीमे घेर जाती है ( परिधु ) ।  
 हम लोग प्रतिदिन हु प्योमे जलाये जाते हैं ।  
 लड़कोंसे पिता तय माताकी सेवा की जाती चाहिये ।  
 पृथ्वी ब्रह्मासे उत्पन्न की गयी है ।  
 अन्न भी आप सप की नहीं होत ?  
 लघतक एक भी राग है, लघतक शरीरकी मुख नहीं ।  
 मैं जानता हू ( अत्र + गम् ) कि गोक उससे अभीतक छोड़ा  
 गयी गया है ।

कलाशब्द

- ✓ अभिधान ( अभिधानम् ) न — ✓ काम ( काम ) पु — हृष्ट्या
- प्रथम करना ✓ मत्तु ( पु ) — यत्त
- ✓ अल्प ( अल्पम् ) न — अल्प [यत्त, सय ( सय ) पु — गत्र
- अल्पमेध ( अल्पमेधा ) पु — अल्पमेध, लौघित ( लौघितम् ) न — लौघन
- ✓ आगमन ( आगमनम् ) न — आना ✓ तुप ( न ) — लाह
- ✓ करीर ( करीर ) पु — एक काटेदार पत्र ( पत्रम् ) न — स्यात्
- देड, त्रिषमे पत्ते गयी ह त प्रकृति ( म्नी ) — स्नाभात् क

मस्य ( मस्य ) न — मस्य

मोह ( मोह ) ष — मोहा

रत्र ( रत्र ) षु — रत्र

सग ( सग ) षु — सग

सिद ( सिद ) षु — सिद

सत्र ( सत्र ) षु — सत्र

समस्यता ( स्यात् सत्यं, समस्य +  
स्यता — स्त्री ) — समस्यता

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि  
सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्ध ( सिद्ध ) षु — सिद्ध

सक ( सक ) षु — सक

सक्य ( सक्य ) षु — सक्य

सुखम सुखं, सुख्य विकारि मना सक्य  
— सक्य

सकनिसूद ( सकन—षु + निगुह  
नि + ऋगुह [ गृहति त ] + त =  
सक्य ( सक्य ) सकनिसूद  
सक्य

सक्य ( सक्य ) षु — सक्य

सक्य ( सक्य ) षु — सक्य

सक्य ( सक्य ) षु — सक्य

सिद्ध ( सिद्ध ) षु — सिद्ध

( स, रथ, सत्य, इत्य, सग्य )

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

सिद्धि ( सिद्धि ) षु — सिद्धि

० सुख ( सुख ) षु — सुख

धातु ।

अनु + ह्य ( अभ्यिष्यति ) ( ङि पर )	पच् ( पचति—ते ) ( भ्वा लभ )
—गोचना	—एकाना
अव + हृ ( अवहरति ) ( भ्वा पर )	परि + वृ ( कम प्र परिव्रियते )—
—ले जाना	घररा
आ + क्षिप ( आक्षिपति ) ( गु पर )	प्रति + वस्य् ( कम प्र प्रतिवध्यत )
—क्रीनना	—गोक्षा
आ + या ( आयाति—अ पर )—आना	प्र + यत् ( प्रयतत ) ( भ्वा आ )—
आस ( कम शि प्र आस्यते ) बैठना	यत्र करना
आ + हृ ( आहृषति—भ्वा पर )	भात्रय ( प्रेर भू )—सोचना
—पुकारना	उत्साह ( मृषति, मृषयत ) ( ङि पर ,
उप + आ + लम् ( उपात्तभते )	बु आ )—घोचना
( भ्वा पर )—निष्ठा करना	लच् ( लु पर )—लखना
कृ ( कम प्र क्रियते )—करना	वच ( कम प्र वच्यते )—बोलना
गै ( मापति ) ( भ्वा पर )—गाना	वि + कृष ( विक्रषति ) ( भ्वा पर )
जन् ( जायत ) ( ङि आ )—उत्पन्न	—खींचना
घोता	+ स + हृ ( सहरति ) ( भ्वा पर )—
धृ ( धियत ) ( ङि आ )—जीना	वटोना
नि + धा ( कम प्र निधीयते )—रखना	क्षु ( कम प्र क्षुषा )—क्षुति करना

शक्य ।

किमिनि—को ?	प्रत्यहसु ( शक्य प्रति + अहत् न ङि )—प्रतिङ्गि समासाद्य ( प्रेर हसु + आ + अ + य )—पाकर
लोपसु—बुप	
दूष्णीसु—बुप	

## पाठ २१ ।

वत्तमान कृत ।

हरि पश्यन् मुष्मते—हरिको देखता हुआ मुक्त होता है ।

अथवा प्रतीक्षमाणी वत्ता—यह समयकी प्रतीक्षा कर रहा है, बाट चोट रहा है ।

नन्वा पश्यन् इव वत्ता पश्यती रोचस्य—रोचसको पश्यते २ नन्व वशीय पशुश्रीं तद्व भाटे गये । ( पश्यता राजस्य—अनादरपठी है । )

श्विणु गच्छन्तु मा कान्तिमपुष्यन्—श्वो २ श्विन वीतने समे यह कान्तिको घटाए लगी ( श्विणु गच्छन्तु—सतिमसमी है ) ।

पत्ता विद्यमाने ग्रामे रतपरीक्षा—नगरको रक्षणपर ग्राह्य रतकी परीक्षा ( पत्तने शिद्यमान—सतिमसमी है ) ।

वत्ता दधी घत्वीणा पयुष्पास्यमाना तियुति—यह रानी श्वो मखियति मखित होती हुई बैठती है ।

अभ्युपमिच्छद्भिश्चम सज्जया उव्य—उन्नति चाहनवालोको सज प्रकारसे उद्योगका सेवन करना चाहिये ।

चिन्तय त्वयि यस्तु नाथ कारणमशगन्धमि—साचती हुई भी मैं इसका कारण नहीं समझती ।

परमोपशौ धातुश्रिका वत्तमान कृत स्व इव प्रकार बरता है —

श्वानि—श्व—भवत्, श्व + अ = भो + अ = भय भय + त = भवत्, श्वानि—पुष—पुष्यत्, पुष + य = पुष्य पुष्य + त = पुष्यत्, श्वानि—विश—विशत्, विश + अ = विश्व विश + त = विश्वत्, चुरानि—चुर—चोरयत्, चुर + अय = चोर + अय = चोरय, चारथ + त = चोरयत्

अदि-अस-सत, अस + अत = स ( वतमानके म पु फे व वकी प्रकृति ) + अत = सत, अदि-या-यात्, या + अत् = या ( वतमानके म पु व वकी प्रकृति ) + अत् = यात् ।

धातुका विकरण लगाया यदि प्रकृति अकारान्त ही तो त लगाओ, और यदि वह अकारान्त न ही तो वतमानके घणमपुण्यके बहुवचनकी जो प्रकृति होती है उसे अत् लगाओ ।

आत्मन्यै धातुओंके वतमान कृन्तके रूप इस प्रकार बनते हैं —  
 आदि-वत-वतमान, वत + अ = वत् + अ = वत, वत + मान = वतमान, आदि-सेव-सेवमान, सेव + अ = सेव, सेव + मान = सेवमान, आदि-विद्य-विद्यमान, विद् + य = विद्य, विद्य + मान = विद्यमान, अदि-प्रिय-प्रियमात्, प्रि + अ = प्रिय + अ = प्रिय, प्रिय + मान = प्रियमात्, अदि-आमन्-आमन्नुयमात्, आमन् + अय = आमन्नुय, आमन्नुय + मान = आमन्नुयमात् ।

वतमान यह शब्द स्वयं वतमान कृन्त है और यह वह विधाता है कि अत् इत्यादि धातुओंके वतमान कृन्त किस प्रकार बनाये जाते हैं ।

धातुकी विकरण लगाया । यदि प्रकृति अकारान्त ही तो मान लगाओ, और यदि वह अकारान्त न ही तो वतमानके म पु फे व वकी प्रकृति रक्षणी है उसे आन लगाओ । आनके उदाहरण आये आयेने । ( २५ वा पाठ कमलि वत० कृ० देखो । )

भू-भूपमान	चु-चोयमात्
कु-कियमात्	तड-ताडमान ।
पुष-पुष्यमात्	शु ( शेर )-कायमात्

कमलि तथा भावे प्रयोगके वतमान कृन्त कमलि तथा भावे प्रयोगके प्रकृतिको मान लगानेसे बनते हैं ।



गच्छत्—पु ।

गच्छत्—७

ए	द्वि	व	उ	घ	ए	द्वि	उ	व
प्र	गच्छत्	गच्छन्ती	गच्छत्	गच्छत्	गच्छन्ती	गच्छन्ती	गच्छन्ती	गच्छन्ती
द्वि	गच्छन्ति	,	गच्छन्ति	,	,	,	,	,
उ	गच्छता	गच्छन्त्याम्	गच्छन्ति	गच्छन्ति	गच्छन्ती	गच्छन्ती	गच्छन्ती	गच्छन्ती
घ	गच्छत	,	गच्छन्ति	,	,	,	,	,
प	गच्छत	"	,	,	,	,	,	,
उ	"	गच्छन्ती	गच्छन्ती	गच्छन्ती	गच्छन्ती	गच्छन्ती	गच्छन्ती	गच्छन्ती
घ	गच्छन्ति	,	गच्छन्ति	,	,	,	,	,
उ	गच्छन्ति	गच्छन्ती	गच्छन्ती	गच्छन्ती	गच्छन्ती	गच्छन्ती	गच्छन्ती	गच्छन्ती

य एव भवतु वा वत् में समाप्त दानशाला प्रयोगोंके समान होते हैं ।  
 मन्त्र पुत्रिणके प्रथमांशे एकत्रचनमें भेद है । उसपर ध्यान नो ।

भ्यान्ति गच्छन्ती—स्त्री—गच्छन्ती ।

द्विवाङ्, कुप्यत—स्त्री—कुप्यन्ती ।

चुराङ्, चालयत्—स्त्री—चालयन्ती ।

प्रेर भाषयत्—स्त्री—भाषयन्ती ।

तुर्गाङ्, क्षिपत्—स्त्री—क्षिपन्ती ।

अर्गाङ्, स्वात्—स्त्री—स्वाती स्त्री ।

वर्तमान कृन्तक स्त्रालिङ्के रूप इ के लोहनेसे बनते हैं । भ्याङ्,  
 द्विवाङ्, चुराङ्, तथा प्रेरणाङ्क धातुके रूपमें इस ईक पूर्व नू लगता  
 है और तुर्गाङ्क तथा अर्गाङ्क धातुके रूपमें नू प्रिकरपसे  
 लगता है ।

इच्छत् नपु म, द्वि, न—इच्छत् इच्छती-स्त्री इच्छन्ति

यात् " , " "—घात याती-स्त्री यान्ति

नपुमकके प्र, द्वि तथा मन्वोपादेशे द्विवचनके रूप स्त्रीनिङ्ककी  
 प्रयुक्तिके समान होते हैं ।

वतमानि—छो—वतमाना—आत्मनेपदको वर्तमान कृदन्तको स्त्रीलिङ्ग-  
को रूप था जो प्राङ्मेसे बनते है ।

नन्वा पश्य इय इता पश्यता राक्षसम्—यद्य अनान्तरपद्यो वा मत  
पद्यो का उदाहरण है । इसका अर्थ है— राक्षसों देखतेर 'पश्यतो राक्षसम्'  
का अर्थ—'राक्षसश्च पश्यत मत' है । यह मत पद्यो इस लिये कदातो है  
कि इसका अर्थ स्पष्ट बननेके लिये यत्वा पद्योका एकत्रचय मत —  
प्रयोग किया जाता है ।

पतने विद्यमाने और त्रिनेपु गच्छन्तु—मतिमत्तमौक उदाहरण है ।  
इसका अर्थ है—पतने विद्यमान मति, त्रिनेपु गच्छन्तु मत्तु ।

एव विद्यु र प्रहरन् फय न तण्डसे ।  
कथमेव प्रलपता व घहस्रधा न दीणमनया निहया ।  
अपि कुण्ठ तातस्य ? संमसम्भाकम् । युज्जान च कुण्ठसु ?  
इतानी विपतो भवत्तशनात ।  
अहो परा कोटिमधिरादति प्रमो पौराणाम् ।  
नाये कुतस्त्रय्यशुभ प्रक्षानाम् ।  
उत्तिष्ठमानस्तु परो नीपेक्ष्यो भूतिमिच्छता ।  
यमे विधो व कथ व्यवसायमिद्वि ।  
यस्मिञ्जीवति जीवन्ति बहव साऽऽ जीवति ।  
मतां मद्भि सद्म कथमपि हि पुण्येन भवति ।  
विक्रमति हि पतङ्गस्योप्ये पुण्डरीक  
द्वयति च हिमरश्मानुद्गते चन्द्रकान्त ।  
सूर्ये तपत्यायरथाय दृष्टे  
कारपेत लोकस्य कथ तमिन्वा ।  
एव जीवित स्वममि मे दृश्य द्वितीय  
एव कोमुनी तपनयोरन्त त्वमङ्ग ।

लोयरा मातयाधु नय चारवरिग्रो ।  
 मातृमिधिरमानानां मे हि ना विषया गता ३  
 अगत निग्रह धिष्टुस्यत विज्ञानम् ।  
 दमस्तः राजममानमयन शीरभाजनम् ॥  
 उपशरिषु य माधु माधु र तश्च को गुण ।  
 अयकारिण य माधु य माधु मर्द्धुस्य  
 कत्रत रामराभति माधु मधराणाम् ।  
 आदद्य कशितागारा उच्यं शो भौजिकाश्विम् ॥



का यमा हागा कि मं कागी काऊ कोर मङ्गाव तापा रङ्ग ।  
 जो नीरा यपना काया नदी परम मधु च त हे ।  
 इन मभति धिष्टुनाका धहुत चार शिष्या ।  
 हम धीवाकरकाका न्याय का काम हे ।  
 राच ने कहर, ' रानो, का यह द च गुमथ मता जा मरता हे ।  
 का तुमको मूठ कदम लज्जा नही यारो ।  
 उच्यं उच्यं राणा या यती लम धुयतीको नही यारो ये ।

( धतिममसीहा मयाग करा ) ।

यन्पि मूठ कदम रहा या तथापि शिष्यमं उपराध किया गया ।

( मा यतीया मयं म करा ) ।

मराज्ज ।

अङ्ग ( अङ्गम् ) न — अरीर	अग्रधर ( अग्रधर ) पु — धीय समय
अभ्युत्थ ( अभ्युत्थ ) पु — उन्नति	आयारा ( आयाराजम् ) न — टकना
अग्रुभ ( अग्रुभम् ) न — अग्रुभ	कशितागारा ( कमधा०, कशिता—

१ । मान तथा समान परिहृ हे यन्पि यथा न मे चाग्य हे ।  
 शास्त्रम = परिमाण माय कस्या इमाण ।

स्त्री, शाखा स्त्री) — कविता —  
रही शाखा

कान्ति ( स्त्री ) — सुन्दरता

कारण ( कारणम् ) न - वृत्तु

✓ कुशल ( कुशलम् ) न - मुख्य

✓ कोटि ( स्त्री और कोटी ) —  
धरम सीमा

✓ कौमुदी ( स्त्री ) — धातुनी

✓ क्षीर ( क्षीरम् ) न - दूध

क्षेम ( क्षेम - सम ) पु , न - कुशल

✓ गुण ( गुण ) पु गुण, उपवास

✓ चन्द्रकांत ( चन्द्रकांत ) पु — एक  
मणि, जो चन्द्रकिरणोंको सम्बन्ध  
पनीजता है ।

✓ तिमिरा ( स्त्री ) — रात

✓ ततिपात्र ( तातपात्र ) पु ( तात,  
पु पिता, + पात्र - पु धरण,  
यह एक श्राद्धार्थक शब्द है,  
जा बहुवचनमें प्रयोग किया  
जाता है ) — पूज्य पिता ।

तापस ( तापस ) पु — तपस्वी

दशन ( दशनम् ) न - देखना

द्वार ( द्वार - पु यह सर्वदा व व  
ही में प्रयोग किया जाता है )  
— स्त्री

द्विष ( द्विष ) पु — निन्द

दृष्टि ( स्त्री ) — दृष्टि, नजर

देवी ( स्त्री ) — रानी

नन्द ( नन्द ) पु — पाटलिपत्रका  
राजा । नन्द तो भाई थे

नाय ( नाय ) प - प्रभु

✓ पतङ्ग ( पतङ्ग ) पु — मध

परीक्षा ( स्त्री ) — परीक्षा

पशु ( पु ) — पशु [कमल

✓ पुण्डरीक ( पुण्डरीकम् ) न — श्रेत

पण्य ( पुण्यम् ) न — पुण्य

✓ पौर ( पौर ) प — नगरवासी

✓ प्रमोद ( प्रकृष्ट्यासो मोद, प्राप्ति  
समा०, प्र = ब्रह्मा + मोद - पु  
= हृष्ट ) — पु बड़ा हर्ष

✓ भूति ( स्त्री ) — ऐश्वर्य

भोजन ( भोजनम् ) न — भोजन

राक्षस ( राक्षस ) पु — नन्द राजाका  
मन्त्री

वटि ( पु ) — शक्ति

वाल्मीकिकोकिल ( वाल्मीकि-  
कोकिल ) पु वाल्मीकि मुनि  
+ कोकिल पु कोयल —  
वाल्मीकिवली कोयल

विधि ( पु ) — परमेश्वर, ब्रह्मा, देव

शिशिर, शिशिर रम ) पु , न —

जाड़ेका शब्द, माघ तथा  
फागुन माघ

मद्यो ( मदी ) मद्यो  
 मद् ( मद् ) य मद्य  
 मद्द ( मद्द ) य मद्य  
 मद्यान ( मद्यान ) य मद्य  
 मद् ( मद् ) य मद्य

✓ विमरिषि ( पु ) यद्, विम, न  
 विम, वि ० ठटा + रिषि पु  
 विमरिषि यद् विमरिषि विम  
 टट ०, यद्, म



विशेषणः ।

✓ अयमिन् अयमिन् यः कुराद्  
 करनयाना

परि + उप + दा + क्त धर्त्तु कृ  
 मिति धातो कृ

✓ उपकारिन्—अनाइ करनयाना

✓ प्रतीक्याह ( प्रति + कृ—क्या दा  
 दा धर्त्तु कृ ) यद् धे हता

✓ उपव्य—अनाइर्योप

✓ विश्वमान ( कस्य यतमा क  
 चिन् च )—अनिको चिन्ता  
 को आगो दे

कृदा क्राभता धेयता कृदा

कृ—अहुत

अयत् ( अयता अयत् पुन्य ) अय

✓ शीत ( शी + च पर + त )—कटा  
 कृथा

यद्—कटा

✓ मत् ( मत्—का यद् कृ )

धाता कृथा, अकृथा

कृतन मया कृत—नया

पर ( मद्यता )—१ कृतना २ कृदा

✓ आयु—अकृथा

✓ अयपाशमान ( अय ० अयुपाशमाना, यथा ( यथा + य )—यथाया योम



धातुः ।

अधि + कृ ( अधिरोदति ) ( क्या  
 पर )—अमाना

कृन् ( अजति ) ( क्या पर )—अद्वयदाना

उद् + क्या ( तिष्ठ ) ( उच्छिन्ना ) क्या  
 आ )—उद्गत होना

कृन् ( अकृत्ता ) ( क्या आ )—अद्वयदाना

अनुधीके आयु आता दे )—

अमय होना ।

ट्, ( द्रवति ) (भ्या पर) — गलना,

विघ्नता

म + लप् ( प्रलपति ) (भ्या पर) —

अस्पृष्ट बालना

ल्प् ( लज्जत ) (त आ) — नजाना

त्रि- कम् ( विद्वसति ) (भ्या पर)

— खिलना

अव्यय ।

✓ एवम् — एसा

✓ कथमपि — किसी प्रकार, बड़ी कठिनतासे

✓ निघृणम् (बहु०, निर् = निगत — निरुल गया हुआ + घृणा स्त्री दया, निगता घृणा यस्मात् कमलो यथा ग्रातथा) — जिससे दया निरुल गयी है, निरय

मधुराक्षरम् — ( बहु०, मधुर विशेष० मीठा + अक्षर — न उच्य, मधुराक्षरानि यस्मिन् कमरि यथा ग्रातथा ) — मीठे शब्दोंमें

विशेषत — अधिक

सहस्रधा — हजार प्रकारसे

पाठ २२ ।

यम् तथा इयम् मे अन्त एतेत्यात् शब्द ।

विद्वान् लिखति = विद्वाल्लिखति — पण्डित लिखता है ।

न किमपि विदुषामगमम् — पण्डितोंका बोझ बहुत अग्रम्य नहीं है ।

सतिरेव यत्नाद् गरीयसी — बुद्धि ही बलसे बढ़ी है ।

\* द्वारकामध्युपुपो जनस्य या सम्पदस्ता मनसाऽयमुनि — द्वारकामें

१। उक्त कि एकवचनान्त्रिपण्का रूप क्रियाविपण्को तरह प्रयोग किया जाता है। विद्वन् लिखतिमें यस्मात् कसपी यथा ग्रातथा, मा यस्मिन् कसपि यथा ग्रातथा कहा जाता है, जिससे इसका क्रियाके साथ अन्त्य मानन हीना है।

० उप, अनु अदि आ पूर्वक इस धातुका आधार कम हीना है।

रहनयाल लीलाको जो सम्पत्तिया थीं वे मनकी भी श्रम्य हैं ( श्रयात बनकी काननः भी नही की जा सकती ) ( जन बहुउचाङ्ग श्रामे है ) ।

विदान् समु प्जात् — विदान् सब ठोर पणित होता है ।

विद्विस्तु निलय काय — इस विषयमें पणितोसे निलय विषय जाना चाहिये ।

इस पाठमें यन् तथा इयमन्त शब्द न्वि गय हैं ।

विद्वम्—पू ।

सेन्विम्—प० ।

	ए	व	द्वि	व	ब	व	ए	व	द्वि	व	ब	व
प्र	विदान्		विद्वामो		विद्वाम		सेद्वान्		सेन्विसो		सेन्विस	
द्वि	विद्वामसु		”		विद्वेष		सेन्विसामसु		”		सेद्वेष	
तृ	विद्वेषा		विद्वेषाम्		विद्वि		सेद्वेषा		सेन्विसुप्याम्		सेन्विद्वि	
च	विद्वेषे		”		विद्विष्य		सेद्वेषे		”		सेन्विद्वि	
प	विद्वेष		”		”		सेद्वेष		”		”	
ष			विद्वेषो		विद्वेषाम्		”		सेद्वेषो		सेद्वेषाम्	
भ	विद्वेषि		”		विद्विष्यु		सेद्वेषि		”		सेन्विद्वेषु	
स	विद्वन्		विद्वामो		विद्वाम		सेन्विन्		सेन्विसो		सेन्विस	

विद्वस—न

सेन्विस्—न ।

	ए	व	द्वि	व	ब	व	ए	व	द्वि	व	ब	व
प्र,	द्वि,	च	विद्वत्	द्वि	विद्वेषो	विद्वामि	सेन्वित्	द्वि	सेद्वेषो	सेन्विसि		
			शष	प०	के	समान ।			शष	पु०	के	समान ।

विद्वेषो स्त्री ( नौके समान )

सेद्वेषो स्त्री ( नौके समान )

द्वेषम्—पु० ।

	ए	व	द्वि	व	ब	व
प्र	द्वेषान्		द्वेषामो		द्वेषाम	
द्वि	द्वेषामसु		”		द्वेष	

	ए ष	द्वि य	द्य ष
वृ	श्रेयसा	अयाभ्याम्	श्रेयाभि
स	श्रेयसि	श्रेयसा	अय सु—श्रेयस्यु

श्रेयसु—न० ।

	ए य	द्वि य	य य
म, हि, म	श्रेय	श्रेयसो	श्रेयासि

तत् + लिखति = तद्विखति अन्यात् + लिखति = अन्याद्विखति—जब  
 अन्तस्थानोप वरुको वा ल् होता है ता उसको ल होता है, और यदि  
 अष्ट अन्तस्थानोप अनुनासिक हो तो उसको अनुनासिक ल् होता है ।

लघु ह्रीटा—लघुतर—लघीयस् = उससे छटा—लघुतम—लघिष्ठ =  
 सबसे छोटा ।

दुष्—बड़ा—दुस्तर—गरीयस् = उससे बड़ा—दुस्तर म गरिष्ठ =  
 सबसे बड़ा ।

— ( ईयस् और इष्टुके पूत्र गुहको ग् होता है )

गुहत्—महीया—महिष्ठु ।

विशेषणोंको ईयस् तथा इष्टु प्रथम जगनेसे आरंभिक रूप बनते हैं ।  
 त तथा तम भी इसी अर्थके दूसरे प्रथम हैं । ईयम् तथा इष्टु पर रचनपर  
 अन्तिम स्वर वा उपास्य स्वरको धाय अन्तिम व्यञ्जनका लोप होता है ।

स्त्री गरीयसी, गरिष्ठा, दुस्तरा, दुस्तरमा ।

बलवत्, बलिन्, बलीयम् बलिष्ठु—ईयम् तथा इष्टुके लगनेपा वत्  
 तथा इन इयासि मरवर्षीय (स्वामित्वाचक्र) प्रथमोका लोप हो जाता है ।

ऊपरके रूपोंको देखनेसे ये नियम निकलते हैं —

विद्वस् + स = विद्वन् + स = विद्वान् + स = विद्वान् —



१। अन्तिम व्यञ्जनं पूष स्यनामत्पानमं न् आता है और एष न् क पूषक स्वरका = घ होता है ।

विद्म + आ = विद्मन् + आ = विद्मान् + आ = विद्मानो ।

२। न् अथ पञ्च अन्तमं न दा, और उषर प्राय ग्, घ्, दा न् दा, ।। न्नुखायें वदा प्राता है ।

विद्म + अम = विद्म + अम = विद्म

संविद्य + अम = संविद्य + अम = संविद्य + अम = संविद्य

३। भ अङ्ग क अन्तश यम्का रम् दाता है । यम्को पूषको ह का लोप दाता है ।

विद्म + भाम् = विद्म + भाम् = विद्मभाम्,

विद्म + सु = विद्म + सु = विद्मसु ।

४। यन् फोरं अघोप वग प्राय दा, ता पको अन्तश यम्को त् होता है, और यन् कारं अघोप वग प्राय हो तो पञ्च अन्तक मको ह दाता है ।

यद्य स्मरत रघना चादिय सि नपु सककी प्रथमा, द्वितीया, तथा सम्बोधन की ए व की प्रकृति पद है, नपु मयकी प्रथमा, द्वितीया, तथा सम्बोधन की द्वि व की प्रकृति भ अङ्ग है, तथा नपु सककी प्रथमा, द्वितीया और सम्बोधनके बहुवचनन प्रथय अत्रात्मक्या है । यद्य प्रकृति जिनको स्त्री प्रथय ह लमाया जाता है, भ अङ्ग है ।

एते वपमयोध्या माता ।

आर्ये ! अयताम । नृपुयमेतत् ।

आर्ये ! यन् नेवयत्रिधानसञ्चित तर्हि तस्मात्प्रागभ्यताम् ।

ध विद्म । कि वस्तु त्वया गुरोरे प्रेषयित्ति तमपृच्छदात्ता ।

तु ज्ञान् विहाय मसात्तु अशुशुद्धिरेव नास्ति ।

अथ सा सपुभजतो किमाख्यस्य राजर्षे पत्नी ?

तमे आष्ट्रे तिषा प्रसिद्धा मुद्घूत सपि नावतिष्ठन्त ।  
 श्रेयांनि सत्राख्यधिजगमुपस्ते किमाशाख्यम् ।  
 सुख्यनैव हि लभ्यते मुकृतिभि सःपद्गतिदुलभा ।  
 या यस्य चित्ते न क्वा स दूरे ।  
 भरस्याभरण रूप रूपस्याभरण गुण ।  
 गुणस्याभरण ज्ञान ज्ञानस्याभरण क्षमा ॥  
 सत्यमेव व्रत यस्य दया दोनेषु मज्जा ।  
 कामक्रोधो वशे धर्म्य स साधु कथ्यते ब्रधे ॥  
 १ आदृतस्याभिषेकाय प्रदिष्टस्य धनाय च ।  
 न मया लक्षित कश्चित् स्वल्पोऽप्याकारविधम ॥  
 प्रायो नाम तव प्रोक्त चित्त निश्चय उच्यते ।  
 तपोनिश्चयस यागात् प्रायश्चित्तमितीयते ॥  
 विपदि धैर्यमयाभ्युत्थे क्षमा सन्नि द्याकपटुता यधि विक्रम ।  
 यशसि चाभिषेचिष्य सत्र श्रुतो प्रकृतिविद्वामिन् हि मदात्मनाम् ॥

जगो २ चिन् जितन लग, वद लडका सत्र कलाशोमें बुशल

दुश्रा ।

पञ्च मरुजो ! मैं आपको प्रणाम करता हू ।  
 आयु प्रतिभान चौण हाती है ।  
 विपत्तिमें हमलोमोंको धीरज धरना चाहिये ।  
 मज्जन मसारको हमार समभक्त है ।  
 पण्डितको सभार्द मूर्खोंको न जानना चाहिये ।  
 हमलागोंको हमारे मङ्गलके लिये उद्योग करना चाहिये ।  
 किसी प्रकार दुःसका नगरको बाहर निकल जाना चाहिये ।

व्युत्पत्तयः ।

अभिर्भाव ( भू ) - वाच

✓ अभिषेक ( अभिषेकः ) घ - शब्दस्य

अभूमि ( भू ) मत्प्र०, । - अश्विन  
(मनसाऽप्यभूमि - मनसा भी  
श्रमसा )

आकार ( आकार ) घ - आकृति

आभार ( आभारम् ) न - भूषण

लज ( लज ) घ - लज्ज

समा ( भू ) - शक्ति

वित्त ( वित्तम् ) घ - मन

द्वारका ( भू ) - द्वारका

निराध ( निराध ) घ - निराध

✓ निरपथ ( निरपथम् ) न - दक्षिण, मन्का

वेध, रङ्गभूमिकर्षे द्वाका लगर,

लदी नट लाग वेध वनाग है ।

पट्टा ( भू ) - कुम्भता

अपचित ( अपचितम् ) + ( वाच घु

नतर अवशाम + शिवा - न -

दक्षिण मनका निराध ) न - द्वा

वित्त, द्वाताप ( वित्त वाचित

न - न - इवेर द्वाका शब्द

हा जाता है । )

धातु ( धातु धूम ) घ न धातु इधोप

धुत ( धातु धुम् ) घ, - न - लज

धत् ( भू ) - धत्, लज्ज

✓ विधम ( विधम ) घ - दशाक्षम

✓ विधार ( विधारम् ) न - करना, प्रश

विधम ( विधम ) घ - धाम्

मनका शोभ

यथा ( यथायम् ) न - मत्प्र

यन ( यनम् ) न - मत्प्र

येधम ( न ) - कल्याण

✓ यम् ( न ) - मभा

विशेषणः ।

दशम - ज्ञाननका अत्र च

✓ अधिर्भावयस - लो वा चुका

✓ अध्व विधम - लो रङ्ग चुका

✓ अधस्तित ( अध + मो + त ) - अधस्त

✓ आशास्य - आशीयाश्च पानको धाम्य

✓ आश्रित ( आ + श्रि + श्वा पर + त ) -

उगाया सुधा

किमाय ( चहु०, कि + आख्या -

भू - नास, का आख्या यथ च

किमायः ) - किम नामका

तम ( मध - श्वा पर + त ) - शरम

नृश ( नृश का कथ ) - इच्छने य य

✓ यत्तित ( य + त्रिप - नृ पर + त )

- भेरा सुधा

लोचन ( ल + च् + न् — नु पर + त ) ललित ( लक्ष् + च पर + त ) —  
 — भेजा हुआ दया गया  
 लक्ष्य ( ल + श् + क् + कृष् ) — इन याग्य प्रथम — अधिक प्रथमाश याग्य  
 महात्मन् ( बहु०, महत् + आत्मन् ग्यथ ( गु — बहुत + अन्व ) — बहुत  
 पु ) — जिसका मत बड़ा है होता  
 उपासित, धार्मिक

लक्ष् ( लक्ष् + अ आत्म कम० भातु ।  
 संयत ) — बोलना स्था ( तिष्ठति — भ्या पर ) — अथ  
 धृष्ट ( कम०, यद्गते ) — पकड़ना के माथ ( आत्म ) — छड़ा  
 रचना

अनातु — दूसरी जगह श्रव्य ।  
 तर्हि — तो विद्याय ( वि + द्या का श्रव्य  
 भूत कृदन्त ) — छाड़कर,  
 चिथा

पाठ २२ ।

संख्यावाचक ।

( १ से १० तक । )

विधवाया पुनरुद्वाह सशास्त्र इत्येकी मयन्ते, अपरे पुन शान्मप्रतिषिद्ध इति—

काहे लोग विधवाका पुनविवाह शान्मरुमत है रेषा करने है, पर लोग ता वद शान्मसे विधि है एमा करत है ।

अप्यनु मामानोति त्रयो वेदा त्रयाणा वेदाना वदत शाखा सन्ति— अम्, यन् शोर माम रेषे तोन वद है तीन वेदोंकी बहुतसी शाखाय है ।

\* सम अण् ए वा वि वा रदभेपर स्वाधाम् का मयेमनी जाता है ।

नभस्यो मृगानि चत्वारि त्रिंशत् पदा, कानि चत्वार्यु पदं—प्रमाद  
 धार, त्रिंशत् पदा एव कागिणी एवः मृगं है।

इस पाठमें समासाद्यक इत्यादी वि-व शब्दों से एकल अथवा बहुवचन  
 मध्य आद्यक इत्य प्रकार है —

एवम्, त्रिंशत् पदात् पदं पदम्, पदुम्, पदात्, पदो इत्यादि ।

एकत्रयने एव समास शब्दों का प्रयोग है। बहुवचनम इत्यादि शब्द  
 है—कुछ लोग या कोई लोग ।

दि ।

	पु		स्त्री तथा नपुं
प्र		दा	द
द्वि			,
तृ		दाभ्याम्	दाभ्याम्
च		,	,
प		,	,
ष		दया	दया
म		,	,

द्विक एव दोषो द्विवचनमं शोभ है, इसको पु तथा नपुं मं है, तथा  
 स्त्री मं है समासना आदिप ।

त्रिंशत् शब्द अत्रयकने समासाद्यकिक एव मध्यन बहुवचनमं  
 शोभ है ।

त्रि ।

चम ।

	पु	स्त्री	न	पु	स्त्री
प्र	त्रय	त्रिभिर	त्रिभिः	त्रयदा	त्रयदा
द्वि	द्वौ	"	"	द्वय	"
तृ	त्रिभिः	त्रिभिः	त्रय पु	त्रयमभि	त्रयमभि

च	त्रिभ्य	तिभ्य	चतुर्भ्य	चतस्रभ्य
प	"	"	,	"
प	तृयाणांभ्य	त्रिभ्यः	चतुर्णांभ्य	चतस्रणांभ्य
स	त्रिभ्यु	तिभ्यु	चतुर्भ्यु	चतस्रभ्यु

षष् पञ्चन अष्टन् ( त ना लिङ्गोर्मे समात् )

	चतुर् न	षष्	पञ्चन	अष्टन्
प्र	चत्वारि	षट् ङ्	पञ्च	अष्ट अष्टौ
द्वि	"	,	,	"
तृ	शीघ्र एष पु प	षट् मि	पञ्चमि	अष्टमि अष्टामि
च	समान	षट्भ्य	पञ्चभ्य	अष्टभ्य अष्टाभ्य
प			"	"
प		षट्णांभ्य	पञ्चानांभ्य	अष्टानांभ्य
स		षट्सु-षट्सु	पञ्चसु	अष्टसु अष्टासु

षट्सु वा षट्सु पर ध्यान नो । ठ तथा म् के औचर्मे विकल्पमे  
त् आता है ।

सप्तम्, नवम्, तथा दशम्को एव पञ्चक समात् हातं है ।

पद्विले दस पूरुषप्रलयात् या क्रमिभ्याख्यात्रयिक इत्य प्रकार है -

प्रथम मा-भूती, अग्रिम मा, आन्मि मा, द्वितीय या, तृतीय या,  
चतुर्थे यौ, तुरीय या, पञ्चत मा, षष्ठे ङी सप्तम मी, अष्टम मी,  
नवम मी, दशम मी ।

प्रथम शब्दके प्रथमाके गुरुत्वने प्रथमे प्रथमा एव होते हैं ।

द्वितीयस्मे द्वितीयाय, द्वितीयस्मात् द्वितीयात्, द्वितीयस्मिन्-  
द्वितीये, एव द्वितीयस्मै द्वितीयायै इत्यादि । इसी प्रकार तृतीय तथा  
तृतीयायै एव हाते हैं ।

द्वितीय तथा तृतीय के च प, ष तथा मसगोने एक्यवर्मे विकल्पमे  
अन्यत्रको समान एव होते हैं ।

संज्ञायाचकाम त्रिधाविशेषय दस प्रकार प्रथमं च -  
 एकधा एक प्रकारस दिग्भा द्वाधा, त्रिधा त्रिधा, चतुर्धा चतुर्धा  
 इत्यादि ।

धा आङ्गमे ( चिह्नः श्रव्य प्रकारं च ) ।

एकधा—एक प्रकार । तु तम तम स्य तका वाप कराता है ।

एकश—एक एक, द्विश—दो २ ( जलको लगानसे, धा पुनश्चिकिका  
 वाध कराता है । )

पञ्चकृत्व—पाच धार चतुर्धाय—चतुर् धार ( इत्य लगानसे, जो  
 त्रिधाकी पुनश्चिकि करताता है । )

पर एकका सङ्घट्टता है एकवार ) , द्वि=द्वि ( दो धार ) ,  
 त्रि—त्रि , चतुर्—चतु ।

एकका तर तथा तम लगान आत है—

एकतर शोभ एक एकाम ( बहुतीम एक ) एकतरशोभ-एक  
 तमशोभ इत्यादि—एकतर तथा एकतमस्य रूप पदार्थको समान होता है,  
 परन्तु एकतर का नव का प्रथम तथा द्वितीयाक एकजवनसे एकतरम्  
 होता है । अन्यका अन्तर होता है ( नाम एक ) । अन्यतरसे अन्यतरम्  
 इत्यादि—संज्ञानाक समान रूप होता है पर अन्तर ( बहुतीम एक )  
 को ज्ञानतमस्य, अन्यतमस्य इत्यादि प्रकारान्त संज्ञाशब्दको समान रूप  
 होता है ।

नगरयथ तित्वा भार्या कौषल्या सुमित्रा कौशिकी च ।

भरतशब्दे द्वौ रेफौ लक्ष्मणाद् द्विरेफ इत्युच्यते ।

नाथा यथैषिक सांख्य योगा मीमांसा वज्रान्त इति षड श्रानि ।

छानुभ्या पात्वाभ्यां पाठिभ्यामुरधा बहुधा शिरसा रजसा दृग्वा च  
 प्रथमं साष्टाङ्गं प्रथमं कथ्यते ।

अमीमां चतुर्णां फलागा मध्ये यत्ते रोचते तत् प्रथमात् ।

हरये रोचते भक्ति ।

देवताय रोचते मोक्षक ।

तिसृषु कर्माधिष्ठय लावण्य श्रेया ।

श्रुताभिस्तनुभि प्रपन्न श्रियोऽवताद् ।

अथ अत्म । उचित रजया प्रपन्न आश्रमे \* द्वितीयमध्याधिनुमिर्गानी  
समय ।

बलीपथो वेद्य नमीन्दरेच्छा ।

वाद्येण सन्निधौ वैश्वान्त्यो यथा द्विजातय ।

ममारविषदृप्तस्य ह्ये एव रसवत्फल ।

काव्यासुतरसाख्या सद्गुण मुच्यते षट् ॥

अध्यापनमध्ययन यत्न योजन तथा ।

ज्ञान प्रतिग्रहस्यैव षट् कर्माख्यग्रन्थमन ॥

शिक्षा कलपो व्याकरणे निरुक्त इन्द्रसां चय ।

श्लोतिषामयन चैव वैशाङ्गानि षडैव तु ॥

स्वयं राष्ट्रं च ताम्रजं रङ्गं यश्चमेव च ।

सौम लोह रघवेति धातयोऽष्टौ प्रकीर्तिता ।

अर्थागमो नित्यमरागिता च

प्रिया च भार्या प्रियजातिनो च ।

वश्यश्च पुत्रोऽयकरो च विद्या

षट् लोकोकस्य मुखानि राजन् ॥

सूय को सात घोड़े है ।

मध्य, रजस, और तमस तीन गुण हैं ।

तापीवे नमंग बड़ी है ।

गिखयो तीन नेत हैं ।



यावद्दमको यथाऽगु यो यमभक्त है ।  
 मीम कवीका योम छ र गिनवक तिपे उमे कडा ।  
 म्युत्रमसं दमभ -धिक यतां है ।  
 यार् म् कथन चार प्रल य ।

मन्त्राण्यः ।

अथत्रामन् पुं ( बहु० अथ त्रिग०, उत्तम, उत्तमन् म त्राम् )— त्रिवक्ता उत्तम उत्तम है, शास्त्रय अध्यापन ( अध्यापनम् ) न —प्राणा, अधन ( अधनम् ) न —माग अरागिता ( स्त्री )—आराग्य आशय ( आशय ) पुं —भोत्रमको एक यत्रय्या । अक्षय्य, गादक्षय, यान्प्रय तथा संयाम भोत्रमको चार यव्याये है ।	वय ( वय ) पु —वयूह वयसां वयः—वयं ज्ञान्य वाम् ( म ) गुट्वा खोत्रनाक ( खोत्रनाक ) । सं, तप्य, ०, खोत्र पुं धातो, नाक पु अकार धातियोका धारण धातिव् ( न ) तारा ( धातियामपनम् —धोनिध आन्य, त्रिवर्ष तारायोको धति धरित है ) तनु तनु ( स्त्री ) इरीर ताम ( तामम् ) न —तांदा तजन ( तजनम् ) न —जान् तान ( तानम् ) न —ता देवत्त ( देवत्त ) पुं —किसीका ना दश ( दश ) पुं —दश द्विधाति ( पु बहु० द्वि दो, धाति स्त्री, धाम् ) किमये दो धारण है —आकण, सत्रिय, तथा योग्य द्विरक ( द्विरकः—पु बहु० द्वि रेको यद्य स । अकारक है रको सा ) धमर
---	---

निवृत्त ( निवृत्तम् ) न — शब्द —

द्युत्पत्तिशास्त्र

न्याय ( न्याय ) पु — गौतमकृत तक

शास्त्र

पुनरुद्वाह ( पुनरुद्वाह ) पु पुनरुक्ति,

उद्वाह पु - विवाह) — पुनर्विवाह

प्रणाम ( प्रणाम ) पु — नमस्कार

प्रतिग्रह ( प्रतिग्रह ) पु — लेना

बल ( बलम् ) न — १ शक्ति,

२ मन्य

भीमांघा ( स्त्री ) जैमिनिकृत,

षड्दशनीमें एक दशन

मोदक ( मोदक ) पु — एक प्रकारकी

मिठाह

घजन ( घजनम् ) न — याग

घञुष ( न ) यजुर्वेद

यशद ( यशम् ) न — ज्ञप्ता

याम ( याम ) पु — षड्दशनीमें एक

दशन, पतञ्जलिकृत

रङ्ग ( रङ्ग रङ्गम् ) पु , न — रंग

रथ ( रथ ) पु — प्रार

रुप ( रुपम् ) न — चादौ

साव्य ( साव्यम् ) न — श्रीभा ,

श्रद्धकान्ति

सोह ( सोहम् ) न — सोहा

वर्ण ( वर्ण ) पु — १ जात, २ अक्षर

विषया ( स्त्री, बहु०, वि उपसर्ग

विना, धय पु पति ) स्त्री,

जिषका पति सुत है

विषयुक्त ( विषय न + युक्त पु ,

तत्पु० ) विषयुक्त पेड़

वेदाङ्ग ( वेदाङ्गम् ) न — ( तत्पु०,

वेत्तु पु वेद + अङ्ग न भाग )

वदका एक भाग

वेदान्त ( वेदान्त ) पु — वेदान्त-

दशन, षड्दशनीमें एक दशन,

व्यासकृत

वैशेषिक ( न ) षड्दशनीमें एक

दशन, कणादकृत

व्याकरण ( व्याकरणम् ) न — शब्दशास्त्र

शाखा ( स्त्री ) — वेदकी एक शाखा

शिक्षा ( स्त्री ) — प्रजापतिशास्त्र

शिरस ( न ) — शिर

शङ्क ( शङ्क ) पु — साध

सांख्य ( सांख्यम् ) न — षड्दशनीमें

एक दशन, कपिलकृत

सामन् ( न ) — सामवेद

सौम ( सौमम् ) न — सौम

सुजन ( सुजन ) पु , प्राश्नमास,

सुष्टु जन ) — सव्यन

सुमित्रा ( स्त्री ) — लक्ष्मणकी माता

खण ( खणम् ) न — खाना

## विशेष्य ।

अवका ( स्त्री अवकरी )	व्य	व्यय—व्यसं रक्षयत्वात्
उत्पन्न करनशाला		विद्वंसु—खाननशाला, पण्डित
रुक् षक, ( बहु य मं ) कुह		शास्त्रनिर्दिष्ट ( तत्पु०, शास्त्र न +
गरीयम्—( अधिक बढ़ा )		प्रतिष्ठित = प्रति + सिध्ति
प्रपन्न ( प्र + प्र + णि या + त ) प्राप्त		पर + त )—शास्त्रसे निष्पट
प्रियद्यान्दि ( स्त्री प्रियद्यान्दिनी )—		सशास्त्र ( बहु०, स = साय, शास्त्र
सधुर धोतनखाला		न )—शास्त्रमगत
बलीयम् ( स्त्री बलीयसी ) अधिक		साष्टाङ्ग ( बहु०, स + अष्टम् +
शक्तिमान्		अङ्ग, स )—आठ शब्दोंसे साय
रसप्रसू—स्वाभ्युक्त		सेद्विषय—जो बैठ चुका

## घातु ।

हृच् ( रोचते—इया आ )—पचन्द	}	चतुर्थी दातो है । तुभ्य दासत
करना ( पच चतुर्थीसे साय		—तुमको पचान है ।
आता है ) पचन् करनेवालेसे		

## अव्यय ।

अध्याबिनम् ( अधि + आसु +	}	दोसलम्—नेत्रल
नुम् )—जैठना		निलम्—सद्वत्
इत्थानौम्—अथ		

## पाठ २४ ।

अनियत मन्त्राचारकः ।

अज्ञाना काय —आपसे काना ।

तस्मात् सखा त्वमसि यन्मम तत्तद्वै—इस लिय तुम मिसु हो, जो मेरा है वह तुम्हारा ही है ।

दक्षो भावेन परिच्यत क्षीरमन्त्र—“दोके रूपम वक्ष्णा क्षुश्रा मरु वृध है ।  
पशु सेवा स्त्रीणा पामो धर्म —पतिकी सेवा दितुयोऽजा परम कृतव्य है ।  
ऊग्रश्री रूपगविताया श्रिय प्रत्यारेण =ऊग्रश्री रूपसे गवित लक्ष्मीकी  
दवानवाकी है ।

माधुनां कौति सवासु दिक्षु मसरति—मज्जनाका यत्र सऽ दिशाश्रीमें  
कैलता है ।

त्रिधास्ते पन्थानि, सन्तु—सुन्दारे माग सुखजनक हों ।

इस पाठमें पति, सखि, श्री, स्त्री, श्रुति, पथि, तथा दिशु प्रत्येके रूप नि-  
गये हैं ।

१ । पति शब्द को वृ, च, प, प, तथा समसौको एक वचनको रूपक्रम  
से—पथा, पथे, पथु, पथु, तथा पथी होते हैं, शेष रूप पतिके समान होते हैं ।

२ । सूपतये, भूपते इत्यादि—भूपति नक्षीपति, इत्यादि समसके  
श्रन्तमें रचनेवाले पतिशब्दको रूप नियतरूपसे होते हैं ।

सखि—पु ।

	ए ध	द्वि व	त्र व
म	सधा	सधायो	सधाय
द्वि	सधायम्	,	सधौन्
वृ	सध्या	सखिभ्याम्	सखिभि
च	सधे	,	सखिभ्य
प	सधु	सखिभ्याम्	सखिभ्य
प	”	सखी	सखीणाम्
स	सधो	”	सखिषु
स	सधे	सधायो	सधाय

३ । सखिके पहिले पाठ रूप—सधा, सधायो, सधाय, सधायम्,

सधायो हैं, शेष रूप पतिके समान होते हैं ।

स्त्री—स्त्री ।

	ए व	द्वि व	व व
प्र	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रिय
द्वि	स्त्रीम्—स्त्रियम्	”	स्त्री—स्त्रिय
तृ	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभि
च	स्त्रियै	”	स्त्रीभ्य
प	स्त्रिया	”	,
ष		स्त्रिया	स्त्रियाम्
स	स्त्रियाम्	”	स्त्रीषु
ख	स्त्रि	स्त्रियो	स्त्रिय

४ । स्त्रियाणि प्रथम आग रहनेपर स्त्रीषु इको द्वयु होता है । द्वयुश द्वितीयाका एकवचनमें स्त्रीम् वा स्त्रियम्, तथा बहुवचनमें स्त्री वा स्त्रिय होता है ।

श्री—स्त्री ।

श्री—स्त्री ।

	ए व	द्वि व	व व ।	ए व	द्वि व	व व
प्र	श्री	श्रियौ	श्रिय	श्री	श्रियो	श्रिय
द्वि	श्रियम्	”	,	श्रीम्	”	,
तृ	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभि	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभि
च	श्रियै	”	श्रीभ्य	श्रियै	”	श्रीभ्य
प	श्रिय	श्रिया	”	श्रिय	श्रिया	श्रीभ्याम्
ष	”	”	श्रियो	”	”	श्रिया
			श्रियाम्— श्रीलाम्			श्रियाम्
स	श्रियि	श्रियाम्	श्रीषु	श्रियि	श्रियाम्	”
ख	श्री	श्रियो	श्रिय	श्री	श्रियो	श्रिय

५। \*श्री, जी, ह्री, धू तथा ध्रू इत्यादि शब्दोंके स्वोंमें अधोलिखित परिवर्तन होते हैं ।

(अ) प्रथमाशे ए व में स्रु का लोप गही होता ।

(उ) खरादि त्रिभक्तियोंके पूर्व ईं को इय् तथा ऊ को उव् होता है ।

(क) च, प, घ, तथा समसौके एकवचनमें और ष को बहुवचनमें दो २ रूप होते हैं । एक नियतरूपसे प्रत्ययोंके जोड़ने पर बनते हैं, और दूसरे नई तथा वधूके समान चलते हैं ।

अस्ति—न ।

त्तिश—स्त्री ।

	ए व	द्वि व	व व	ए व	द्वि व	व व
प्र अस्ति	अस्तिणी	अस्तीणि	त्तिक् ग	त्तिश्री	त्तिश	
द्वि "	"	"	त्तिशम्	"	"	
तु अदद्या	अदद्याम्	अदद्याभि	त्तिशा	त्तिश्याम्	त्तिश्या	
च अदद्ये	"	अदद्याभ्य	त्तिशे	"	त्तिश्याभ्य	
पं अदद्या	"	"	त्तिशा	"	"	
प "	अदद्या	अदद्याम्	त्तिशो	त्तिशाम		
स अदित्य अदित्यि	"	अदित्यु	त्तिशि	"	दित्य	
स अस्ति अस्ती	अस्तिणी	अस्तीणि	त्तिक् ग्	त्तिश्री	त्तिश	

६। तृतीयाके एकवचनसे लेकर खरादि प्रत्यय पर रहनेपर अस्ति, अद्यि, अदित्यि, तथा अस्तिको अस्तन्, दद्यन्, सक्यन् तथा अस्तन् धमभना चाहिये ।

०। खरीलक्ष्मीतरीतन्वीधौत्रीश्रीशामुद्राङ्कित ।

सप्तमामेव शब्दानां मुद्रायां न वदात्तम् ॥

इकारान् शब्दोंमें खरी (रजस्रवा स्त्री) शशी तरी (भौका) तन्वी (एक वाय) श्री, तथा श्रीके प्रथमाके एकवचनमें स का रूप नहीं होता ।

त्रिंश, त्रिंश्याम् त्रिंशु, त्रिंशु, त्रिंशु—

०। त्रिंशु तथा मांशु, त्रिंशु, इत्यादि द्वगणैः समाप्त होनेवाले शब्दोंका अन्तिम शु. व.ज्यागि प्रत्यय पर रचनपर, क्से अन्त जाता है ।

पयिन—पु ।

	य य	द्वि व	घ घ
प्र	पन्या	पन्यानी	पन्यान
द्वि	पन्यानम्	॥	पघ
तृ	पया	पदिभ्याम्	पदिभि
च	पये	॥	पदिभ्य
प	पय	॥	।
प		पया	पयाम्
म	पयि		पयिषु
स	पन्याः	पन्यानी	पन्यान

८। पयिन्को पटिल पांच रूप—पन्या, पन्यानी, पन्यान, पन्या नम्, पन्यानी—हैं । इसका भ अङ्ग पय है ।

९। अगपय—स्वगका मात्र । समासके अन्तमें पयिन्को पय होता है ।

श्रुत्याभङ्ग कांध मूचयति ।

अथ पन्या साधेतमुपतिष्ठते ।

स्त्रीभि कस्य न खण्डित भुवि मन ।

न्याध्यात्यथ प्रविचलन्ति प न धीरा ।

अनिर्वै श्रियो मूलम् ।

दुःख च शकरा चैव मृत इधि तथा मयु इति पञ्चान्तमिदम् ।

आ पाप ! कपमेव गन्तो मामुत्तमाङ्गे न ते निप्रतित खड्गमवशीला वा सहस्रधा न जिहा विहरतां गता वा न वाणी नष्टानि वा नाचराणि ।

एकस्मिन्त्रौणकोटरे ज्ञापया षष्ट निवसत पार्श्वेन वयसि वसतमानस्य  
कथमपि पितुरहमेवैको विधिवशात् सूनुभयम् ।

परिहार्शत्रनखित मन्त्रे परमार्येन न गच्छता यच्च ।

नावाभङ्गं महन्ति नृशर नपतयभ्यादृशा यात्रभीमा ।

यो धुवाणि परित्यज्य अधुव परिपत्रत् ।

धुवाणि तस्य नश्यात् अधुव नष्टमेव तु ॥

सहितैकवदं निपा नित्या धातुपसतयो ।

नित्या समासे धार्क्यं तु मा शिश्रक्षामपेक्षते ॥

त्वदुसुमृतिरेव पात्रेण क्षुतियुक्ता किमु वक्तुमीश मा ।

सधुर हि पय म्भमायतो ननु कौशिक सितशकरान्वितम् ॥

काक कृष्ण विक कृष्ण को भे विककाकया ।

वमन्ते समुपायाते काक काक विक विक ॥

स्वभाय नैत्र मुञ्जन्ति सत समगतोऽसताम् ।

न त्यजन्ति सत सञ्जु काकससगतं विकाम् ॥

त मा सभा यत् न शान्तिं दृष्ट्वा दृष्ट्वा न शान्तिं यत् उर्जित धमम् ।

नासौ धर्मो यत् न शान्तिं न तत्सत्यं यच्छ्रुत्वा तु शिष्टम् ॥

उमशे समान सज्जन इव सघारमे कमा है ।

रघुने सज्जिज्ञाश्रीके राजाश्रीका लोता ।

‘अथ का करना च दिष्टे यद्द तुम दास्य अच्छा समभक्ते ए’ (ध्याणम्)

यद्द कष्टता हुत्रा यद्द सुष्ठ हुत्रा ।

मै गहो ज्ञानता कि उम स्तोने का कथा ।

पति यद्द सतो मित्प्रयोग भक्ति का पात्रु होत चादिष्टे ।

मित्प्र ! मरे श्रुत्वाको अन्वयात् न समभा ।

१३७



सैन अथा नि उम पागुका वृष अदीर्घं वल गया ।  
 दिवपुमें को वितु वही यथाय वितु ऐ ।

संज्ञासूत्र ।

अनिर्वृत ( अनिवृतं पु नन्वम०, अ  
 +निर्वृतं पु शैवाय )—पैरायका  
 अभाय, उरभाय  
 अयुत ( अयुताय ) न अयुत  
 उत्तमाङ्ग ( उत्तमाङ्गम् ) न ( उत्तम  
 दिग० + अङ्ग-न ) उत्तम अयुत,  
 निरा  
 उपसगा ( उपसगाः ) पु —उपसगा  
 ऊग्रशी ( श्शी )—असकी यक  
 अष्टवराका नाम  
 कीर्ति ( श्शी )—यक  
 कोटर ( कोटरम् ) पु न—यादत्ता  
 क्षीर ( क्षीरम् ) न—दूध  
 घृत ( घृतम् ) न—घी  
 हल ( हलम् ) न—कपट  
 लाया ( श्शी )—श्वी  
 स्वानुस्मृतिः ( श्शी तत्पु स्वत् +  
 अनुस्मृति )—सुस्मृता स्मरण  
 अधि ( न )—अदी  
 निग ( श्शी )—निगा

दूध ( दूधम् ) न—दूध  
 धी ( श्शी धा )—धृष्टि  
 धीर ( पु )—धृष्टिमान्  
 धति ( पु )—धति  
 धदिम् ( पु )—धाम  
 परमाय ( परमाय पु कर्मभा० परम  
 दिग० उत्तम + अयुतं यत्पु )—  
 यथाय यत्पु  
 परमार्षेय—अथमुच  
 परिहाय ( परिहाय ) पु —दमी  
 विक ( विक ) पु —काकिल  
 प्रणाशन ( प्रणाशन ) पु —दृषका  
 अन्वयेयाना  
 भङ्ग ( भङ्ग ) पु —अडाना ( भूगङ्ग—  
 भाय अडाना )  
 मू ( श्शी )—पृथ्वी  
 य ( श्शी )—भाय  
 भे ( भे ) पु —भे  
 मूल ( मूलम् ) न—अङ्क, कारण  
 दत्त ( दत्तम् न द + त )—अङ्क

† सन यमी ए व क अयमी युध, तथा अथा की लत् नया मन् हीता ऐ ।

यमन ( यमन ) पु — यमन श्नु,   
 चेतु श्रीर यैशाख   
 वाणी ( श्री ) जोली   
 विचलित ( न वि + लृ + त ) —   
 अम्यपु यखी   
 विजसा ( स्त्री ) — खे लनेवालेकी   
 इच्छा   
 विचलता ( स्त्री ) व्याकुलता   
 शर्का ( स्त्री ) — चीनी   
 श्री ( स्त्री ) लक्ष्मी   
 सखि ( पु ) — मित्र   
 समस ( समस ) पु — समस   
 सात्रभौम ( सात्रभौम ) पु — सचाट

साधु ( पु ) — सज्जन   
 सितश्वरा ( स्त्री ) सिसरी   
 मनु ( पु ) — पुत्र   
 ससग ( ससग ) पु — साथ   
 सदिता ( स्त्री ) — सखि या अक्षरोका   
 लोट   
 सम्पक ( सम्पक ) पु — साथ   
 साकेत ( साकेत ) पु — अयोध्या   
 सेया ( स्त्री ) — सेया   
 स्त्री ( स्त्री ) — स्त्री   
 स्वभाउ ( पु ) — प्रकृति   
 ट्टी ( स्त्री ) — लज्जा

विशेषण ।

अधुत्र — अधिष्ठित   
 अनुविद्ध ( अनु + धि + ष्ट +   
 त ) — मिला हुआ   
 अश्रित ( अनु + श्र + त ) — युक्त   
 श्रवशील ( अनु + श्र + त ) — फटा   
 हुआ   
 अशत — घुरा   
 काण — काना   
 कीदृश — किस प्रकार का   
 कृष्ण — काला   
 खण्डित — टूटा हुआ

गन्तु ( गन् + ष्ट + का + यतमा   
 कृ ) — बोलता हुआ   
 गतित ( गत्र + त ) गतित   
 शील ( श्रु + ष्ट + त ) —   
 पुराण   
 खादृश — तुम्हारे ऐसा   
 धुय — निश्चित   
 निरतित — ( नि + पत्र + त ) — गिरा   
 हुआ   
 नियसत् ( नि + यम् + का + यत कृ ) —   
 रहता हुआ

निय—याजश्चक्र

परिषत् ( परि + नम् + त )—

यज्ञा हुश्रा

पश्चिम—अन्तिम ( पश्चिम वय  
वृद्धता )

पाप—पापी

पावन (स्त्री पावनी)—पवित्र

मन्त्र—मनोहर

युत (युत् + त)—मिला हुआ

वदु ( वृद्—भ्या या + त )—  
बड़ा

शिक्ष—दुराजनश्च

समुपायात ( स + उप + आ + या  
श्च पर + त )—आया हुआ

धातु ।

अप + इच्छ् ( अनेच्छते—भ्या आ )  
—चाहना, आज्ञा करना

भरोषा करना

अप + श्वा ( उपसिष्ठते—भ्या आ )  
—खेतीनाम + रु ( प्रसरति—भ्या पर )—  
फैलनाम + धि + चल ( प्रविचनति—भ्या  
पर )—द्विलनापरि + संश्च ( परिषेवत—भ्या आ )  
( परिषेज )—सिधत करना  
प्राश्रय लेना

अवयव ।

क्रियु—कितना अधिक ?

वक्तुम् ( वच् + म् )—बाना

विधिज्जात्—व्ययज

पाठ २५ ।

स्वर्गि तथा तनाश्चरणे धातु ।

यथा चक्रवर्तिनः पशुमाप्नुहि—सद्य प्रकारसे सायभूमि पुत्रकी  
पावो ।

शृणु म सायशेष वच —श्री ऋच ( विषमें शप है ) आता सुनो ।

सखि ! अनामच्छ पुष्पाणि चिनवावहै—सखी ! यथा आश्रो हस दोनो फून बठीरें ।

लग्नाय ! त वय ते महिमान सोतु शक्तुम - हे लग्नाय ! हम लोग तुम्हारी महिमाकी स्तुति नदी कर सकत ।

अध्वपत्रो यच्च सोममसुन्वन्—अध्वयुश्रोने यक्ष्म न मको कटा ।

त्वमपि स्व नियोगमशून्य कुरु—तम भी अपने कामकी अशून्य बनाओ ।—तुम भी अपना काम करा ( अशून्य कुरु=पूरा करो ) ।

क्रमेण च तस्या वपुषि योवता पत्रमकरोत्—क्रमधे योजनने उसके शरीरमें स्नान किया ।

ईश्वरकृपया जिना दुष्कराणि कार्याणि जना जग माधुयु—ईश्वर कौ कृपाके जिना लोग कठिन कामाका कैसे मिट्ट कर !

इस पाठमें स्वाङ्गि तथा तनाङ्गि गणके २१ दिये गये हैं ।

चि—छा पर उर्ने ।

आप्—छा पर ।

	ए व	द्वि ष	अ ङ	ए ङ	द्वि ङ	अ ङ
म पु	चिनोति	चिनुत	चिञ्चति	आप्नोति	आप्नुत	आप्नुवन्ति
म पु	चिनोषि	चिनुष	चिनुष	आप्नोषि	आप्नुष	आप्नुष
उ पु	चिनामि	चिनुय - चिञ्च	चिनुम	आप्नोमि	आप्नुय	आप्नुम

तन्—तना पर लोट् ।

आप्—छा पर लोट् ।

	ए व	द्वि ष	अ ङ	ए व	द्वि ष	अ ङ
म पु	तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु	आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु
म पु	तनु	तनुतम्	तनुत	आप्नुषि	आप्नुतम्	आप्नुत
उ पु	तनयानि	तनयाव	तनयाभ	आप्नयानि	आप्नयाव	आप्नयाम

तन्—तना पर लट् ।

आप्—आ पर लट् ।

ए छ द्वि छ छ छ

ए छ द्वि छ छ छ

प्र पु अतनोत् अतनुताम् अतनुत्

अप्नात् आप्नुताम् आप्नुत्

म पु अतनो अतनुतम् अतनत्

आप्ना आप्नुतम् आप्नुत्

ष पु अतनत् अतनत् अतनत् अतनत्

आप्नत् आप्नुत् आप्नुत्

द्वि—आ पर लिट् ।

वि—आ पर लिट् ।

ए छ द्वि छ छ छ

ए छ द्वि छ छ छ

प्र पु विनुयात् विनुयाताम् विनुयन् विन्वीय विन्वीयाताम् विन्वीयन्

म पु विनुया विनुयातम् विनयान् विन्वीया विन्वीयाताम् विन्वीयन्

ष पु विनुयाम् विनुयाथ विनुयाम् विन्वीय विन्वीयथ विन्वीयथि

तन्—आ लट् ।

वि आ लोट् ।

ए छ द्वि छ छ छ

ए छ द्वि छ छ छ

प्र पु अतनुत् अतनुताम् अतनुत्

विनुताम् विन्वीयाताम् विन्वीयाताम्

म पु अतनुया अतनुयाताम् अतनुयम्

तन्—लट् आ यत् ।

तन्—आ लोट् ।

ए छ द्वि छ छ छ

ए छ द्वि छ छ छ

प्र पु तनत् तन्यात् तन्यत् तनुताम् तन्याताम् तन्यताम्

म पु तनुते तन्याते तन्ये तनुथ तन्याथ तनुथम्

ष पु तन्ये तनुवत् तन्ये तनुयथे तन्ये तन्याथथे तन्याथथे

इम वर्गायां लिख्येति ये नियम तुम्हारे ध्यानमें आधते —

१ । नु स्थाणिका तथा च तनाणिकायां विकरणे ।

गण दो वर्गा में प्रसक्त हैं । पहिले में स्थाणि, स्थाणि, तुनाणि, तथा चुराणि य गण आते हैं, निम्ने प्रकृति अकारान्त होती है ( क्योंकि अ, म,

अ, तथा अय इनके विकारक हैं ), और दूमरे वर्गमें अन्य गणके धातु आते हैं, जिनमें प्रकृति अकारान्त नहीं होती ।

२ । कुङ्क प्रत्यय ऐसे हैं जि जो पर रहनेपर अन्तिम स्वर तथा उपान्त द्रुख स्वरको गुण या वृद्धि होती है, और कुङ्क ऐसे हैं, कि जिनके पूव कोई परिवर्तन नहीं होता । इनमें पहिले प्रकारके विकारक, तथा दूमरे प्रकार के अविकारक प्रत्यय कहते हैं ।

३ । परस्मैपद—त्रिधिलिङ्के एकवचन, तथा लोटके मध्यमपुरुषके एकवचनके सिवा और सब एकवचन विकारक है । लोटके उत्तम पुरुषके द्विवचन तथा बहुवचनके सिवा और सब द्विवचन तथा बहुवचन अविकारक है ।

४ । आत्मनेपद—लोटके उत्तमपुरुषके एकवचन, द्विवचन, तथा बहुवचन—विकारक, तथा शेष अविकारक है ।

५ । कौशल त्रिधिलिङ्के सिवा इतर दृष्टरे वर्गके परस्मैपदके प्रत्यय प्रथम वर्गके गणोंके समान होते हैं । त्रिधिलिङ्के प्रत्यय इव प्रकार हैं —

प्र पु	यान्	याताम्	यु
म पु	या	यातम्	यात
उ पु	याम्	याथ	याम

६ । तनु—आगुहि—हि लोटके मध्यमपुरुषके एकवचनका प्रत्यय है । तनाग्निगणके सब धातुओंमें तथा स्वाग्निगणके स्वान्त धातुओंमें इसका लीप होता है ।

७ । आत्मनेपदमें प्रथमपुरुषके बहुवचनके अनुनासिकका लीप होता है, और इथे, इते, इयाम्, तथा इताम् को आथे, आते, आयाम्, तथा आताम् होता है ।

८ । चिनय न्य, आन्नुव—वकार तथा यकारान्ति प्रत्ययोंके पूव

विकारणं च का विकल्पं योप जाता है, यदि इवमं पुत्र लोभं मयुक्तं व्युत्पन्नं न हो ।

२ । विकल्पिता आत्मव्यति—यदि विकल्पितं उक्तं यत्र काश्च मयुक्तं व्युत्पन्नं हो ता तस्यका विकल्पितक मययति पूर्णं उक्तं जाता है ।

कृ—३३ ।

पर यत्पदान् ।

आत्म यत् ।

	प	य	द्वि	य	त्र	य	प	य	द्वि	य	त्र	य
प	पु	करोति	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ
म	पु	कराणि	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ
उ	पु	करामि	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ	कुम्भ

पर—नाट् ।

आत्म—लाट् ।

प	पु	करान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्
म	पु	करा	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्
उ	पु	करवाणि	करवाणि	करवाणि	करवाणि	करवाणि	करवाणि	करवाणि	करवाणि	करवाणि	करवाणि	करवाणि

पर तद् ।

आत्म तद् ।

प	पु	पुत्रान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्
म	पु	पुत्राः	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्
उ	पु	पुत्रयम्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्	अकुम्भान्

पर विधिलिङ् ।

अ विधिलिङ् ।

प	पु	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्	कुम्भान्
---	----	----------	----------	----------	----------	----------	----------	----------	----------	----------	----------	----------

१० । कृत्वी विकल्पितक मयुक्ति कर, तथा अविष्कारक मयुक्ति कुर् है ।

११ । यकारानि तथा मकारानि मययति पूय, तथा विधिलिङ् परस्मैपद मययति पूय कृत्वी विकल्पितक मयुक्ति कर, तथा अविष्कारक मयुक्ति कुर् है ।

साधु कृतमनेन विद्यापरिमदार्थं पुत्रान् काशौ प्रतिषद्यता ।

तात । शकुन्तलाप्ररहित शून्यामिव वन प्रवेष्टुं न शक्नुम ।

त्रिदुषा यथासि त्त्रिदु कवय प्रतन्वन्ति ।

अहो ! देवो भानुमती सखीभ्या किमपि भानुयमाणा तिष्ठति । भयनु

लताजालेनान्तरित शृणोमि तावदसौ विश्रम्भालापम् ।

अथ पौत्रमाप्नोति मया चन्द्रपूजा साय कतव्या । तस्मात् पूजाय

सख्या लक्ष्मणे पुण्याख्यवचिवाताम् ।

दृष्टव्याना पर न दृष्ट मयातरचक्षु फलं नेवाप्रवम् ।

एकान् पुत्रमाह्वय शशूत् हस्तुमपरिमितबलानुयात विशन्तनेरमात्येभदा

सामन्तेषु कृत्वा साभिसारमुत्तरापय प्राद्विद्ययम् ।

) तिबला वलिना युद्धे न कापि धृष्णायु ।

भगवति सस्त्वति ! तव चरण शरण करवाणि ।

विद्या विद्यानाप धन सदाय

शक्ति परेषा परिषीडनाय ।

परस्य साधोविपरीतमेतत्

ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥

कुलीने सद्य सन्पन्न पण्डिते सद्य मितृताम् ।

सातिभिश्च सम मेल कुवाणो न यिनश्यति ॥

यत्र योगेश्वर कृष्णो यत्र पार्थो धनुधर ।

तत्र श्रीजिहयो मृतिर्ध्रुवा नीतिमतिमम ॥

मा कुर्व धनज्ञायोवन्मय हरति निमेषात् कालः सर्वम् ।

मादासयःमदसखिल हिल्लः ब्रह्मपद त्व पयिश्च विन्त्विता ।

यद्य लक्ष्मी वगौर्वमे पेहोसि फूल चुनती है ।

उद्यागवे कौन अपना काय सिद्ध नही कर सकता ?





ब्रह्मपन् ब्रह्मपन्म् (न ब्रह्मन्-न ब्रह्म  
+ पन् न खान) — ब्रह्मका खान  
मानुसती ( स्त्री ) — दुर्याधनकी  
रानीका नाम  
भूति ( स्त्री ) — एश्वर्य  
मड ( मड ) पु — गाव  
महिमन् ( पु ) — बडापन  
मेल ( मल ) पु साध  
यज्ञ ( यज्ञ ) पु — याग  
योगेश्वर ( योगेश्वर ) प — योगके  
ममु, कृष्ण  
लताजाल ( लताजालम् ) न ( लता

स्त्री + चाल न ) लताश्रीका  
समूह  
शुभ ( न ) — शरीर  
विजय ( विजय ) पु — जय  
विश्वमाला ( विश्वमाला ) पु  
तःपु, विश्वम् पु विवाम +  
आताप — प रुधा — विश्वासे  
वातचीत  
विद्या ( विद्या ) पु — याद  
सरस्वती ( स्त्री ) — वाणी  
सामन्त ( सामन्त ) पु — माण्डलिक गणा  
सोम ( सोम ) पु — सोमस

विशेषण ।

अनुयात ( अनु + या — अ पर +  
त ) — अनुष्ठत  
अन्तरित ( अन्तर् + इ + त ) — द्विषा  
दुष्टा  
अपरिमित ( नन्तत्पु० अ + परिमित  
= परि + मा + त ) — बहुत  
सकृत्त्रिन् — साय भौम  
विरन्तन — पुराता  
हुप्कार — करनेकी शक्ति  
द्रष्टृन् — डेपने योग्य

निवृत्त ( उहु ) — जिससे बल निकट  
गया, शक्ति  
+ पर ( मय ता ) — दूसरा  
शक्ति — शक्तिमान्  
मायामय — ( माया — स्त्री अयित्वा,  
मय मयय है निनका अय —  
बना हुआ है ) — अमय  
विपरीत ( वि + परि + इ + त ) —  
उलटा  
विरहित ( वि + रट् + त ) — दिना

० ऊपर दृष्ट काकाह होता है तब इसमें दी १ रूप होने है — दर् — परा , परम्परा  
— परान् परस्मिन् — पर ।

साभिषार (ग्रह०, स + अभिषार—पुं शेवक) — सेवकोंके साथ	साग्रसेप (ग्रह०, स + अग्रसेप—पुं) —सथेप, पूरा
--	--

## धातु ।

अश्रूनाम् + कृ (तना उभय) — पूछ करना	अश्रु (अश्रुपरा) (सु या) — मनाह करना, विचार करना
आप (आप्नोति स्त्रा पर) — पाना, प्र या अथशे साथ — पाना	अक् (अप्नोति—स्त्रा पर) — सकनर शरण कृ (तना उभ) — शरणागत होना
कृ (करोति कुहत्—तना उभ) — करना	अ (अ) (अप्नोति—स्त्रा पर) — सुनना
कि (चिनाति चिना—स्त्रा उभ) चुनना, एकट्टा करना, त्रि, समु, या अथशे साथ — एकट्टा करना	साध (साप्नोति—स्त्रा पर) — सिद्ध करना
तन् (तनोति, तनुते) (तना उभ) — फेलाना, प्र, त्रि, या समुशे साथ — फेलाना	सु (सुनोति, सुनुते—स्त्रा उभ) — कूटना
धृप (धृष्णाति) (स्त्रा पर) — लखकारना	हि (हिनोति—स्त्रा पर) — भेचना, प्र के साथ — (प्रहिनोति) — भेजना

## अव्यय ।

आहूय (आ + हृ का अथ मू कृ) — पुकारकर एकत्रा — एकत्रार	विजित्वा (विज् + त्वा) — जानकर विज्ञापतिप्रदात्सु (तत्सु चतुर्थी के अर्थमें चतुर्थीके साथ अथ शब्दका समास होता है। यद् चतुर्थीतिरपुण्य है। यह
प्रवेष्टुम् (प्र + विष् + तम्) — प्रवेश करने के निधे	

नित्य होता है विकल्पमें नहीं ।	लोटुम् ( लु + तुम् )—स्तति करनेके
विद्याया परिग्रह विद्यापरिग्रह	लिय
विद्यापरिग्रहाय इत् यथा	हन्तुम् ( हन् + तुम् )—मारनके लिये
स्वात्तया )—विद्याप्राप्तिके लिये	दित्वा ( दा का अच् भू कृ )—
साधु—श्रद्धा	होडकर
सायम्—सायङ्कालमें	

पाठ २६ ।

क्रात्रिगणके धान ।

प्राय प्राकृतिमनुष्टुप्कृन्ति गुणा — प्राय गुण का अनुसरण करते हैं ।  
 स्वयं मदानयमश्वमक्रीणाम्—नुष्टारेलिये मैंने बहुत तेज घोड़ा  
 खोला है ।

प्रीणाति य सुचरिते पितर स पुत्र — जो अपने सचरितुषि पिताको  
 प्रसन्न करता है वह पुत्र है ।

पुण्याश्रमदर्शनन तावन्गर्मान पुनीमहे—इस लोग पवित्र आश्रमके  
 दर्शनसे अपनेको पवित्र करे ( तावत् वाक्पालद्वारके लिये है ) ।

इत् शिलातलेकदेशमनुष्टुप्कृतु वपथ — इस शिलाकी एक ओर मित्त  
 कृपा करे ( उँहें ) । इत् = इमम् ।

शत सुव्याति देवत्तम्—वह देवत्तसे भी बर्या जुगता है ( सुव्  
 को दो काम होत हैं ) । यह द्विकर्मक धातु है ।

हे राजन् ! एतां चित्तिधेनु हरधुमिच्छामि चेद्वत्समियासु लोक  
 पुष्याण्—हे महाराज ! यदि आप इस भुज्वीरुषी गीको दृष्टा चाहते है तो  
 वत्सके समान इस लोकका पोषण करो ।

इस पाठमें क्रात्रिगणके रूप लिये गये हैं ।

१ । निम्न समासके विषयमें इस पुस्तककी अन्तमें गद्यसंरक्षके त्रिपिथीति दर्शनार्थम की  
 त्रिपिथी, वा ३२ वें पाठमें देखो ।

श्री-सप्तम उभ ।

पर उभ ।

श्रास यत ।

	ए	ए	द्वि	ए	ए	ए	द्वि	ए	ए
प्र	प	का	का	का	का	का	का	का	का
म	प	का	का	का	का	का	का	का	का
उ	पु	का	का	का	का	का	का	का	का

पर उभ

श्रास लोट् ।

प्र	प	का	का	का	का	का	का	का	का
म	पु	का	का	का	का	का	का	का	का
उ	प	का	का	का	का	का	का	का	का

पर उभ ।

	ए	ए	द्वि	ए	ए
प्र	पु	अ	अ	अ	अ
म	पु	अ	अ	अ	अ
उ	पु	अ	अ	अ	अ

श्रा लट् ।

प्र	पु	अ	अ	अ
म	पु	अ	अ	अ
उ	पु	अ	अ	अ

पर प्रिपिण्डि ।

प्र	पु	का	का	का
म	पु	का	का	का
उ	पु	का	का	का

धातम विधिलिङ् ।

म पु	क्रीणीत	क्रीटीघाताम्	क्रीणीरन्
म पु	क्रीणीषा	क्रीणीषायाम्	क्रीणीष्वम्
उ पु	क्रीणीय	क्रीणीयति	क्रीणीमहि

१। ऊपरके रूपोंके संयोजनेसे यह मान्य होगा कि कारादिगणका विकरण ना है, और अत्रिकारक धातुना प्रत्यय पर रहनेपर ना का नी, तथा अत्रिकारक स्वरानि प्रत्यय पर रहनेपर न् होता है ।

२। प्रयाण, सुयाण—पुष् सुष, इत्यानि कप्रनान्त धातुओंके लाटकी मध्यमपुरुषके एकवचनका एउ विकरणके बिना आन उगाधिते बनता है ।

३। ब्रम्—ब्रधति, ग्रन्थ—ग्रन्थति—उपान्त ग्रननामिकका लोप होता है ।

४। पू—पनाति, लनाति, धनति, क्षृणाति, श्रयाति—पू, लृ, धृ, क्षृ लृ, तथा और कुछ धातुओंके अन्तिम स्वरकी विकरण आने रहनेपर ह्रस्व होता है ।

सूत ! चोप्याश्यान् । पुष्याश्रमशनेन तावतात्मान पुनं महे ।

कथयतु सत्रमनुक्रमेण । मीनमन्तरा प्रतिबधोतसु ।

मूढ खल्वय हुरात्मा सुयाधनी वासुदेज भगवन्त एतं एषेण क्षय जानातु ।

अही कल्याणपापरा सदाय जनप्रवाणे यद् विवद्विदं सत्यसस्वमनुब्रधति ।

प्रिययस्यान्वयमाणश्चाज्जरोदि ताज्ज्योतरुण्यठाकारकसु ।

अन्तरा त्वा मा च क्षमय्दलु ।

न च प्रगोचनसत्तया चालका स्वप्नेऽपि वेष्टुने ।

हरिमन्तरेण न सुखसु ।

तिलेभ्य प्रतिपत्कति मागतान् ।

श्रुतिग्रन्थ परिचोषभेदः ।

यात्राभिगया न परिचोषात् ॥ १ ॥

पारोपकाय पथमकोषात् ।

अनन्यमिना माध कथं पिशाचोपाय ॥

कात् पत्रु समाख्या कर्त्तव्यमिति मीतया ।

मासिक को मरणात्पश्चात् सधुवताम् ॥

इच्छया कुरुते मन्त्रिसिद्धया दितद्रुमयम् ।

कोदत भगवत्पुत्रो वा न कोदतकेरिय ॥

मतिं वधानं सुधीयं शक्तमन्त्रं पदाय वा ।

अथान भगवत् भोगान् तदमलं प्रवृत्तोप्य वा ॥

सुखदुःखितां वृत्तानां त्रिविधं त्रिभुवनं ॥

शून्यं कृतविद्यया पश्यन्नास्ति सिद्धिमुत्तमम् ॥

सुखा दुःखानां सुखा भवन्ति

संनिवृत्तं पाप्य भवन्ति शोकाः ।

सुखादुत्तोया भवन्ति नशाः

समुद्रमासाद्य भयं तपेया ॥

याज्ञेयैः शौचं वाप्येवमथमुद्रमतराम च ।

सा दत्तेति यन् राममुदात्तिदुःखहरवृत्तम् ॥

ननुवेद्यं सुखद्वयप्रदानं त्रिनिवृत्तमिति न यावन्नकम् ।

अथ कुर्वन्तां भवेत्तत्रोत्तमं पुनः किमोत्तमम् ॥

ज्ञानकीं सम्पत्तिं बहुत कल्याणकीं वदन्तीति ।

पुत्रको चादिदे किं यद्यपि यच्छ कामोसि दितको प्रसन्नं करे ।

द्वेषो ममुद्रमे अस्तको मया ।

मैं यह पुस्तक बड़े दामसे खरीने दे ।

अब यह अपना दुत्तान्त कह रही है, उसे बीचमें मत रोको ।

“आपतिवां अकेली नही आती” इस कहावतको सवाइ आज मुझे मानूम प्रहो ।

यलमें भीम दुर्योधनसे कम नहीं था ।

हमको प्रतिनि सौण सोते देख मैं बिन्न हू ।

सज्ञाशब्द ।

अनुक्रम (अनुक्रम) पु —क्रम	चाणक्य ( चाणक्य ) पु —चन्द्रगुप्तके मन्त्रिका नाम
अन्तक (अन्तक) पु —यम	जनप्रवाद—( पु तत्पु०, जन—पु + प्रवाद—पु उक्ति)—लोगोंकी उक्ति, कहावत
अभय (अभयम्) न —निभयता	जव ( जव ) पु —वेग
उत्कण्ठाकारण ( न ) ( तत्पु० उत्कण्ठा—स्त्री —चिन्ता + कारण —न )—चिन्ताका कारण	तिल ( तिल ) पु —तिल
एकदेश ( एकदेश ) पु —भाग	तोष ( तोषम् ) न —जल
आजस्विता ( स्त्री ) —तेज	दोष ( दोष ) पु —अपराध
कमण्डलु ( पुं, न )—कमण्डलु	भरत ( भरत ) पु—भरत
कल्याणपरम्परा ( स्त्री तत्पु०, कल्याण—न सुख + परम्परा स्त्री उक्ति )—सुखोंकी उक्ति	भुजङ्गपाश ( पु )—कमघा०, भुजङ्ग—पुं—घप, पाश—पु )—सर्पोंका फँस
क्रीडाक (क्रीडनकम्) न —खिलौना	भोग ( भोग ) पुं—उपभोग, सुख
चित्ति ( स्त्री )—पृथ्वी	मधुव्रत ( मधुव्रतः ) पु (ग्रहु०, मधु—न शब्द + व्रत )—धर्म
दौरनिधि ( पु तत्पु० )—दुग्ध-समुद्र	



मरुत्—पुष्परस  
 मरुत्सुत ( य तत्त्व०, मरुत्—पु  
 वायु + सुत—पु—पुत् )—  
 वायुका पुत् दनुमान्  
 मालवक—( मालवक ) पु—किञ्चि  
 पुरुषका नाम ( यद्वा विद्वयका  
 नाम )  
 माघ ( माघ ) प—उरन्नी  
 मूल्य ( मूल्यस ) न—दाम  
 राक्षसे वृ ( राक्षस पु तत्पु, राक्षस  
 —पु + इन्द्र—पुं चत्तम, राजा )  
 —राक्षसीका राजा विभीषण  
 लक्ष्मण ( लक्ष्मण ) प—लक्ष्मण

जल ( जल ) पु—गोका जल  
 यादुव्य ( यादुव्य ) पु—यमुद्वका  
 पुत् कृष्ण  
 यज्ञी ( यज्ञी )—इन्द्रकी यज्ञी  
 शिवातल—( पु, न तत्पु०, शिवा  
 यज्ञी—पत्थर + तल—पु, न )  
 पत्थरका तल  
 सुयोध ( सुयोध ) पु—सुयोध  
 सुचरित ( न कगधा सुपु, चरितम् )  
 सचरित्  
 सुधा ( यज्ञी )—अमृत  
 सुधाधन ( सुधाधन ) पु—सुधाधन  
 स्वप्न ( स्वप्न ) पु—स्वप्न

## विशेषतः ।

अपय—पीनके अपयोग्य  
 आरोग्यकार ( बहु०, आरोग्य—न  
 नीरोगता + काम—पु इच्छा )  
 —नीरोगता चाहनीयाला  
 आय्य—पूज्य  
 कृतविद्य ( बहु०, कृत—क्री कृत्—  
 + विद्या—स्त्री )—लिखन  
 विद्या प्राप्त क्री, पण्डित

गतजीव ( बहु०, गत = गम् + त +  
 लौघ—पु )—मृत  
 गुह्य ( लपपञ्च०, गुह्य जानातीति  
 गुह्य )—गुणीको जाननवाला  
 दुरात्मन् ( बहु०, दुर खराय + आत्मन्  
 —पु )—दुष्ट  
 निगुह ( बहु०, निगता गुहा  
 यस्मात् स निगुहः )—गुह्यहीन

१ यत् एक तन्पुरुषका प्रकार है आ लपपञ्च कहलात्, यह सना गया धातुअर्थ  
 वा होता है ।

मायिक—यत्तुने तत्प्रका श्रद्धा सरह

ज्ञानमयाना

चित्तनु (प्रहृ०, शिशता तनयस्य स  
चित्तनु शि + तनु—स्तो शरीर)  
शरीरहीन

धा + त) —आरक्ष

सुश्रमपुष्पिन ( तत्पु० )—सुश्रम

कृतास युक्त

सुश्राडु—अतिश्रापुक्त

अव्यय ।

अनुचितम् (अश्र) —प्रतिनि

एव—कवल

अन्तरा—१ शीघ्रम्, २ शिना

यद्—ना

(यद् द्वितीयाक्ष साय श्राता है)

धत्कृत (तत्पु०, यस् कृते, यद्—उ

अन्तरा—शिना (यद् द्वितीयाक्ष

+ कृते अश्र लिये) —जिष

साय श्राता है)

लिये

आशु—शौघ

सदसा—अक्षमात्

आसाश (आ + सद् का प्रे०—का

सेयितुम् ( सेत् भ्वा आ + तुम्

अव्य भू कृ )—पाकर

—सेवा करवके लिये

धातु ।

अश्र (अश्राति क्षया पर) —खाना

क्षा ( 'क्षीणाति,—शीले क्षया रक्ष

उप + श्रा (उपसिपुति—भ्या पर)

—खरीदना, खिसे सा

—पास रहना

(आत्म) —वेचना

१। विधीयते परिधीयते अविधीयते—परि वि अविधीयते की धातु आत्मने  
प्रीता है। उभयपक्षों धातुओं में जब क्रियाका फल कताम इतिवाच्य ही तब आत्मनेपद, त  
जब वह अन्वम हीनवाचा ही ही परस्मैपद होता है। परि वि, अविधीयते की धातु  
क्रियाका फल अन्वगामी इतिपर भी आत्मनेपदी होता है।

नु पर ।

यत ।

सम् ।

प्र पु	नाति	तुत	तुवन्ति	प्र पु	अनोत्	अनुताम्	अनुयन्
म पु	नावि	तुघ	तुघ	उ पु	अनयम्	अनुय	अनुम

नियम —

२। नाति, अनयम्—अउञ्जनात् अकारक प्रत्ययको पूव नु क उ को लुङि षतो हे ।

३। नुवन्ति, अनुयन्—स्वरात् अकारक प्रत्ययको पूव अन्तिम उ या क को उय षता हे ।

इ—पर ।

यत ।

साट् ।

प्र पु	इति	इत	यति	प्र पु	एतु	इताम्	यन्तु
म पु	इषि	इम	इष	उ पु	अपानि	अपाम्	अयाम

लट् ।

विधिलिङ् ।

प्र पु	एत्	एताम्	आयत्	इपात्	इपाताम्	इद्
उ पु	आयम्	एय	एय			

आ + इ + अन् = आ + य् + अन् ( यन् ) = आयम् । आ + इ + अम् = आ + ए + अम् = आ + अयम् = आयम् ।

नियम —

४। स्वरात् अकारक प्रत्ययको पूव इ धातुका इका य् षता हे ।

अधि इ—या ।

यत ।

साट् ।

प्र पु	अधीत	अधीयात्	अधीयते	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
उ पु	अधीय	अधीयत्	अधीयद्	अधीये	अधीयावहे	अधीयामहे

लङ् ।

विधिलिङ् ।

प्र पु अर्धयेत् अर्धयेताताम् अर्धयेत्

उ पु अर्धेयि अर्धेयिषि अर्धेयिषि अधीयीष अधीयीषि अधीयीषि अधीयीषि

अधीयते—इ + अते = इयते, अधि + इयते = अधीयते ।

अर्धये—इ + ए = ए + ये = अय, अधि + अये = अर्धये ।

अर्धेयि—आ (आगम) + इ + इ = आ + इयि = रयि,

अधि + रयि = अर्धेयि ।

अधीयीष—इ + ईष = इयीष, अधि + इयीष = अधीयीष ।

नियम —

५ । स्वरानि अत्रिकारक प्रत्ययके पत्र अधि + इ को इ को इय् होता है ।

ब्रू—उभ वत् ।

पर ।

आत्म ।

प्र पु ब्रवीति ब्रूत ब्रुवन्ति ब्रूते ब्रुवाते ब्रुवते

पर ।

लोट

आ ।

म पु ब्रूटि ब्रूतम् ब्रूत उ पु ब्रूते ब्रवावहे ब्रवामहे

लङ् ।

पर ।

आत्म ।

प्र पु अब्रवीत् अब्रूताम् अब्रुवन् अब्रूया अब्रुवायाम अब्रुवन्

उ पु अब्रवम् अब्रूव अब्रुम अब्रुजि अब्रूवति अब्रुमति

विधिलिङ्—प्र पु ए व ब्रूयात्—ब्रूवीत् ।

नियम —

६ । ब्रवीति, ब्रूते, अब्रवम्—अब्रुनादि विकारक प्रत्ययके पूव ब्रूको ई आगम होता है ।

यत् ।

प्र पु	श्राट्	श्राट्	श्राट्
म पु	श्राट्	श्राट्	श्राट्

७। एक दुष्प यानु वा, जिसका अर्थ 'कटना' है, ऊपर निम्ने हुए पाठ रूप दास है : पार्श्वीन इनको तूके रूप कहत है ।

श्री—आरम्भ ।

यत् ।

लोट् ।

प्र पु	श्रेते	श्रयाते	शेरत	शेताम्	श्रयाताम्	शेरताम्
उ पु	श्रं	श्रयत्	शेयत्	शये	श्रयायत्	शेरामहे

लट् ।

विधिलिट् ।

प्र पु	श्रयंत	श्रयाताम्	श्रयत	श्रयंत	श्रयाताम्	श्रयीर
--------	--------	-----------	-------	--------	-----------	--------

निघम —

८। अत्र सायंघातुक लकारोर्न शीक इ को गुरु जाना है, विधि लिट्को लीङ्कार इतर अत्र सायंघातुक लकारोर्न प्र पु के बहुवचनमें र्-आगम होता है, अर्थात् रते, रताम् तथा रत—य प्रत्यय है ।

श्री—आरम्भ ।

यत् ।

लोट् ।

प्र पु	सुवे	सुवहे	सुमहे	उ पु	सुवे	सुवायहे	सुवामहे
--------	------	-------	-------	------	------	---------	---------

लट् ।

विधिलिट् ।

प्र पु	सुवत	सुवाताम्	सुवत	प्र पु	सुवीत	सुवीयाताम्	सुवीर
--------	------	----------	------	--------	-------	------------	-------

निघम —

९। सुवे, सुवायहे, सुवामहे—सू धातुके लोट्के उत्तमपुरुषके एक वचन द्विवचन तथा बहुवचनके प्रत्यय अकारके है ।

एन पर ।

वर्त ।

लाट् ।

	ए य	द्वि य	व य	ए य	द्वि य	व य
प्र पु	दन्ति	दत	दन्ति	दन्तु	दताम्	दन्तु
म पु	दसि	दय	दप	जदि	दतम्	दत
उ पु	दन्ति	दथ	दम	दानि	दाय	दानाम्

लङ् ।

विधिलिङ् ।

प्र पु	अदन्	अदताम्	अदन्	दन्तात्	दन्ताताम्	दन्तु
--------	------	--------	------	---------	-----------	-------

नियम —

१० । अनुनासिकाङ् या अन्त र्णाङ् को क्लोड व्यञ्जनाङ् अधिकारक प्रत्ययको पूव एन\_को न का, तथा घ्वराङ् अधिकारक प्रत्ययको पूव इषको उपाच्य अ का लोप होता है । न्\_को पूव ए\_ को घ्\_ होता है, इषको लोट्\_को मध्यम पु\_ को ए य का रूप जदि है ।

विद् पर ।

वत ।

	ए य	द्वि य	व य	ए य	द्वि य	व य
प्र पु	वेत्ति	वित्त	विन्ति	वेद	विन्तु	विदु
म पु	वेत्सि	वित्य	वित्य	वेत्थ	विदपु	विन्
उ पु	वेन्ति	विद्	विद्	वेन्	विद्	विन्

- लोट् ।

लोट् ।

प्र पु	वेत्तु	वित्ताम्	विन्तु	विन्नाङ्करोतु	विन्नाङ्क_दताम्	विन्नाङ्कयन्तु
म पु	वेत्ति	वित्तम्	वित्त	विन्नाङ्क_	विन्नाङ्क_दतम्	विन्नाङ्क_दत
उ पु	वेन्ति	वेदाय	वेनाम्	विन्नाङ्करवापि	विन्नाङ्करवाय	विन्नाङ्करवाम

लङ् ।

विधिलिङ् ।

प्र पु अवेत् इ अविताम् अविदु  
 म पु अवं अवेत् इ अविताम् अविदु  
 ल प अवेत्सु अविदु अविदु विद्याम् विद्याथ विद्याम

११ । विद् धातुके वतमानमें विकल्पमें लिट् या परोक्षभूतके प्रथम लता कर रूप जनाये जाते हैं । ये प्रथम इस प्रकार हैं —

	ए व	द्वि व	व व
प्र पु	अ	अनुम	उम्
म पु	थ	अयुम्	अ
ल पु	थ	व	म

इनमें एकवचन विकारक तथा द्विवचन और बहुवचन विकारक हैं ।

१२ । विद् धातुके लोट् के रूप विकल्पके आम् ताराकर उक्के या कृ धातुके लोट् के रूप लोङ्के जनाय जात है ।

१३ । अवे, अवेत् इ—कारान्त धातुओंके इ को लङ्के म पु के ए व में सके पूर्व विकल्पके विमग होता है ।

१४ । अविदु — विद्के लङ्के प्र पु के व व का प्रथम उम् है ।

१५ । विद्धि—अनुनासिक वा अन्त स्पर्शको क्वाड किसी व्यञ्जनके आरम्भके लोट्के म पु के ए व द्वि को, तथा कृ धातुके लोट्के म पु के ए व द्वि को धि होता है ( कृ—कृषो पर ) ।

नास्ति सन्दिहो महाप्रभावोऽयं राज्ञि ।

यं पृष्टं सन् सत्यमितं च द्रुते स भवो महीभुजासह ।

अनेनाङ्गुलीयकेनाग्निविकिरणकेसरेण कुसुमितं ह्यत्र गीमहस्तो भवति ।

प्रथमस्थुत्याय ब्राह्मणा वामधीयीरन् ।

किं ब्रूय—कुतोऽद्यापि ते तात इति । आ चुद्रा समरभीरज । कथमेव  
प्रलपतां य सहस्रधा न दीयमनया जिह्वया ।

तमेव ( परमात्मानम् ) त्रि<sup>१</sup> त्रिद्व्यतिमत्युमति नान्य पन्था विद्वतेऽधमाय ।

अल्पस्य द्वेतोद्बहु दातुमिच्छुन

विचारमूढ प्रतिभासि मे त्वम् ॥

महदपि परदु ख शीतल सम्यगाहु ।

क्षणे क्षणे यन्नयतामुपति तद्वच एव रमणीयताया ।

कपिलो यन् सवज्ञ कणानो नेति का प्रमा ।

यस्या कुमुमशय्याऽपि कोमलाङ्ग्या रुजाकरी ।

साऽधिगते कथं देवी क्वलन्तीमधुना चिताम् ॥

किं नु मे स्वादिद कृत्वा किं न मे स्वाङ्कुव्रत ।

इति कमणि सज्जित्य कुर्याद्वा पुरुषो ऽ वा ॥

सरस्वतीं सदा य<sup>२</sup> यदुपास्ति समुच्छिता ।

काव्यानि कुमुमानीय मुयते कविपादपा ॥

कवी<sup>३</sup>हु नोमि यात्मीकि पक्ष रामायणी कथाम् ।

चिद्रुफामिज चिन्वन्ति सकोरा ह्य साधव ॥

बहूनि मे व्यतीतानि क्षमाणि तव चाङ्गुन ।

तापह ये<sup>४</sup> सर्वाणि न त्व यत्य परन्तप ॥

आत्मान रपिन त्रिद्वि शरीर रथमेव तु ।

बुद्धि तु भारयि दृष्टि मन प्रग्रहमय च ॥

इन्द्रियाणि ह्यपानाहुविषयास्तेषु गोचरान् ॥

१। अति एति किं साय अन्वित है, अन्ति=पार करता है मत्युकी साधिता है मुक्ति पाता है । प्राचीन संस्कृत यथोक्ति कभी कभी उपसर्ग धातुअसि अन्त्य किन्तु कर्म है ।



विपरीतयु कालेषु परिधीयेषु ३०३ ॥  
 १ त्वादि मा कृपया कृत्वा परवामतपरमल ॥  
 नमा तम कारयप्राधनाय  
 नारायणावामित्तिक्रमाय ।  
 श्रीगान्धर्व चक्राश्रमधराय  
 गणाधिपतये पुण्योत्तमाय ॥

उह आग्रम धन है विमका यह प्रभु है ।

धं भगवत । सुभ पार्थको भवान् न नरकमे हुङ्गाशा ।

हमखीमांको प्रात काल उठना चाहिये और काथीको पढ़ना चाहिये ।

फरिये पुके किस माससे पञ्चमटीको खाना चाहिये ।

मुनिन कथा, 'महाराज, हम तात हर नयख्यामें सुयो है ।

योग्य समयपर आरम्भ क्रिय गये काम सकल होते हैं ।

वाह ! यह खूब कथा गया है कि हूमराका हु ए हम लगीका हु ए नही है ।

तुमने व्याकरण पढ़ना लिय अपने राष्ट्रसेतो काशी भेजकर अर्थात् काम किया ।

### संज्ञाशब्द ।

अङ्ग, लीपक (अङ्ग, लीपकसु) न— अगुठी	अङ्ग (अङ्ग अम्) पु, न —अङ्ग
अग्रहस्त (अग्रहस्त) पु—हाथका	अग्रन (अग्रनम्) न—मुक्ति
आगेका भाग (अग्रभा०, अग्र याघो हस्त अग्रहस्त) ।	अग्रुन (अग्रुन) पु—अग्रुन उपान्त (स्त्री)—उपान्तना

१ । तादि यह चार्पवरीय है । यह 'वाचन' के नियम बाण है ।

कथा ( कथा ) पु — वेशेयिक दर्शनके क्षता	प्रग्रह ( प्रग्रह ) पु — लगाम प्रत्युषस ( न ) — पात काल
कपिल ( कपिल ) पु — क्षपिलमुनि	प्रभाज ( प्रभाज ) पु — बडापन, बल
कथोद्भु ( तत्पु ) कवि पु + उद्भु पु + श्रु ) — कत्रियोर्म श्रु	प्रभा ( स्त्री ) — ययार्थानान, वस्तु- तखनान
कारणवामन ( तत्पु०, कारण ७ + वामन — पु विष्णु, क्षिपन करण यश्च वामनावतार धारण किया ।	भृत्य ( भृत्य ) पु — नौकर
किरणकोशर ( किरणकोशर रस् पु न कस०, किरणा एव कोशराणि, किरण पुं कोशर पुं, न ) — किरणरूपी कोशर	महीभुन् ( पु ) — पृथ्वीपालक, राजा
क्षय ( क्षय ) पु — क्षय	मुनि ( पु ) — ऋषि
गन्ता ( स्त्री ) — गदा	रदिन् ( पु ) — सारथि
सृष्टिणी ( स्त्री ) — स्त्री	राजपि ( पु ) ( राजन् पुं + ऋषि ) — ऋषितुल्य राजा
गोधर ( गोधर ) पु — माग	त्रिक्रम ( त्रिक्रम ) पु — धराक्रम
चक्र ( चक्रम् ) न — परिधा	त्रिषय ( त्रिषय ) पु — इन्द्रियोंका त्रिषय
नवता ( स्त्री ) — नयापन	शय्या ( स्त्री ) — बिछोना
पुरुषोत्तम ( पुरुषोत्तम पु तत्पु, पुरुषोत्तम, पुरुष — पु + उत्तम ) — विष्णु	शरण ( शरणम् ) न — रक्षक
	शाङ्ग ( शाङ्ग स् ) न — विष्णुका धनु
	सन्देह ( सन्देहः ) पुं — मशय
	समर ( समर ) पु — युद्धर्त्तु
	दय ( दय ) पु — छोडा
	देतु ( पु ) — कारण

विशेषण ।

अमित ( नलृष०, अ + मित = मा + ' + अट — योग्य  
त ) — अपरिमित

अव्य — छोडा

श्रायुषन्—धिरपीठी

उद्भिन्न ( उद् + भिन् + त ) सुना  
दुःखा, प्रकट

कुर्तुमित—पुष्पित

कोमलाङ्गी स्त्री ( बहु कामल—  
त्रिषे० + अङ्ग—न कामल-  
शरीरवाली

सत्—भोव

ज्वलत् ( स्त्री ज्वलन्ती—ज्वल्-  
भ्या पर का वत कृ ) सम  
कता दुःखा

धर—पकड़नेवाला, धारण करने  
वाला

परन्तप—अनुश्रुतिको ताप देनेवाला

परिलौण ( परि + लौ + त )—नष्ट

भौस—हरणिक

मित ( मा + त ) परिमित

रामायणी ( स्त्री )—रामायणकी

रुजाकर ( स्त्री करी ) ( रुजा स्त्री  
हु छ ) हु छ देनेवाला

यस्मल—प्यासु, मिसी

त्रिचारमूढ ( तत्पु )—मूख

व्यतीत ( वि + यति + इ + त )—

बीना दुःखा

शान्त ( शम् + त )—नितन्द्विष

शीता—ठंडा, सद्य

संमुच्छ्रित ( सम् + उद् + श्रि + त )  
श्राग्रित

सद्य च ( उपपत् स०, सद्यं जानातीति )

सद्य जाननेवाला

अव्यय ।

अप्यङ्ग—अच्छीतरह

सुखम्—अनायाससे

हा—हाय ।

हातुम् ( हा + तुम् ) क्लान्तको लिये

धानु ।

अधि + इ ( अधीते अ या )—पढ़ना

इ ( इति अ पर )—जाना, उपजे  
साय—जाना

चिन्ता ( चिन्तयति—चु पर )—

सोचना, सम्को साय—सोचना

नु ( नोति अ पर )—सुनि करना

वू ( वशीति व्रूने अ उभ )—घोलना

मा ( भाति अ पर )—मालस होना

प्रतिषे साय—मातम होना

विद् ( वसि अ पर )—जानना

' शी ( गते—अ आ )—खेटना , | हत् ( हन्ति—अ पर )—मारना ,  
 अधिके साथ—सोना | नष्ट करना  
 मू ( मूते अ आ )—जन्म देना

पाठ २८ ।

अन्त्यागण्यो धातु ।

माण्यक धम शास्त्रि गुरु—गुरुजी माण्यकको धमका उपदेश करते हैं ( शास्त्र द्विकम क है ) ।

अश्रुणि प्रमृष्टि मङ्गलकाले रोन्ति नोचित ते—आभू षोडो मङ्गलके समय तुमको रोना उचित नहीं है ।

हे दुराचारेन्द्रजित् ! यदि काकुत्स्थ नेडिपे तदि न प्राण्यिषि मायानां च नेशिपे—रे दुष्ट इन्द्रजित् ! यदि तुम रामकी स्तुति न करोगे तो न जियोगे और न कपटोंके प्रभु होगे ।

किमिति लोपमाध्वे—तुमलोग चुप क्यों बैठे हो ?

हे राजन् ! भवन्त सर्वा प्रजाः स्तुवन्ति—हे महाराज ! आपकी सब प्रजायें स्तुति करती हैं ।

शिष्यस्तोष्ट शाधि मा त्व प्रपन्नम्—मैं आपका शिष्य हूँ, मुझ शरणागतको पढाइय ।

वष्टि भागुरिरस्तोषमवाप्योक्षपसगयो—भागुरि अब तथा अवि इन दो उपसर्गों के अ का लोप चाहते हैं । अत एव अकारका लोप विकल्पसे होते हैं ।

एष पितृभ्याम्—येनो प्रकारके रूप मिलते हैं । लोप—  
 पिधानम्—पितृभ्याम् वा वगाह (रान) ।

एतद् पाठनें कुलु और अन्तिमपक्ष धानु द्विय मय द्वे ।

दश—आ ।

दश—आ ।

या

याट् ।

म पु	दृष्टे	दशत	दशत	दृष्टाम्	दशताम्	दशताम्
म पु	दृष्टिये	दशतये	दशतर	दृष्टियम्	दशतायाम्	दृष्टियाम्

लल

लल ।

म पु	यथा	यथायाम्	यथत	यथाः	यथायाम्	यथाम्
------	-----	---------	-----	------	---------	-------

नियम,—

१ । दृष्टिये, दृष्टिये, दृष्टियम्—दृष्ट तया दृष्ट धानुप्रोथं सूतया  
अथे आत्म दानेयाते प्रयथोके पूष इ आगाम होता है, पर अथ  
( लल म पु य थ ) को पूष नहीं होगा ।

दृन् + त = दृप् त = दृप् + ट = दृष्ट, सूत्र + त = सूत्र + त = सूत्र  
+ ट = सूत्र, यत् + तुम् = यत् + तुम् = यत् + तुम् = यत्तुम्, दृष्ट + त  
= दृष्ट + त = दृष्ट + ट = दृष्टे, परन्तु दृन् + ट = दृष्टये—

( अ ) दृष्ट, दृष्टा, दृष्टम्—अथ अथ, दृष्ट, दृष्ट, दृष्ट, दृष्ट, दृष्ट, दृष्ट  
तया अकारान्त और हकारान्त धानुप्रोथे अन्तिम अक्षरको, अनुनासिक  
वा अन्त-व्यको ह्रास्व कोर्दे व्यञ्जन आगे रहनेपर, अथवा परको अन्तने  
होनेपर, प् होता है ।

यद्य एक सामान्य नियम है । ऐसे २ सामान्य नियम बड़े उपयोगी  
हैं और अनेक श्लोके वनाननें सहायता देते हैं । ये ( अ ), ( आ ),  
द्वयान्ति सिद्धि हैं ।

आ + दृष्ट + अम् = आ + दृष्ट + अम् = आ + दृष्ट + अम् = आ +  
दृष्ट + टम् = दृष्टम् ।

( आ ) परका अनुनासिक वा अन्त व्यको विया कोर्दे व्यञ्जन, धगके

तृतीय वा चतुर्थ वचन आगे रहने पर, अपने वगैरे तृतीय वचनमें कर्त्तल जाता है, ऐसी अत्रिंशत्तममें ए को छु होता है ।

( १२ वे पाठमें सुभ्य इत्यादि र्पाको देखो ।

रुद्र—पर धत ।

जत्—पर लोट् ।

ए ध	द्वि व	व ध	ए व	द्वि व	व ध
प्र पु	रोञ्जिति	रञ्जित	रञ्जित्	रञ्जित्तु	रञ्जिताम्

स्वप्—पर लङ् ।

प्र पु	अस्वपत् पीत्	अस्वपिताम्	अस्वपन
म पु	अस्वप पी	अस्वपितम्	अस्वपित

जत्—पर लङ् ।

प्र पु	अजत् नीत्	अजत्ताम्	अजत्तु
म पु	अजत् नी	अजत्तितम्	अजत्तित

अस्—पर विधि ।

प्र+अन्—पर विधि ।

प्र पु अस्वयात्—इत्यादि ।

प्र पु प्राण्यात्—इत्यादि ।

२ । रुद्र, स्वप्, अस्, अन्, तथा जत् धातुमें विधिलिङ्को विद्या इतर मघ क्क्षणादि प्रत्ययोसे पृथक् आगम होता है । लङ्में प्र पु को व ध सं अनुनासिकका लोप होता है, तथा लङ्को प्र पु को व ध में वम् लगाता है ।

स्तु—उभ ।

पर—वत्त ।

प्र पु	स्तोति स्तुतीति	स्तुत स्तुवीत	स्तुवन्ति
--------	-----------------	---------------	-----------

आत्म ।

प्र पु	स्तुते स्तुवीते	स्तुवाते	स्तुवते
--------	-----------------	----------	---------

पर खड् ।

उ पु अक्षत्रम् अस्तुव अस्तुवीथ अस्तुम अस्तुवीम

आरम खड् ।

उ पु अस्तुवि अस्तुवदि वीयदि अस्तुमदि वीमदि

पर लोट् ।

म पु स्तुदि स्तुवीदि स्तुतम् स्तुवीतम् स्तुत स्तुवीत

आ—लोट् ।

उ पु स्तो स्तवावष्टे स्ताग्रमष्टे

विधि म पु ए य—स्तुधात् वीयात् स्तुवीत

इषी मकार रति—रवीति इत्यादि ।

३ । एन तथा ह में व्यञ्जानि प्रत्ययोदी पूर्व विकसदसे ई आगम होता है, तत्र यद्य आगम नहीं होता तो २७ वें पाठके २रे नियमके अनुसार काय होता है ।

शास् पर ।

यत् ।

लोट् ।

	ए य	द्वि य	व य	ए य	द्वि य	व य
म पु	शास्ति	शिष्ट	शास्ति	शास्तु	शिष्टाम्	शास्तु
म पु	शास्वि	शिष्टु	शिष्टु	शाधि	शिष्टम्	शिष्ट

खड् ।

म पु अशात् अशिष्टाम् अशासु

म पु अशा—अशात् इ अशिष्टम् अशिष्ट

विधि ।

प्र पु शिष्यात्—इत्यादि ।

चकाम् पर ।

यत् ।

ए व द्वि व व य ए व द्वि व ङ य  
 प्र पु चकास्ति चकास्त चकामति उ पु चकास्ति चकास्त्र चकास्त  
 लोट् ।

प्र पु चकास्तु चकास्ताम् चकास्तु म पु चकाधि चकास्ताम् चकास्त  
 लङ् ।

म पु अचका  
 अचकात् द् } अचकास्ताम् अचकास्ता

विधि—चकास्तात्—इत्यादि ।

जासु पर ।

यत् ।

प्र पु जागति जासुत जागति म पु जागर्षि जासुच जासुच  
 लोट् ।

प्र पु जागर्षु जासुताम् जासुतु उ पु जागराणि जागरात् जागराम  
 लङ् ।

विधि ।

प्र पु अजाग अजासुताम् अजागस जासुपात्—इत्यादि ।  
 द्विप्—पर लङ् । या—पर लङ् ।

प्र पु अद्देष्टु अद्दिष्टाम् अद्दिष्टन् पु अद्यात् अद्याताम् अद्यान् यु  
 आम्—आत्म यत् । वम्—आत्म लङ् ।

म पु आसुषि आसुषि आसुषे असुष्या असुषायाम् असुषवम्

१ । कुश्च वैशाकम्पोक अनुसार चकादि' भी होता है पर भाष्यकार पतञ्जलिने अनुसार चकाधि यथा शब्द रूप है ।



नियम —

४। शिष्य, शिष्य — अङ्गनाम् अङ्गकारक मत्वयोश्चो पूव् शिष्यो आ  
का इ हाता है । शिष्य लोट्के मध्यमपुरुषके एकवचनका रज है ।

( इ ) शिष्य, उषिण — शिष्य, उष, तथा घम् को म् को ष् होता है  
यि अ या आ को ह्राइ उमके पूव् कोई स्वर या षवर्गीय वचन है । घम्के  
उच्चारण परोक्षभूतमें आयेगे ।

५। शिष्यति शिष्याम् — शिष्य लृत्, चकाम् लृत्, और शिष्या धातुके  
वतमान तथा लोट्के प्र पु के बहुवचनमें अनुनासिकका लोप होता है,  
और लृत्के प्र पु के व व में उभ होता है ।

६। शिष्यन् शिष्यन्, शिष्यान् शिष्यान् — शिष्यतया आकारान्त धातुयो  
के लृत्के प्र पु के व व में विकल्पसे उभ होता है ।

७। शिष्यान् शिष्यान् — लृत्के पूर्व धातुके अनुस्वरको गुण होता  
है, और आकारान्त धातुओंके आकारका लोप होता है ।

( इ ) शिष्ये, शिष्यम् — यकारात् प्रत्यय आगे रहनेपर धातुके  
अन्तिम म्का लोप होता है ।

( उ ) शिष्यात् — कार्त्त, शिष्यात् — धातुके अन्तिम मको लृत्-  
के म पु के र व में विकल्पसे तथा लृत्के प्र पु के र व में निवृत्त  
या इ हाता है ।

शिष्यात्—पर ।

वत ।

लोट् ।

र व द्वि व व व र ल द्वि व व व

प्र पु शिष्याति शिष्यात् शिष्यात् शिष्यात् शिष्यात् शिष्यात् शिष्यात्

लृत् ।

विधिलिङ् ।

प्र पु शिष्यात्, शिष्यात् शिष्यात् शिष्यात् प्र पु शिष्यात्—इत्याम् ।

नियम —

८ । इरिट्राके अन्तिम आ को व्यङ्गनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहने-पर ह होता है, तथा अन्तिम शिफारक प्रत्यय आगे रहनेपर उचका लोप होता है ।

अन् - पर ।

यत ।

लाट् ।

प्र पु अत्ति अत अन्ति म पु अट्टि अत्तम् अत  
लह् ।

प्र पु आइत् आत्ताम् आन्त् म पु आइ आत्तम् आत  
विधि ।

प्र पु अद्यात्—इत्यात् ।

नियम —

९ । आत्, आन्त्—अन्को प्र पु तथा म पु को एकत्रचननें अ-  
प्रागम होता है ।

वच्—पर ।

लोट् ।

यत ।

प्र पु यत्ति यक्त एव नष्टी होता वक्तु यत्ताम् यवन्तु  
म पु वच्चि वक्थ वक्थ यग्धि यक्तम् यक्त

लह् ।

प्र पु अयक्त् अयक्ताम् अयवन्  
उ पु अयचम् अयच्य अयन्म

विधि ।

प्र पु वचरात्—इत्यात् ।

१० । वच् एक लोपी धातु है । कुछ लोगोंके अनुसार इसके वतमान-  
को प्र पु को व थ का एव नष्टी होता । श्रीरोंक मतके अनुसार वच्

लकारांशे प्र पु को घ य में ह्रस्वका रूप नहीं होता, और अन्य सांगीक मतमें किसी पुरुषके उ व में ह्रस्वका रूप नहीं होता ।

अङ्ग—पर ।

वत ।

लोट् ।

प्र पु	मार्ष्टि	सृष्ट	सुनन्ति	माज्जन्ति	मड्ढि	मष्टम्	सृष्ट
म पु	मात्ति	सृष्टु	मष्टु		मार्जानि	मार्जाय	मार्जाय
		लट् ।					विधि ।

प्र पु अमाट् अमष्टाम् अमार्जन् सञ्जात् —इत्यादि  
नियम —

(क) त्रिकारक प्रत्यय आने रहनेपर अङ्गको नित्य लृटि आदेश जाता है, तथा अत्रिकारक प्रत्यय आने रहनेपर विकल्पसे ।

सृज् + वि = माज् + वि = माज् + ति (अ) = माक् + वि (ए नीचे)  
= माक् + वि = मार्ति, सृज् + वि = सृज् + वि (पाठ २७ वा, नियम  
१५) = सृष्ट् + वि (अ) = सृष्ट् + वि (या) = सृष्ट् + टि = सृष्टि ।

(घ) प्र तथा ट् को स आने रहने पर क होता है ।

अङ्ग—आ ।

यते ।

लाट् ।

	य. घ	द्वि य	ब य	ए व	द्वि य	ब य
प्र पु	चष्टे	चक्षते	चक्षते	चक्षाम्	चक्षताम्	चक्षताम्
म पु	चक्षे	चक्षाये	चक्षुर्	चक्षथ	चक्षायाम्	चक्षुर्
उ प	चक्षे	चक्षथ	चक्षथ	चक्षे	चक्षथथे	चक्षथथे

लट् ।

विधि ।

प्र पु अचष्ट अचक्षताम् अवक्षत  
म पु अचष्टा अचक्षायाम् अचक्षुर्

वश—पर ।

	वत् ।		लोट् ।
म पु	वक्षि उष्टु उष्टु उष्टु	उष्टु	उष्टु
	लट् ।		विधि ।
प्र पु	अवष्ट-ह ओष्टाम् ओष्टन् उष्मात् उष्पाताम् उष्म		

वश् + छि ( ११ नीचे ) = उष + छि ( अ ) = उष् + धि ( पाठ २० वा, नियम १२ ) = उष् + टि = उष्टि ( आ ), वश् + त = उष् + त = आ + उष् + त = आ + उष + त = आ + उष् + ट = आ + उष्टु = ओष्टु ।

११ अत्रिकारक प्रत्यय आगे रहनेपर वश्को व को उ होता है ।

वक्ष् + द्ये = वष् + द्य ( रे नीचे ) = वड् + ध्ये ( आ ) = वड् + ठे = वड्ठे ।

वक्ष् + से = वष् + से ( रे नीचे ) = वक् + से ( ए ) = वक् + र्थ = वक्षे ।

(रे) जब कोई धातु सयामान्त होता है जिस संयोगका प्रथम वक्ष् वा व् हो, तो उष् व् या व् का लोप होता है, यदि उसको आगे अनुनासिक वा अन्त स्थके चिन्ता और कोई व्यङ्गनाम् प्रत्यय हो, वा वह पक्षे अन्तमें हो ।

दृश्य ! समाश्रयिषिदि समाश्रयिषिदि । परिवृत्तमत्सरेणानुक्तिरिपताभिः पदेन । आप्यपुत्र खट्वेप ।

देव ! समाश्रयिषिदि समाश्रयिषिदि । कयमशायि नोच्छ्रमिति । ए विपसयि सीते । क्वामि ? सम्पाद्ययात्मनो श्रीत्रिवेण्ड्रम ।

युष धम्मगानरता विष्वासमूसय इति सर्वे यथा समाश्रे प्रस्तुवन्ति ।

दा नाय ! जीवितनिवन्धन ! आचक्ष्य क् सान्नेकाकिनौमशरवामः कक्ष्य ! त्रिमचय पाषि ?

य एतच्छास्त्रमिच्छतिः शास्त्रसत्त्वोक्तान् प्रैति स कृपयोग्य य एतच्छा  
साग्निः । शिञ्जितः प्रैति स प्राङ्मुखः ।

श्यामान् पृष्ठं काञ्चिन्नास्त्वाद्यष्टम् ।

माशङ्क्यमद्य मीनी वृद्धचारो य मे पिता ।

माता तु मम वन्द्यासौ पुत्रुश्च पितामहः ॥—

श्लेष वन्ती वाद्यातः ।

जातो ज्ञातो पशुत्कृष्टं तद्वि रत्र प्रवक्षते ।

यत्किञ्चान्तरमिति मनस्विद्यत्कारणम् ॥

वरिद्रुति विपद्द्रुमं कुसुमकान्तयस्वारका ।

यन्ध्यापितमहद्विषादि तीव्रं प्रवक्षते ।

अर्चनामौग्निवत्थ वपमपि च गिरामौग्निमहे पाठयम् ।

म हृष्टिगुह्यं मन्तव्या या दृष्टिः सयमावहेत् ॥

सयोऽपि बहु मन्तव्यो य नया दृष्टिमावहेत् ॥

न स सयो महाराज य सयो दृष्टिमावहेत् ।

सयः स त्विह मन्तव्या य लब्धा बहु नापयत् ॥

समृद्धा गुणत कोचिद् भवति धनसोऽपरे ।

धनवृद्धान् गुणैर्हीनान् धृतराष्ट्रं विप्रनय ॥

१ । अज्ञानं मयति अज्ञानं मीरते माणवक धम शास्त्रि माणवकी धम  
मिच्छते माणवक धम पृच्छति माणवकी धम पृच्छते मनि वापते वनवाम्, बलिद्यापते  
वसुधाम् समुद्रं मयाति सुगम् समुद्री मपत सुधाम्—नो न कृप वर दुह याच  
पच न्ना रभ प्रच्छु वित्रं शर्म नि मन्व मुव ये तथा इव अथकी और धान  
विष्णु क ह—अथान इतकी दी क्त लगत ह । कमपि वा भावप्रदीपमे नो ह कृप  
तथा न्ना प्रधानकर्म प्रथमाम रहता हे तथा अन्य धानुशक्ति गौलक्ष्म प्रथमाम  
रहता हे दूसरा कम मपथा ति तायामे हाता हे ।

अशान् पृष्टं दद्यात्—अशान् वह एक वन्तु, पूरता ह दर वह अहता हे दूसरो ।

धर्माय काममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम् ।  
 पूर्ववृत्त कथायुक्तमितिहास प्रचक्षते ॥  
 उभौ मे दक्षिणो पायी माखडोयश्च त्रिक्रम खे ।  
 तेन देवमनुष्येषु सद्यसाचीति मा त्रिहु ॥  
 नखिनोऽलगतसलिल तरल तद्दञ्जरीवितमतिशयषपलम् ।  
 विद्धि व्याघ्रभिमानप्रसक्त लोक शाकण्डत च समस्तम् ॥  
 पुनरपि छनन पुनरपि भरण पुनरपि जननौजठरे शयनम् ।  
 हृद सवारे भवदुस्त्वार कृपयाऽपारे पाहि सुरारे ॥

भगवति ! प्रसन्न हो मुझ अनाथकी रक्षा करो ।  
 हे महाराज ! सब प्रकारों आपकी स्तुति करती है ।  
 हे महाराज ! श्रीमू पौरुषे, विद्वान् योग करते है कि सम्बन्धियों-  
 को आम भृतशरीरका क्षलाते है ।  
 उसने उस स्त्रीसे कहा, "रीश्रो मत, धीरज धरो"  
 हाय ! वह अतक हीशमें नहीं आता ।  
 मैं तुमसे एक बात पूछता हू और तम वृषरी कहते हो ।  
 वह हमारा विग्रह है । वह सत्रा हमको योग्य उपदेश देता है  
 और मैं जो कहता हू उसको विरुद्ध कभी नहीं बोलता ।  
 राजा प्रनाथोंका स्वामी है । उसकी चाहिये कि वह अपनी प्रजाश्रीका  
 अपना कर्तव्य सिद्धाथ ।

धन्वाशब्द ।

अतिशय (अतिशय) पु — अधिकता आय्यपुन ( आयपुत्र ) पु — पूष्य  
 अभिमान (अभिमान) पु — मज (शहुर) का पुत्र (पतिने रुम्बो  
 आम (अः) पु — आमका पेड धनमें खिया प्रयाग करती है )

पूजयुक्त ( न कम०, पूज यिग० +  
वृत्, वृत् + त ) जो पहिले  
थीत चुका

परित्यक्त ( परि + त्यन् + त )—झोडा  
चुआ

प्रपन्न ( प्र + पद + त )—प्राप्त

ब्रह्मचारिन्—ब्रह्मचर्यव्रत करनेवाला

ब्राह्मण—ब्रह्म वा परमात्माको  
खामनवाला

भगदुस्साह ( तत्पु० भय—पु जन्म  
+ दुस्साह रि० )—सतत  
जन्मको कारण पार करनेमें कठिन

मोनिन्—मोनिवृत्त करनेवाला  
रत ( रम् + त )—लगा चुआ

वन्ध ( स्त्री वन्धा )—निष्फल,  
सन्ततिहीन

समस्त—सब

समाश्रित ( सम् + श्रु + इ + त )  
श्रनुसृत

ससृष्ट ( सम् + श्रु + तया स्त्रा  
पर + त )—पूण

सिद्धि—( सिद्धि + पर का धर्त  
कृ ) प्रेम करनेवाला

### धातु ।

धा + यद् ( धा + यति धा पर )  
—उत्पन्न करना

धाम् ( धास्ते धा )—बैठना  
द् ( यति ध पर )—जाना

ईद् ( ईद् + धा )—स्तुति करना  
ईन् ( ईद् + धा )—अधिकार  
करना

धत् ( धृ + धा )—कहना, धा  
तया प्र के साथ—कहना, वि

+ धा क साथ—व्याख्यान करना

=रिद् ( रि + धा पर )—रिद्  
धाना

यद् ( या + धा पर )—पोंछना,  
प्र के साथ—पढ़ना

प्र + श्रु ( प्राश्रित धा पर )—जीना  
या ( याति धा पर )—जाना

रु ( रो + धा पर )—रोना  
वच् ( व + धा पर )—बैठना

त्रि + श्रु ( त्रिविधयति णि चु० उभ )  
—झोडना

<p>शाय (जाति श्र पर) — श्रधिकार करना</p> <p>श्रम् (श्रयति श्र पर) — दाम लेना, श्र् यो माय — ( एच्छ विति) — श्राना लेना, श्रागमें श्राभा, श्रम् + श्राणे भाद — श्राना लेना, धौरुध धरना</p>	<p>म + भू ( मभायय धर ) — श्रान् करना, पशु चना</p> <p>श्रु (श्रोति श्राधीति श्रुते — श्रुवीये श्र श्र ) श्रुति करना, श्र यो माय — श्रुति करना</p>
---	--

श्रयय ।

<p>श्रकारणम् ( श्रु०, नाति कारण यस्मिन् कर्मणि यथा श्रातथा ) — श्रियाः क्रिषी कारणको</p> <p>श्रय — परन्तु</p> <p>श्रयन् — श्रयसे श्रयन् ( श्र् मय० + यन् — श्रयन् )</p> <p>श्रयि — तो</p> <p>श्रायन्शीयम् ( श्रय०, श्रै यनयन्तसेय श्रायन्शीयम् ( श्रवधारणवाचक समास), श्रायत् श्रय०, जयतक</p>	<p>+ लीय — यु ) — जयतक प्राण श्रै तयतक</p> <p>श्रायन्श्रयम् ( श्रय०, श्रायन्शीय यस्मिन् कर्मणि यथा श्रातथा, श्रायत् श्रय०, जयतक + श्रय यु ) — श्रय श्रयने</p> <p>श्रयमुवा ( श्रि + मुच् का श्रय भू श्रु ) — श्रोङ्कर, श्रिया</p> <p>श्रि — निशयसे</p>
--	---

पाठ २६ ।

स्योऽङि तथा श्रान्तिगणके धातु ।

गा दीग्धि पय — यद्य गायसे दूध दुहता है ।

( दुष्ट द्विकर्मक है । )

पिण्डमुत्सृज्य कर निटि — यद्य खानेको दधु छोड़कर दाय चाटता है ।



रिच - उभ ।

यत् पर ।

आत्म ।

म पु रिचक्ति रिचक रिचन्ति म पु रिचि रिचामे रिचिध्व

लोट पर ।

आत्म ।

म प रिचिध्व रिचकम रिचक म पु रिचिध्व रिचामाम् रिचिध्वम

उ पु रिचिधानि रिचिधात्र रिचिधाम रिचिधे रिचिधावहे रिचिधामहे

लङ पर

म प अरिचक्म

अरिचिक्ताम्

अरिचिञ्चन्

आत्म ।

म पु अरिचिञ्चया

अरिचिञ्चाम्

अरिचिञ्चयम्

विधि पर ।

आत्म ।

म पु रिञ्चयात्—इत्यादि

रिञ्चोत्—इत्यादि

रिच + ध्वम् = रिच ध + ध्वम् = रिचङ् + ध्वम् ( पाठ १३ यां नियम २ ) = रिचङ्गध्वम् ( नीचेके २ रे नियमका अनुसार व् का लुपुया ) ।

२ । पञ्च धौषर्मे नू तथा सुतो उवशे आग रचनेशाखे ख्यञ्जने (अ प, म् के विजा ) धगका अनुनासिक होता है ( २२ वें पाठका २२ नियम देखो ) ।

भिञ्ज - उभ ।

यत् पर ।

आत्म ।

म पु भिञ्जति भिञ्ज्य भिञ्ज्य म पु भिञ्जे भिञ्जते भिञ्जते

लोट पर ।

उ पु

भिञ्जानि

भिञ्जान्य

भिञ्जान्य

आत्म ।

म पु

भिञ्जाम्

भिञ्जाताम्

भिञ्जाताम्

लृट् — पर ।

म पु	अभिनत्त्	अभिन्ताम	अभिन्दत्
म पु	अभिन नत्त्	अभिन्तम	अभिन्त

आत्म ।

म पु	अभिन्त	अभिन्दाताम	अभिन्दत
म पु	अभिन्दयाः	अभिन्दायाम्	अभिन्द्वद्यम्

विधि — पर ।

म पु मि द्यात्—इत्यादि ।

आत्म ।

म पु भिन्दीत—इत्यादि

भिद् + टि = भिन्द् + टि = भिन्त् + धि ( २७ वा पाठ, १५ वा नियम ) = भिन्दि ।

द्विष्—पर ।

यत् ।

लोट ।

म पु	द्विनक्षि	द्विष्ता	द्विषन्ति	म पु	द्विषि	द्विष्ताम	द्विषा
-	-	लृट् ।	-	-	-	-	विधि ।

म पु अद्विनत्त् अद्विष्ताम अद्विषत् द्विष्यात्—इत्यादि ।

म पु अद्विन नत्त् अद्विष्ताम अद्विष्ता

३ । द्विष् + मि = द्विष् + मि = द्विष + मि = द्विनक्षि—यन् धातुमें अनुनासिक हो तो रुधाङ्गिगणो विकरणो पूर्व उभका लोप होता है ।

४ । अद्विन—नत्, अद्विनत्—लृट् को म पु को र य में धातुको अन्तिम स को विकल्पसे लृट् होता है, तथा लृट् को म पु को र य में निय ।

५ । द्विष् + टि = द्विष् + टि = द्विष् + धि = द्विष् + धि ( २८ वा पाठ ) = द्विषि ।

लिट्—अ वभ ।

या पर ।

आत्म ।

म पु खटि लीट् निट्नि म पु लिख लिहाय लीट्  
म पु खसि , लीट् उ पु लिखे लिट्ते लिखे

लीट्—पर ।

आत्म ।

म पु लीटि लीटम् लीट् उ पु लखे लेगायट् लेखामहे

लख्—पर ।

म पु अलेट् इ अलीटाम् अलिटन्

आत्म ।

म पु अलीटा अलिटाधाम अलीटम्

त्रिधि पर ।

आत्म ।

म पु लिट्वात्—इत्याम् । लिट्वात्—इत्याम् ।

लिट् + ति = लेट् + ति = खट् + ति = लेट् + धि = खट् + टि  
= खटि, लिट् + मे = लिट् + मे = लिक् + धे [ २८ वां पाठ, नि (ए) ]  
= लिक् + धे = लिखे, लिट् + धे = लिट् + धे = लिट् + धे = लीट् ।

अलिट् + त् = अलेट् + त् = अलेट् + अलट् = अलेट्—इ ।

लिट् + त ( भूत कृ प्रत्यय ) = लिट् + त = लिट् + ध = लिट् + ट  
= लीट् ।

लेटुम ( तम ), लीटा ( अथ भू इ )

लेटि, लीट्—

( अ ) अनुभासिक या अन्त ख्यको ह्रीङ् कौर्त्तं यद्भूत आये होनेपर, या पको अन्तर्मे होनेपर धातुके अन्तिम ट् को ट् होता है ।

( आ ) यगको चतुर्थ यणको, वा० आनेवाले प्रत्ययसम्बन्धी त तथा च को घ होता है ।

( इ ) ट् आगे रधन पर ट् का लोप होता है और उसके पूर्य रधन-  
याके स्वरको ( ऋ के सिवा ) दीर्घ होता है, यदि यह दृश्य हो ।

दुह-रभ ।

वत पर ।

यात्स ।

म पु धोक्षि दुग्धः दुग्ध म पु दुग्ध दुहति दुहते  
उ पु दोक्षि दुह्नु वृक्ष म पु युक्ते दुहाये युग्धुं

लोट्-पर ।

आत्स ।

म पु दुग्धि दुग्धम दुग्ध युक्त्वा दुहायाम् युग्धम्  
लङ्-पर । आत्स ।

म पु अधोक्तम् अदुग्धाम् अदुहन्ते म पु अदुग्धा अदुहायाम् अदुग्धम्  
विधि-दुहात्-रहीत ।

दुह् + त = दुष्ट + त = दुष्ट + ध = दुग्ध ( मृ कृ ), दुह् + तुम् =  
दोह् + तुम् = दोघ् + तुम् = दोघ् + धुम् = दोग्धुम्, दुह् + त्वा = दुग्ध्वा  
( अथ मू ऋ )-

( इ ) दोग्धि, दुग्धे-काराणि धानुश्रीके अन्तिम ष को घ् होता  
है, यदि उसके आगे अनुनासिक या अन्त स्वके सिवा कोई व्यञ्जन हो, या  
पक्ष अन्तमें हो ।

मुह् + त = मुह् - घ् + त = मुह् - घ् + ध = मुह् + त्, तथा मुघ् + ध  
= मुह् तथा मुग्ध मघ् + त = मघ् + त = मघ् + ध = मघ् + त् =  
मोट, नह् + त = नध् + त = नध् + ध = नह्, उपानह् ( पूता )-  
उपानह् - उपानहो - उपानह - उपानह्याम् - उपानह्यु -

( उ ) मुह्, मुग्ध-रह्, मुह्, मुह्, तथा स्निहके अन्तिम ह् को  
ट् वा घ् होता है, यदि उसके आगे अनुनासिक या अन्त स्वके कोई व्यञ्जन हो, या  
पक्ष अन्तमें हो । इसी प्रकार महुर्में गह् के ष को ध्  
दुगा है ।

( ऊ ) घट, घाटुम्—ट् आगे रहने पर लव ट् का लोप होता है तो घट् तथा वट् धातुओंमें उसके पूर रहनेवाले स्वरको श्री होता है । /

वृह + सि = दीहृ + सि = दीघ + सि ( इ ) = धोघ् + सि ( ए नाव ) = धाक् + सि = धाक् + सि = धात्ति ।

अहृह + म् = अतोहृ + म् = अतोहृ = अतोघ । ( ई ) = अघोघ् ( ए ) = अघोक ग् ।

( ए ) धोत्ति—जब धातुका कोई प्रत्यय ङ, ग, इ, वा ट् र् आरम्भ होता हो और उसके चतुर्थ चरम समाप्त होता हो तो घ ग, ङ, तथा इ का क्रमसे भ, घ् ट् तथा घ होता है, जब उसके आगे म वा र्घ्य हो, वा वट् पक्ष अन्तमें हो ।

वृह—म पर ।

वन ।

लोड् ।

प पु वृषेष्टि वृषट् वृहन्ति उ पु वृषहानि वृषहाव वृषहाम  
५ । अ वृषेष्टे ट्, अ वृषहसु—तट् धातुमें व्यञ्जनादि विकारक प्रत्यय आगे रहने पर अन्तिम वणके पूर्व न की वृक्ष न विकरण लगता है ।

सुकरैः शरण्याने पिता सां प्रायुक्त दुष्कर राज्ञे पुनश्चयाभिति रामो  
भरतमनश्रीत् ।

नियतमानस सर्व योगी सन्तमान युष्मन्नेवास्ते ।

सूता याक कामात् दुर्धसलक्ष्मीं विप्रकपति कीर्ति मूले दुष्कृत  
दिनसि च ।

पृच्छ तगलिका त्वरकृत मया यानुभूतावस्था । युगमद्वयमिवाचरन्  
कृष्णं चोतो विवस प्रवीत् । सकृत्पालप । हृत्पि विलोक्य । पूर्य  
मे मनोरमम् । आतांस्त भक्तास्त्वानुरक्तास्त्वनायासि वालास्त्वगतिकास्मि ।  
अथ किमपराह किं वा नानुभूत मया, कस्यां वा नाप्रायासाद्भूत, कस्मिन्  
वा त्वन्नुक्ते नाभिरत, प्रन कुपितांसि ।

मृष्यन्तु सद्यश्च वातिशता तातपादा ।  
 मधय भगवन् ! ऋद्धिरेण शपथ ।  
 ब्रह्मन् ! न चायुमेवितोऽय पन्था येनापि प्रवृत्त ।  
 एवमिध तपुलवमीर्नैव तान् ( मत ) मरुण्टि ।  
 सम्भासितश्च चाकौत्तिमरथाइतिरिष्यते ।  
 गित्तहस्तस्तु नोपयाद्राजानं देवत तुदम् ।  
 रिशन्ति सन उक्थोय विदिनश्च त्रिय १ सुतान् ॥

किं वस्तु द्विद्वन् गुरव प्रण्य

त्वया कियद्द्वोत तमन्वपुह्क्त ॥

वेदि भेषजश्रियाय या पथ्यानि कटुनापि ।  
 तत्रप सेवत चासाप कश्चिन्न च मीति ॥  
 गन्धेन ग्राय पथ्यन्ति ये पथ्यन्ति ये द्विना ।  
 चारे पथ्यन्ति रायानश्चतुर्भ्यामितरे जना ॥  
 वृणानि भूमिद्वक वाक् चतुर्थी च मूनता ।  
 मतामेतानि हर्म्यु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥  
 यो म च स्वामिना भिन्द्यात् सार्चिष्य सनिपाजित ।  
 स हत्या नृपकाय तत् स्वय च नरक व्रजेत् ॥  
 न यज्ञानोऽपि गच्छन्ति ता गति नैत्र योगिन ।  
 यो यान्ति प्रोङ्गितप्राणा स्व न्ययै सेवकोत्तमा ॥  
 पद् दोषा पुनपेयेष्ट हातथा मृत्तिमिच्छता ।  
 निद्रा तत्रा भय क्रोध आलस्य त्रौघसूतता ॥  
 श्रक्तिञ्चिपि कुशाण भोखैरदु खान्यपोहति ।  
 तत्तस्य किमपि द्रव्य यो हि यस्य प्रियो जन ॥

१. यो भय का ए व है, दुभाम् तप व, दुपुस व व । अन्ननापि  
 पान्दुपुन पर निव की दु हीता ॥

आत्मा गती भयममुष्यतीया  
 सयन्ना ग्रीवाटा इयामि ।  
 तगुणगाह कुह पाण्डुपुत्र  
 १ धारिणा श्रुध्याि धान्तरारमा ॥

काह भी प्रगुर्धिका न मार । यह एक बड़ा धार्मिक काव्य है ।  
 श्रुकी सेनाक उष नगरको घर लिया ।  
 उसने उससे पूछा, क्या तुम अच्छे हैं  
 हमर कृतीका हम खाटने हैं ।  
 उसने गायको दुष्ट और दूध दिया ।  
 मैं कानिमा अपराध किया है जिसमें आप मुझपर कीप कात हैं ।  
 मुंहारे निमित्त हमन बहुत दानि मही ।  
 विष्णुं एक दिन उपार मुगशि समान मालूम पड़ता है ।  
 मैं अनाथ हू । तुम्हें कोई आश्रय नहा । कृपाकर मेरी सहायता  
 कीजिये ।

### सङ्घागन्ध ।

अरख्यवान ( तत्पु०, अरख्य न धन + वान—न जाना )—उनमें जाना	अप्रसाह ( अप्रसाह ) पु —मान अप्रस्था ( स्त्री )—स्त्रिति अन् ( अन् ) पु —अन्
अन्तरात्मन् ( तत्पु०, अन्तर—विशे० भीतरो + आत्मन् पु )—भीतरी आत्मा	कमि ( पु , स्त्री )—तरङ्ग, लहर गति ( स्त्री )—मरनके बाद जानकी जाग
अभूमि ( स्त्री भूम० ) अज्ञान, अध्याय स्थान	गो ( पु , स्त्री )—घैल , गाय चार ( चार ) पु —घर
अलक्ष्मी ( स्त्री ) वैरिद्रता	तद्ग्री ( स्त्री )—आलस्य

तारनिका (स्त्री) — एक स्त्रीका नाम	यज्वन् ( पु ) — यागकर्ता
वृष ( वृषम् ) न — घाघ	यजन (यवन) पु — यवन, स्लेच्छ
खिव ( स्त्री ) — खग	युग (युगम्) न — सत्य, द्वापर, त्रेता, कलि, इन चार युगोंमें एक युग
स्त्रीप्रसूता ( स्त्री ) — बहुत धीरे २ काम करना	योगिन ( पु ) — योगी
दुष्कृत ( दुष्कृतम् ) न — पाप	लव ( लव ) पु — रामका पुत्र
देवत ( देवतम् ) न — देवता	शील ( शीलम् ) न — सद्वृत्त
द्रव्य ( द्रव्यम् ) न — बहुमुख्य वस्तु	सद्यस्त ( सद्यस्तम् ) न — द्वापर
पथ्य ( पथ्यम् ) न — आरोग्यको लिये हितकारी वस्तु	सावित्र्य ( सावित्र्यम् ) न — मन्त्रीका पद
पायु ( पु ) — माखड्योका पिता	सारमेय ( सारमेय ) पु — सरमाका पुत्र कुत्ता
पिण्ड ( पिण्ड ) पु — धानेकी वस्तु	सौघ्य ( सौघ्यम् ) न — मुख
शालिशता ( स्त्री ) — मूत्रता	हरौतकी ( स्त्री ) — हरा
भूति ( स्त्री ) — सम्पत्ति, उन्नति	हृष्य ( हृष्यम् ) न — महल
भेषज ( भेषजम् ) न — औषध	हृषिम ( न ) — होमद्रव्य
मन् ( मन् ) पु — मलाह	हृद ( हृद ) पु — गहिरा स्थान
मानस ( मानसम् ) न — मन	

विशेषण ।

अगतिक ( बहु०, नास्ति गतिपद्या  
सा अगतिका, अ + गति स्त्री +  
अनाथ ( बहु०, अनाथाय पु ) —  
बिना



अनुभूत ( अनु + भू + त )—भागा दुःशा	नियुक्त ( नि + युच् + त )—लगा दुःशा
अनुरक्त ( अनु + रञ्च् <sup>१</sup> ) रञ्जा, रि रञ्ज रञ्जति रञ्जतं, रञ्जति तं + त )—अनुरागी	प्रनेय ( प्र + दा + य )—देने योग्य प्रवृत्त ( प्र + वृत्—भ्वा आ + त ) —लगा दुःशा
अनुष्ठित ( अनु + स्था + त )—कृत	प्रोज्झित ( प्र + ज्झ् + त )—त्यक्त
अपराह ( अप + राघ — रि + त ) —अपराधी	भक्त ( भक् + त )—भक्त
अभिरत ( अभि + रम्—भ्वा आ त )—अनुरक्त	रिक्तदृष्ट ( प्रदु०, रिक्त, रिच् + त— पाली + दृष्टा दाय )—पाली दाय
आहृत ( आ + हृ हु आ )—आन्त्र क्रिया गद्या	सनियोजित ( स + नि + युज् प्रेर० + त )—लगाया गद्या दुःशा
आप्त—प्रिश्चस्त	समाश्रित ( स + श्रू—प्रेर० + त )— प्रतिष्ठित
फटु—कटुवा	सुकर—करनेमें सुगम
किमपि—कोई अत्ररुनीय वक्षु ( क्षुय वा घृय )	सूनू—सत्य तथा मनुष्य वाखी
क्रियत्—कितना	सञ्चित ( सञ्च्—भ्वा आ + त ) —आश्रित
कुष्कर—करनेमें कठिन	हातव्य ( हा + तव्य )—कोड़ने याग्य
नियत ( नि + यम् [ यच्छ ] + त ) नियन्वित	

१। दसति सजति सजति सजति ते रज्यति ते—रञ् पर, सञ् पर सञ्ज आ  
रञ्ज सञ्ज इन धान्धीके अनुनासिकका, विकरण आवे रञ्जनेपर लाय होता ॥

धातु ।

अण् + ऊह् ( अणोहति—भ्वा पर ) —नष्ट करना	प्यालौ होना, अतिके साथ ( कर्मणि )—अटकर होना, किमीसे बढ़ा होना
आ + लप् ( आलपति—भ्वा पर ) —बोलना	रुध् ( रुधति रुद्धे रु उभ )— रोकना, समूचे साथ—रोकना
उप + इ ( उपैति, अ पर )—पाम छाना	लिह् ( लिहति लीहे लि उभ )— चाटना, प्र तथा अत्र के साथ —चाटना
क्लिन् ( क्लिनति क्लिन्ते रु उभ )— काटना, उदृक्के साथ—काटना	वि + विञ् ( विविनक्ति वृक्ते—रु उभ )—विचार करना
तप् ( तपति, भ्वा पर )—तपना हुह् ( श्रिध, हुग्धे अ उभ ) —हुहना	वि + प्र + कृष् ( प्रिक्रपति, भ्वा पर )—दूर ले जाना
पूर् ( पुरपति चु पर )—भाना	वि + लक् ( विलाकपति चु पर ) —देखना
भिद् ( भिनति भिन्ते रु उभ )— टोड़ना	वञ् ( व्रजति भ्वा पर )—छाना
भुञ् ( भुनक्ति रु पर )—रक्षण करना, उपभोग करना, (मुह्क्ते रु आ )—खाना	शुध् ( शुध्यति दि पर )—पवित्र होना
सृष् ( सृष्यति ते, स्रपयति-ते ङि, चु उभ )—समा करना	सृ [ स्रीड् ] ( सीरति, भ्वा पर ) —नष्ट होना
युष् ( युनक्ति युह्ते रु उभ )— जोड़ना, उ	सेव् ( सेवते—भ्वा आ )—सेवा करना
निके	द्विष् ( द्विनष्टि—रु पर )—नष्ट करना
रिच् ( रिचति )	

श्रवणम् ।

दधन्—दोहा

उत्तम्य ( उद् + मृन् का श्रवणं मृ  
णु )—इ इतर

जगन्वित्—कर्मो

हृत्कृण ( हृच्छ्र्ण कौ वृ ष ष )—

कठिनतामे

तन्धम् ( च तत्पु०, तस्मै इ इ यया

स्यात्तथा, क्रियाविशेषे० )—

उपका लिये

त्यस्कृ ( ताप्ठु०, तय कृते, त्वङ्—  
मव०, + कृते—इ, ष ) हुम्कार

निमित्त

सकृन्—एक बार

पाठ ३० ।

चुष्ट त्याग् मय ।

देहि मे पतिवचनम्—हमको उत्तर दो ।

शृणान विभेत्प्रथमोऽथ—यह धीर मरघसे नहीं डरता ।

पाथरे हृद्विर्जुह्वधि—अग्निमें हामद्रव्यका होम करा ।

लोकस्य कोनादन उद्विज्जोत—लोगोंका क लाएल उठा ।

अवधत्ता देवो हवीं च—महाराज श्वर सधाराही ध्यान में ।

न न म य य युतेय मालिनी भोगिलोके—न, म, य, य, तथा य,

इन गणवि युक्त मालिनी भय तथा लोकासे ( ० तथा ८ अक्षर क्रोिक ०

मय तथा ८ लोम है ) = जिवमें न, म, य, य, तथा य, ये मय हो, तथा

० ८ अक्षरोंपर यति जा विगम हो, उसे मालिनी हृन्द कहते हैं ।

मालिनी एक हृन्द है । तीन अक्षरोंका एक मय होता है । अथी—

लिखित पाठ मय हीन है—

म स्यगुरुस्तुल्युध मकारो भाग्निगुरु पुरगान्तिधुर्ये ।

जो रुधमथगाता रत्नमथ सौज्यगुरु कपितोऽन्तलघुस्त ॥

सगणमें ३ गुरु, तथा नगणमें ३ लघु होते हैं। भगणमें आऱि गुरु ( और दूधरे दो लघु ), पगणमें आऱि लघु ( और दूधरे गुरु ), छगणमें मध्य गुरु ( और दूधरे दो लघु ), ङगणमें मध्य लघु ( और दूधरे दो रुरु ), षगणमें अक्षर गुरु ( और दूधरे दो लघु ), तथा तगणमें अक्षर लघु ( और दूधरे दो गुरु ) होते हैं।

दूधरेको लघु, तथा दीर्घको गुरु कहते हैं। यदि सयोग आगे हो तो पूरु षऱ गुरु समझा जाता है। पऱके अक्षरका अक्षर लघु होनेपर भी गुरु कहता है।

ल=लघु, ग=गुरु।

हृन्दमे कुकऱके आऱि यति वा विराम होता है। मालिनीमें ८ तथा ७ अक्षरोंपर यति है।

सकृतमें लसो हृन्दके पाऱमें प्राय हृन्का लक्षण फटा जाता है। इस प्रकार मालिनीके पाऱका यह लक्षण हुआ —

। । । । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ  
न न म य ध यु से य ॥ मालिनीभोगिलोकै ॥

। चिन्ह लघुका ऽ गुरुका, तथा ॥ यतिका चिन्ह है।

इस पाठमें लुप्तोच्चारण गणके धातुओंका वरण किया गया है। इस गणमें प्रथम खगनेके पूरु धातुओंको द्वित्व होता है। लिट्वा पराक्ष-भूतमें भी धातुओंको द्वित्व होता है।

द्वित्वके सामान्य नियम ।

अड्—अ अड् अड्—अड् अड्, भी—भी भी, पच—प पच ।

नियम —

१। खराऱि धातुओंमें खरको, तथा वृद्धनाऱि धातुओंमें अग्रिम खरके प्राय वऱजनको द्वित्व होता है।

तड—ततड णी—णीकी. इम वरम । नियम —

२ । मधुताजि धानुको र्प्रसहित पृथक्प्रसक्तो द्वितीय होता है ।

कृ-कृकृ कृकृ-कृकृकृ, नी-नीनी ।

नियम —

३ । यदि धानुस धानुमें मधुता हो त्रिबन्त प्रथम वरत अ, ए, आ न हो और द्वितीय वरत अयाए हो, तो र्प्रसहित उन प्रयोग वरको द्वितीय होता है ।

४ । द्वितीयको पृथक् भागको अभ्यास कहता है—

त्रि-जिजि कृ-कृकृ, गाम-घा गाम ।

अभ्यासमें परिवर्तन ।

( अ ) मो-भीमो-धिभी, नी-नीनी-निनी, धा-धाधा-धधा ।

( आ ) कृ-कृकृ-कृकृ, कृ-कृकृ-कृकृ ।

( इ ) खन-खखन-कखन, द्वि-द्वि द्वि-द्विद्वि-  
'द्विद्विद्वि', मो-भाभा-भिभी-धिभी, धा-धधा-धधा-धधा ।

( ई ) कृ कृकृ कृकृ कृकृ, कृ कृकृ कृकृ कृकृ, कृकृ-कृकृ-कृकृ-कृकृ ।

( उ ) कृ कृकृ कृकृ-कृकृ, कृ कृकृ कृकृ-कृकृ ।

१ । मधु मधुताया शिष्याया चिन्तित् विद्वत् ( नि-म वा ए पु ए व )—  
नव कक पूव प्रव नर रदता है तो उसको च्च हीता है । चिन्तित् ( यदन्-वत्-प्र  
पु ए व )—यत् क क पूव नीच ही गा भी मधुता च्च हीता है । लक्ष्मीनाथ—कृताया  
पर आस्था यति मा चिन्ति-नधुताका इ पत्रक च्चमें है । शक्ति समानके अन्वय वर  
पर समझ जाते हैं और चिन्तित् कृताया वर पत्रको विभक्तियोंका भाग हीता है । या  
तथा मा मा पत्र है कृताया अन्वयक वा विभक्ति आकर उसका लोप हीता है । क क  
पुव यत् हीच ही और वर पत्रके अन्वय ही तो विकल्पसे, पर या तथा मा यत् पूव ही भी  
निय च्च हीता है ।

निघम —

३। (अ) पू पूपू पुपू, मील् मीमील् मिमील, वा—जाजा  
जजा—अभ्यासके दीर्घको दृश्य होता है ।

(आ) तू तूत तूतू ततू—अभ्यासके श्च को अ होता है ।

(इ) फन् फफल—पफन्, भन् भभज उभन—वगयो द्वितीय वर्यको  
प्रथम वण, तथा चतुर्थको तृतीय वण होता है ।

(ई) गग् गगग् जगद, घम् कक्षम् चक्षम्—कश्चमीय वणको वचो  
सख्याका चतुर्थीय वण होता है ।

(उ) हन हहन्-जहन् ह् का ज् होता है ।

भू उभ ।

पर वत ।

श्रात्म ।

प्र पु	विभति	विभृत	विभ्रति	विभते	विघाते	विघते
म पु	विभयि	विभय	विभय	विभये	विघाये	विघये
उ पु	विभमि	विभय	विभम	विभे	विभयते	विभमते

सह-पर ।

श्रात्म ।

प्र पु	अविभ	अविभताम्	अविभक्त	अविभृत	अविघाताम्	अविघत
--------	------	----------	---------	--------	-----------	-------

लोट पर ।

श्रात्म ।

प्र पु	विभतु	विभताम्	विभ्रतु	उ पु	विभरे	विभराज्हे	विभराम हे
--------	-------	---------	---------	------	-------	-----------	-----------

विधि पर ।

आ ।

प्र पु विभवात्—इत्यादि ।

प्र पु विधीत—इत्यादि ।

द्वी—पर ।

वर्त ।

लोट ।

प्र पु	विधति	विधीत	विधियति	उ पु	विध्यात्	विध्यात्	विध्यात्
--------	-------	-------	---------	------	----------	----------	----------

प्र पु अचिहति लङ् । विधि ।  
 अचिहति अचिहताम् अचिहयु अचिहयात्—इत्यादि ।  
 दा—पर ।

प्र पु अदति अदित—अदत अदति  
 लोट ।

प्र पु अदामु अदिताम्—दीताम् अदतु  
 म पु अदाहि अदिति अदीहि अदितम् दीतम् अदित इति  
 लङ् । विधि ।

प्र पु अजदात् अजदिताम् दीताम् अजहु अज्यात्—इत्यादि ।  
 नियम —

६। अजिति इत्यादि—साधुधातुक लकारोमें अको द्वित्य दाङ्  
 विभ होता है ।

७। अजिति, अजितु—पर प्र पु अ अ में नृ का लोप होता है ।

८। अजिमह—लङ् लो पर प्र पु के अ य का प्रथम उम् है ।  
 उच आगे रहने पर धातुके अन्तिम स्वरको गुण्य होता है और आ का लोप  
 होता है ।

९। अदित—दीय, अदति, अदात्—त्यागात्का पर दा को प्राप्ति  
 कञ्जनादि अधिकारक प्रथम आगे रहनेपर इ दा ई होता है, तथा  
 स्वरानि अधिकारक प्रथम आगे रहने पर और विधिलिङ्गमें उच आ का  
 लोप होता है । लोटके प्र पु के अ य में तीन रूप होते हैं—अदाहि,  
 अदिति, अदीहि ।

अदो + अति—इ को इय होता है । क्योंकि उचके पूर संयुक्तात्तर  
 है—अदियति ।

भी—पर ।

वत् ।

प्र पु द्विभेति द्विभित—द्विभीत द्विभ्यति

लोट् ।

भ पु द्विभिदि द्विभीदि द्विभितम् द्विभीतम् द्विभित द्विभीत

लट् ।

प्र पु अद्विभेत् अद्विभिताम् अद्विभीताम् अद्विभ्यु

द्विधि ।

प्र पु द्विभिपात्—द्विभीपात् ।

नियम—

१० । व्यञ्जनाणि अद्विभारक प्रत्यय आगे रहनेपर भीके स्वरकी विकल्पसे द्रष्टव्य होता है ।

मा—आत्म ।

दा—आत्म ।

वर्त ।

वत् ।

प्र पु मिमीते मिमाते मिमते जिहीते जिहाते जिहते

उ पु मिमे मिमीवहे मिमोमहे जिहे जिहीवहे जिहीमहे

लट् ।

लट् ।

प्र पु अमिमौत अमिमाताम् अमिमत् अजिहीत अजिहाताम् अजिहत

लोट् ।

लोट् ।

भ पु मिमीष्य मिमाषाम् मिमीष्यम् जिहीष्य जिहाषाम् जिहीष्यम्

द्विधि ।

द्विधि ।

प्र पु मिमीते मिमाते मिमते जिहीते जिहाते जिहते । प्र पु जिहीत—इत्यादि ।



नियम —

११। मिमे जिह्—मा तथा ममनायक इा आत्म धातुमीश भाउ धातुक लकारमे द्विच्य इा कर मिमा तथा जिह्वा दाता ऐ ।

१२। मिमात, मिमते, निहीये, जिह्नासु—मा तथा ममनायक एा आत्म के आ को धातुनामि अयिकारक प्रथम आगे रहनेपर ह होता है, तथा ध्वरामि अयिकारक प्रथम आगे रहनेपर उमका लाप दाता है ।

हु—पर ।

यत् ।

लोट ।

म पु जुहाति जुहुत जुचति म पु जुहुधि जुहुतम् जुहुत  
लट । जिधि ।

म पु अजुहात् अजुहुताम् अजुह्यु नहुयात्—इत्यामि ।

नियम —

१३। लाटके मध्यम पुरुषो ष य का प्रत्यय धि है । २७ वे पाठमें १५ यो नियम देखा ।

न—उभ ।

पर वत् ।

आत्म ।

म पु ऋति दत्त ऋति दत्ते दत्तात् दत्ते  
म पु दत्तसि दत्त्य दत्त्य दत्ते दत्ताये दत्त्ये

लोट—पर ।

आत्म ।

म पु देहि दत्तम् दत्त दत्तय ऋत्याम् दत्त्यम्  
उ पु ऋति दत्तय दत्ताम् दत्ते दत्ताये दत्तामहे

लट—पर ।

आत्म ।

म पु अत्तात् अत्ताम् अत्तु अत्त अत्ताताम् अत्त  
उ पु अत्ताम् अत्तह अत्तध अत्ति अत्तुहि अत्तहि

त्रिधि ।

पर

आत्म ।

प्र पु दधात्—इत्यादि ।

दधीत—इत्यादि ।

धा—उभ ।

वत—पर ।

आत्म ।

प्र पु	ॠधाति	धत्	ॠधति	धत्ते	दधाते	दधते
म पु	दधाधि	धत्य	धत्य	धत्से	दधाधे	धदधे
व पु	ॠधामि	दध्वः	ॠधम	दधि	दध्वहे	दधमहे

लोङ्—पर ।

आत्म ।

म पु	धेहि	धत्सु	धत्	धत्स्र	दधापामु	धदधसु
------	------	-------	-----	--------	---------	-------

लङ्—पर ।

आत्म ।

प्र पु	अॠधात्	अधत्ताम्	अधु	अधत्	अदधाताम्	अधत्
--------	--------	----------	-----	------	----------	------

त्रिधि ।

प्र पु दधात्—दधीत—इत्यादि ।

नियम —

१४ । (अ) दद्, दध्म —कञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर वा तथा धाको दद् तथा दध् होता है ।

(आ) दॠति, दधतु—स्वरादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर इनको आका लोप होता है ।

(इ) धत्य धत् —अनुनासिक वा अन्त स्वरको ङाङ् और किसी कञ्जने आरम्भ होनेवाला अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धाको धत् होता है ।

(ई) दधि तथा धेहि लोट्को म पु को व व को रूप है ।

## निर्गुण—उभ

उत्तर पर ।

आत्म शोच ।

प्र पु मेनक्ति मेनक्ति नेनिति उ पु ननिने ननिजावहे ननिजामहे

लक्ष् पर ।

आत्म ।

प्र पु अननङ्गु अनेनित्तामु अनेनित्त अनेनित्त अननिजातामु अननिजत

उ पु अननित्तम् अननित्तम् अनेनित्तम् अनेनित्तम् अनेनित्तम् अनेनित्तम् अनेनित्तम्

विधि ।

प्र पु ननिश्चात्, ननिञ्जीत इत्याम् ।

इषो प्रकार यत्कि, वैवष्टि इत्याम् ।

१५ । मनक्ति, ननिञ्जे—निच, विज्ञ, तथा विष् धातुमें अभ्यासके स्वरका गुण जाता है, स्वरान् विहारक प्रत्यय आगे रहनेपर इन धातुओंके उपान्त स्वरका गुण नहीं जाता ।

अभारत् ससारा मन उद्विजते ।

कथा विधाय शान्त पाप शान्त पापमित्यत्रयोत् ।

दृ रशब्दाऽनु विचक्षुकेषामिधत्ते ।

वधुधा मयमाधानाशब्दाया अतुरण्ये चरन्ति ।

अय पुत्रुक्तको मृगसो पर्वी न जहाति पथ ।

रघुधनुष्यमाघ सायक समधत्त ।

अनन समयन परिणता िवष ।

वेवष्टि द्य प्रीति विन्दमिति विष्टु ।

गुरा पापघनानित्तम् ।

सद्वक्षगुणमरक्षप्रमात्त हि रम रति ।

छठर को न शिभति कोशलम्  
 प्राय शुभ च जिन्धापशुभ च छन्तो  
 सत्रंङ्कपा भगवतो भवितव्यतेषु ॥

अशिनोत ! कि नोऽप्यनिद्रिमेपाणि मत्स्यानि शिवकनेपि ? इन्त !  
 यधते ते सरम्भ ! ख्याने यन श्पिप्रनन सत्रदमन हृति कतनामधेयोऽधि ।

पुण्यानि हि नामग्रहणानि मुनीनाम् । कि पुनश्चनानि ? धन्यमिदं  
 माश्रमपशमपमधिपतिर्यतु । पुण्यभात्र खल्वमो मुनयो यन्निश्चयेनमपरमित्य  
 मतिनाघन मुखाश्लोकननिघल एष पुण्या कथा शृण्वन्त समुपासते ।

श्रीशुक्लायत मापीष्ट दत्तात्ते मेऽपि शर्म च ।  
 सुख वां नो ददात्वोशः पतिर्धामपि नो हरि ॥

मातेऽ रक्षति पितय दिते नियुहते  
 भार्यथ चाभिरमपत्यपनोय खेम् ।  
 कीति च श्लु शिमला शितनोति तदर्थी  
 कि कि न साधयति कल्पलतेत्र विद्या ॥

ददतु ददतु गालीर्गा'लमन्तो भ-न्तो  
 यपमपि तन्भाशाद्गालिदानेऽसमर्था ।

अगति विन्तमंतद्वापत विश्रमान  
 न हि शशक्येषाण कोऽपि कर्म इन्ति ॥

सकृदुच्चरित येन हरि'रत्यस्तरह्यम् ।  
 बह्व परिक्करस्तेन साक्षात् गमन प्रति ॥  
 प्रकृत्येऽ प्रिया सीता रामस्यासी'महात्मन ।  
 प्रियभाव स तु तया स्वतत्परय धर्मित ॥  
 तपेव राम सीताया पारम्योऽपि प्रियोऽभवत् ।  
 हृदय हरेय जानाति प्रीतिपीत पःस्परम् ॥

रासने इत्यानुसार गदमली मोताकी गिउन वनय होइ ।

रे पापी ! का गुभे यद पाराय वयन कदन खन्दा नदी आती ।

यामकनोशने अगुमें आहुति भे ।

ए प्रमा ! शृपा का पुभे अति शीजरे ।

एव मोताकी घाहिये कि आव बुद अतिघिया आमन तथा छतछे  
सरकार कर ।

गुमका अपन भीररो अशनीको पाय लङ्गने लिये तैयार होना चाहिये ।

भरा मिनु मुर्क प्रालय भी अपिक प्रिय था ।

यदा अंगमण राजाका बोध कराता है ।

दूध लय तधुर दे किर चीनी मिलानेपर का पूहनै (किं पुन) ?

उम आगमन लोच मुनिकी अपने पुनूध किमोप्रकार भिन्न न भि  
( 'अपयनिदिशे'का प्रयोग करा ) ।

सङ्गताजिह्वा ।

अधिपति (पुं) — स्वामी

अजनाकन (अजनाकनम्) न — शृष्टि

आश्रमप (आश्रमपम् न तत्प०,

आश्रम पु + प — न ख्यान)

— गपाउन

कलकता (स्त्री अश्रमपलोवी

समा० अश्रमपिका लता) —

एक लता जो मग मनोरथीको

पूरा करती है

कालादल (कोलादल) पु — शेर

गाधि (स्त्री) — गाली

हाया (स्त्री) — हाया

जनु (पु) — प्राली

मलिनाशन (मलिनाशन — पु छहु०,

गलिन न कमल + आशन न )

— कमल जिसका आमन है,

ब्रह्मण्य

नामधेय (नामधेयम्) न — नाम

(धेय एक प्रत्यय है जो अचमें

कोइ भे नदी कता, नाम

एव नामधेयम्)

पदी (स्त्री) — माता

परिकर ( परिकर ) पुं —कमरबन्द  
 ( बहु परिकरस्तेन = उसने  
 कमर बांधी )  
 पायक ( पायक ) पुं —अग्नि  
 पुत्रकृतक ( पुत्रकृतक ) पुं —रत्नक पुत्र  
 प्रकृति ( स्त्री )—स्वभाव  
 प्रतिग्रहण ( प्रतिग्रहणम् ) न —उत्तर  
 प्रियभाव ( प्रियभाव ) पु —प्रिय चीना  
 प्रीतियोग ( प्रीतियोग ) पु —प्रेमका  
 वस्थन  
 भयितकता ( स्त्री )—घोनहार

कणु ( पु )—मरण  
 रम ( रम ) पु —खल  
 विषाण ( विषाणम् ) न —भीम  
 शशक ( शशक ) पु —घरहा  
 रंरम्भ ( रम्भ ) पु —क्राध  
 मख्य ( मख्यम् ) न —खीत्र  
 सज्जनन ( पु )—दुष्यन्तशो पुत्रका  
 माय ( स्त्री मज्जो इवाता दै  
 यदृ )  
 मायक ( सायक ) पु —घाण

विशेषण ।

अर्भोघ ( नज०, अ + मोघ  
 निःफल )—सफल  
 अमार ( बहु० )—नि सार, तुच्छ  
 धन—भाग्यशान्  
 निश्चल—अचल, स्थिर  
 निविशेष ( बहु०, निगत विशेष

ः येभ्यस्तानि, निविशेषाणि, निर् +  
 विशेष—पु मेः )—भेदरहित,  
 ममान  
 पुण्यभाषु—पुण्यदान्  
 सज्जुष ( स्त्री —धा ) — सशको  
 श्वानेशाना

धातु ।

अप + नी ( अपनयति ते ष्टा उभ )  
 —इटाना  
 उद् + विञ्ज ( उद्दिनते—तु आत्म )  
 —घञ्ङाना  
 दा ( ददाति ष्टे तु उभ )—देना,  
 आशे साय ( आत्म )—लेना

धा ( ष्धाति धत्ते—तु उभ )—  
 पकटना, रखना, अशिशे साय—  
 रखना, करना, उत्पन्न करना,  
 अपिशे साय—बन् करना,  
 अभिशे साय—कटना, प्रकट  
 करना, अवशे साय—घान

देना, यि के माय—करना,	यिष् ( यिष्ति-यिष्टि जु उभ )—
मम् वा माय—सिमाना	धेना, माय करना
निष् ( नरति ननित्त व उभ )—	मम् + चप + धान् ( ममुपाधो—य
धाना, यय व धाय—धाना	धा )—पूजा करना
म, विभक्त विभक्त जु उभ )—रना	माय ( माययति धु पर )—विष्ट
विष् ( ययक्ति ययिक्त जु उभ )—	करना
अध्या करना	धा ( जिहति जु धा )—जाना,
यि + प्र + कृ ( विप्रकरति—कुरुते	उष् क माय—चटना, चठना
तना उभ )—दिगाडना	धु ( जहाति ज पर )—होम करना
	धा ( जिहति—धु पर )—सजाना

अक्षय ।

अहनिशम्—निरात	जाना पाणम्—इसा टले
उत्सृष्टम् ( उद् + श्रु + म् )—	मदधगुलम्—( मद् + गु, मदध गुला
कृद्मश विष्, = मर विष्	यमित् कर्मणि यथा ध्यातर्था,
कि यन—किनाग अधिक ? इच्छे	मदध न इजार + गुल पु )
अयमि तपा अतिशयका बाध	—इजारगुना
होता है । )	ध्याने—योग है
पथात्—अन्तर	इत्त—इय ! वाह ! ( यह शोक
घटुधा—अनक प्रकारसे	या उभसे आता है । )

पठ ३१ ।

द्विषेयण तथा क्रियाद्विषेयण ।

एकादश क्त्वा द्वादशात्त्रिंशत्—एतत् क्त्वा शौर द्वादश भूय है ।

माययना ब्राह्मणानां विद्यते च त्रिंशत्त्रयस्य—माययनन घोष ब्राह्मणा  
का त्रिंशत्त्रयस्य ।

रघुवशे कुमारममत्रे च यथाक्रममेकीनविशति सप्तदश च सगा —रघुवश  
तथा कुमारममत्रमे क्रमसे उन्नौष तथा सृष्ट सग है ।

जालान्तर्गते रश्मी यत् सूक्ष्म रजो दृश्यते तस्य त्रिशत्तमो भाग परमाणु  
कथ्यते—भूतेष्वमे शानेशाले क्षिरणमे चो सूक्ष्म कथं विखाइ देता है  
उसका तोषडा इहासा परमाणु कहाता है ।

सीता प्राणभ्योऽपि प्रेयसो रामस्य—सीता रामका प्राणोंसे भी अधिक  
प्यारी थी ।

कञ्चित् कामप्रवेत्ने—( श्रवण ) 'कञ्चित्' अपनी इच्छा प्रकाश करनमें  
प्रयोग किया जाता है । अर्थात्—“मैं आशा करता हूँ” इस अर्थ-  
में आता है ।

कञ्चिसुगोशामनघा प्रभूति—मैं आशा करता हूँ कि गगोशे यद्य  
हु खरचित अर्थात् सुखी है ।

यदि जो समान कञ्चित् भी प्रत्य पूछनमें आता है, पर यह उस प्रश्न  
में आता है जहा अपनी इच्छा प्रकट करनी हो । इसका अर्थ 'मैं  
आशा करता हूँ,' 'मैं समझना हूँ' है । कभी कभी यह प्रेवल प्रत्य  
पूछनमें प्रयोग किया जाता है ।

दिष्ट्या प्रतिहता युष्माक विद्वा—सुदैवसे तुमलोगोंके विद्वान् नष्ट हुए—  
मैं विद्वांसे नष्ट होनेपर आपका अभिनन्दन करता हूँ । 'दिष्ट्या' यह  
निष्ठि का वृ ए व है ।

स्थाने पञ्चत्र विद्वे सञ्जति मे वृष्टि—यद्य ये ग्य ही है कि मेरी वृष्टि इस  
विषयमें लग रही है । स्थान=युक्तते—यद्य याग्य है ।

कामनेतदुर्लभ मनस्त्वस्मिन्नुत्सुकम्—मान लिया कि यह दुर्लभ है, पर  
मेरा मन तो इन्को लिये उत्सुक है । कामम्=जितना कोइ चाहे  
उतना, चाहे जितना अधिक ।



अथ रोषिणोऽपि तदनुत्पन्ना शब्द किं पुनरङ्गमभारत-उत्पत्तौ—अथ अगारे  
 कुर देहाया धी येन पद्मं जायते, अथ चरीरं, अथ च तदङ्गं  
 पर कितना अधिक जायते ।

किं पुन, किमुन तथा किमु 'कितना अधिक इव अर्थ' जाते हैं ।  
 उक्तं अथ है—इति का जाता, इति कि यत्कम् (यत् रोषिणोऽपि तदनु  
 अथ उत्पन्ना तदि अङ्गमभारत-उत्पत्तौ उत्पन्ना इति कि यत्कम् ।  
 अथ चैमुतिक्रम्याय कहते हैं ।

वरमको मुनी पुत्रो म च मद्यजनात्पि—एक एतयात् पुत्र अस्ति नो  
 मूला अस्ति नदी ।

वरमु च प्रयागवर ध्यानं वा अथवा वरमिदं—न च अथवा न न पुनस्तत्  
 —येषी रचना है ।

यथा यथा यथायथा—कायत् तथा तथाऽथ अङ्गानि नाप्यथाप्युत्पत्तौ—  
 का २ अथवा अथवा का २ अथवा अङ्ग अथवा यथा तथा ।

यथा यथा—तथा तथा का २ अधिक तथा २ अधिक, का २ अथवा का २  
 कम ।

क सूर्यमभयो यम क चास्पयिपया भति—सूर्ययम कहाँ और रोरो  
 बुटि, किमको विशेष जा है, कहाँ है—इत आनाम कहा अन्तर है ।

का क (यत् यत्) वहा अन्तर दिशात है (हो अङ्गको अङ्ग-नत मूलायत) ।  
 पञ्चदातिनायत वेधो च—इम और रानो दाना पञ्चदाती (तापदात) है ।

यदि विशेषण विशेषित मन्त्राज्या भिन्न त्रिकुले अथवा एक पु  
 तथा वृषरा या दा ता विशेषण पु में जाता है ।

य च मा च ती, य च तय त, या च तय तं ही वस्तुनी—यदि एक  
 मन्त्रा अङ्ग पु या अथो हो और वृषरा मनु दा ता विशेषण पु  
 होता है ।

अथ धृतिः अमय तस्मिन् भ्रुवाणि—उत्तमं अथ धैर्य, तथा जान्ति  
 विार है ।

यदि अनेक विशेष्य अनेक लिङ्गादि हों तो विशेषण नपुंसकमें आता है ।

तथैव देवतया तयो कृशलाद्यादिति नामनी प्रभावधार्यात् — उभौ देवताने उनके कुश और लख हूँ नामों तथा शक्तिका वचन किया ।

यद्यं आख्यात इष विशेषणका लिङ्ग तथा वचन उभयो पूर्य रहनेवाले सन्नाशब्दके ऐसा हुआ । इसका अन्य सन्नाशब्दोंके साथ लिङ्गविपरिणामसे आवय होता है । नामनी आख्याते इति लिङ्गविपरिणामेना वय ।

इस पाठमें विशेषण तथा क्रियाविशेषणोंका वर्णन किया गया है ।

एकसे दसतकके सख्यावाचकोंका वर्णन २३० पाठमें आ चुका है ।

इसके गुणित सख्यावाचक नीचे दिये जाते हैं —

विंशति ( स्त्री )	बीस	शत ( न )	एक सौ
त्रिंशत्	तीस	सहस्र	, हजार
चत्वारिंशत्	चालीस	श्रयुत	” दस हजार
पञ्चाशत्	पचास	लक्ष	” लाख
षष्टि	साठ	प्रयुत	” दस लाख
सप्तति	सत्तर	कोटि	स्त्री करोड़
अष्टौ	” अस्सी		
नवति	” नब्बे		

विंशतये ब्राह्मणेषु दक्षिणा ददाति नारायण — अथवा ब्राह्मणानां विंशतये दक्षिणा ददाति नारायण । इस प्रकार विंशति इत्यादि सन्नाशब्द हैं । जब व विशेषण रहत हैं तो, किसी सन्ना शब्दोंके साथ हों, ए व तथा खालिङ्गमें प्रयोग किये जाते हैं ।

एकाञ्चन् — चारह	द्विषप्रति	}	द्वितर
द्वाञ्चन् — चारह	द्वामप्रति		
पाठञ्चन् — चाण्ड	तृणवति	}	निरानय
सुयोयञ्चति — सहेम	सुयोयञ्चति		
पञ्चञ्चति — पचोष	पञ्चञ्चति — द्वानये		
अष्टाञ्चन् — अङ्गतीष	दृगोति — वधासी		
द्विषच्चारिञ्चत्	दृगोति — तिरासी		
द्वाचच्चारिञ्चत्	अष्टागोति — अष्टासी		
त्रिषञ्चाञ्चत्	एकोनमप्रति	}	सङ्कतर
सुय पञ्चाञ्चत्	एकाञ्चमप्रति		
अष्टषष्टि	ऊनमप्रति		
अष्टाषष्टि			

नियम — १ शिक्षितिके चारके सञ्ज्ञाशाचकोमें द्वि को द्वा त्रि को त्रय, तथा अष्ट को अष्टा जेता है । अशोति के चाच समास षरनेमें ये परिवर्तन नहीं होते, तथा चच्चारिञ्चत्, पञ्चाञ्चत्, षष्टि, मप्रति, तथा नवति के साथ समास षरनेमें ये परिवर्तन विकल्पमें होते हैं । पञ्चम् इत्यादि शब्दोंमें नूका लोप होता है, त्रिष प्रकार समासमें द्वतर मकारान्त शब्दोंके नूका लोप होता है ।

एकोनमप्रति इत्यादि — एकेन ऊना मप्रति एकोनमप्रति, एकेन न मप्रति, एकाञ्चमप्रति, पचा एका को एकाञ्च हुना है ।

एकाञ्च — चारहवा

द्विष — द्विषतितमः शीषयां

त्रिष त्रिषतम — तीसवां

ष षुतम — साठवा

षुतम — एकषठवा

मप्रतितम — सतरवां

चतु मप्रत तितम — चौदतरवां

अशोतितम चरसीया

एकाशोत तितम — एकाशोयां

नयतितम — ६० वा

पच्ययत तितम — ६६ वा

गियम —

अवतम — १०० वा

सहस्रतम — १००० वा

२ । एकादशन् से नयन् शब्दोंसे क्रमिक सख्यावाचक नू का लोप करनसे बनते हैं ।

३ । विशति से आगे क्रमिक सख्यावाचक तम लगानेसे वा अन्तिम स्वर का लोप कर वा पूर्व स्वरके साथ अन्तिम व्यञ्जन का लोप कर अ लगाने से बनते हैं । विशति में ति का लोप होता है ।

४ । षष्ठि, सप्तति, अशोति तथा नवति को क्रमिक सख्यावाचक केवल एकही प्रकार से—तम लगानेसे—बनते हैं ।

सप्तशोत्तर शतम् वा सप्तश्राधिक शतम् = ११७ । त्रिसप्तत्यधिकनवश-  
शततमो विक्रमाकनवत्परोऽयम् = सयत् = १६७३ । अष्टात्तु षडुत्तराष्ट्रांश-  
शततम शालिवाहनवर्षमितम् = शक १८३८ । सप्तदश्राधिकनेकोऽ-  
विशतिशततम क्षिप्ताब्दम् = इसवी सन १६१७ ।

५ । ऊपरकी सख्या बतानमें 'अधिक' लगाया जाता है ।

तर तथा तम, द्वयम् तथा द्वयु आर्पेत्तिक तथा सर्वोत्कृष्टताद्योक्तक प्रत्यय हैं । उनका वचन पहिले आ चुका है । कुछ शब्दोंमें द्वयम् तथा द्वयु आगे रहनेपर परिवर्तन होता है और इस प्रकार उनको चय अनियत होते हैं । वे इस प्रकार हैं —

केवल	आर्पेत्तिक	सर्वोत्कृष्ट
प्रशस्य स्तव्य	अयम्	अष्टु
सुष्ठु वृद्धा	स्वायम् अर्षीयम्	छोष्टु अर्षिष्टु
अन्तिक पाश	नेत्रीयम्	नेत्रिष्टु
शाद-अच्छा	साधीयम्	साधिष्टु

खलु माटा	खयोपस	खयिषु
दूर दूर	दूयोपस्	दयिषु
युवन युवा	यवीपस् कनोपस	ययिषु कनिषु
एव्य होना	एवोपस	एयिषु
सिप कुतारा	सपोपस्	सयिषु
सुदु मोघ	सोपोपस्	सोयिषु
प्रिय पारा	प्रोपस्	प्रयिषु
स्थिर नियन	स्थोपस्	स्थयिषु
सस चौड़ा	सरीपस्	सरयिषु
धनुन मोटा	धनीपस्	धयिषु
नीम गवा	नीपोपस	नीयिषु
अन्य मोहा	अ-वीपस् कनोपस	अयिषु कनिषु
पुण बहा	प्रपोपस	प्रयिषु
सुदु कोमल	सोपोपस	सोयिषु
कण हुजरा	कणीपस्	कयिषु
दृढ मजबूत	दृढोपस्	दृयिषु
बहु बचुत	भूयस्	भूयिषु

इन सबमें से तर तथा तस भी लागत हैं । ये रूप अनियत नहीं हैं । प्रशस्ततर, सुखतर ( नु का लोप ), वीघतर, प्रियतम, बहुतम, अल्पतम ।

ऊपर से हुईं सूची कटाघ्न करनेकी आवश्यकता नहीं ।

६ । घञनामोसे अच्चाय इम प्रकार बनते हैं —

( अ ) मयत, कुत ( किम् से जिमकी कु होता है ), यत तत, एत अत —तस् लगानेसे ( जो हर विभक्तिक अरमें आ सकता है पर विशेषत पचमी या सप्तमीसे अरमें आता है । साऽ विभक्तिकेषांश्चि । )

(आ) तत्र, अमुत्र, सयत्र, अन्यत्र, यत्र, यत्र कुत्र—त्रु लगानेसे  
(सप्तम्यर्थ, स्थलवाचक) ।

(इ) यत्रा, एकत्रा, अन्यत्रा, यत्रा, तत्रा, कदा—दा लगानेसे  
(सप्तम्यर्थ, कालवाचक) ।

(ई) यथा, तथा सद्यथा, कथम् (किम् से—केन प्रकारेण)—था  
लगानेसे (प्रकारवाचक) ।

(उ) पूर्वद्यु, अप्येद्यु, अपरेद्यु (दूसरे दिन)—द्यु लगानेसे  
(उपदिन) ।

मूयात् मेङ्गोऽनयो शिष्ययो ।

अभिषणभूयिष्ठा परिषण्यम् ।

वृत्तमोर्षि राक्षा तद्दृत्तान्तमाकण्य यविपुत्रत् क्षिप्र राक्षधानीमगच्छत् ।

अभिजात खल्वस्य वचनम् । अथ वा चन्द्रात्सुतमिति किमत्राद्यपम् ।

नास्ति भवतोऽपराध । अहमेवात्रापराधा ।

कथ रघुनाथ एष । ऋष्या सुप्रभातमद्य यन्थ देवो दृष्ट ।

तपस्विनाः प्रतनुतपषामपि तेज प्रकृत्वा दु सद्य भवति किमुत

सकलभुवनयन्त्रितचरणामा मुनीनाम् ।

विश्रायता सकलमेव गिरां दधीय ।

कचिद् मर्तुं सरसि रसिके त्व द्वि तस्य प्रियेति ।

कश्चिन्मयापराद्धमर्थेन वा केन विस्मयन्तुपीडिता परिषनेन ? अति

निपुणमपि चिन्तयन् न पश्यामि स्वल्पितमन्त्रमपरात्मनस्त्वह्निपये ।

एव ! ऋष्या यधसे । प्रतिदृतास्तं शत्रुय । चिर शोच । जय प्रियिणीम् ।

तत्सर्वानाम । इतिशायन रात्रि । सद्यस्सरोऽहोरात ।

तत्ति शता मान । माया ह्याश्रयणम् । ह्याश्रयणशतानि विद्यानि कति  
 युगम् । द्विगुणानि ह्यापरम् । त्रिगुणानि त्रुता । चतुर्गुणानि चतुर्गुणम् ।  
 एव ह्याश्रयणमष्टमांशं विद्यानि चतुर्गुणम् । चतुर्गुणानामेकशतं  
 मन्वन्तरम् । चतुर्गुणमष्टम् च फलम् । च च वितामदस्य च । तावती  
 चास्य गतिः । यत्र विद्येनाह रात्र च मासत्रयमवतया सवस्येथ ब्रह्मणो  
 यवशतमायुः । ब्रह्मायुषा च परिच्छिन्नं पौरुषो शिवसः । तस्य नो महाकल्पः ।  
 तावत्यत्रास्य निशाः । पौरुषाद्यामहारात्राद्यामतीतानां कल्पेथ गतिः । न च  
 मन्विष्यताम् । अनाद्यनन्तता कालस्य ।

यावद्वा मोघा वरमधिगये नाधम तस्यकामा ।

यावन् धनसम्पत्तिं प्रभुत्वमधिगच्छता ।

एकैकमवयवपर्यं किमु यत्तु चतुष्टयम् ॥

एत ए नरको दामो न तु सुखरितं गृहे ।

नरकात् सौमते पापं कुगुहात् परितर्षते ॥

वरमना विश्वो न पुनर्निशा ननु निगोथ वर न पुनर्निगम् ।

उभयमन्तदुपेक्ष्यशा स्य प्रियजनन न यत्तु समागम ॥

यथा यथा भाष्यवशो विश्वधते वितां त्रिलोकोमिथ क्तु सुखतम् ।

तथा तथा मे दृश्यं त्रिद्वयतं विपालकावीपवसत्यशङ्कवा ।

सदृशं त्रिगुणं लिङ्गेषु सद्योस्तु च विभक्तिषु ।

वचनेषु च सर्वेषु यद्गच्छति तस्यैवम् ॥

कामं नृपा सन्तु सद्यःसुगोऽन्वराजशतौमाहुरनेन भूमिम् ।

नक्षत्रातराप्रसङ्गं तापि लोतिशती चन्द्रमसैश्च रात्रि ॥

स्थाने भयानकनाराधिप सद्गच्छिञ्जनत्व सखज धनक्ति ।

पयपिपोवस्य सुरेष्टमांशो कलाचय स्याद्यतरो दि दृष्टे ॥

हे मुनि ! मैं आशा करता हूँ कि आपकी तपस्याएं निश्चल हैं ।  
यह योग्य है कि कत्रगी मद्य भिषोंमें अधिऊ सुन्दर कही जाती है ।  
राजा तथा रानी दोनों घामिक थ ।

हे भित्तु ! उस सत्क्रादमें धफल होनेसे लिये मैं तुम्हें अभिनन्दन  
करता हूँ ।

क्या तुमने यह किफसा पढ़ा है जो उस पुस्तकके ११५ वें पृष्ठमें अंकित  
है ?

धन आइमीको गयी बनाता है । यदि उसको साथ कुछ विद्या और  
उन्नत पत्र हो तो फिर क्या पूरुना है ।

क्या तुमको काशीमें पवित्र गङ्गाक्षीके तटपर हमलीगोंके मकानकी  
याद है ?

स्वयं अथय शब्दसे ही मालूम पड़ता है कि इसको लिङ्ग, लचन,  
विभक्ति नहीं लगते ।

### समाशब्द ।

अकिञ्चनत्वं ( न अकिञ्चनत्तसु  
कम०, नास्ति किञ्चन यस्य  
सोऽकिञ्चन, (३२ वां पाठ देखो)  
तस्य भावाऽकिञ्चनत्-सु वा  
तत्त्वम्) — बह दशा अक्षमें पाष  
कोई वस्तु न हो दरिद्रता  
अनथ (अनथ) पु — विपट्ट  
अनाद्यनन्तता ( स्त्री, नास्त्यन्त्यस्य  
सोऽनात्ति [बहु०] नास्ति अन्तो  
यस्य साऽनन्त [बहु०], अनात्ति-

यासाद्यनन्तश्च [कमधा वा विशेषे  
पणस०] अनाद्यनन्तस्तस्य भाव  
सत्ता ) आत्ति अन्तरहितता  
अभिरूप (अभिरूप) पुं — सिद्धाम्  
अलकाली (स्त्री अलक पुं पेश +  
आनी स्त्री पक्ति ) घन और  
लदे केशोंकी पक्ति  
अविशेषिता ( स्त्री न वि०की अ  
त्रियकी नञस०, तस्य भावसत्ता )  
— अविचार



अधोरात्र (अधोरात्र) पु अधश्च रात्रि-

याधोरात्र इन्द्र, अधन् को अष्ट

आर रात्रि को रात्रि) — दिनरात

आशय्य (न) — आशय्य

उत्तरायण<sup>१</sup> (उत्तरायणम्) न उत्तर

भव + अयन न जाना) — वे हूँ

माघ जिनमें मूष्य दक्षिणसे

उत्तर घूमता है ।

कल्प (कल्प) पु — ब्रह्माका जिन

(निष्कृता अन्त जानेपर प्रलय

होता है )

कलियुग (कलियुगम्) न — कलियुग

कृतयुग (कृतयुगम्) न — कृतयुग

चतुष्टय (चतुष्टयम्) न — चारका

समुदाय

जात (जातम्) न — खिड़की

तारा (स्त्री) — नक्षत्र

त्रेता (स्त्री) — त्रेतायुग

दक्षिणायन (दक्षिणायनम्) न

दक्षिण-भव ० + अयन-न जाना)

— वे हूँ माघ जिनमें मूष्य

उत्तरसे दक्षिणसे घूमता है ।

द्वापर (द्वापर) पु — द्वापरयुग

निशा (स्त्री) — रात

परमाणु (पु कम०, परम + अणु — पु)

— मंत्रमें छोटा कण

परिजन (परिजन) पु — सेवक

पितामह (पितामह) पु (मह प्रत्यय

है) — जण

प्रवेत्न (प्रवेत्नम्) न — कहना

प्रभूति (स्त्री) — सन्तति

भोज (पु) — एक राजाका नाम

मन्वन्तर (मन्वन्तरम्) न — एक

मनुका समय #

याज्ञा — यागना, प्रायना

१। उत्तररा, उत्तरधीरात्र उत्तरभिन्दि — ये उत्तरके अन्विक रूप हैं।  
निष्कृत — पूर्व पर, अवर दक्षिण, उत्तर अपर अवर जिनके उच्चारणसे किससे ? यह  
आकाशा अवर ही न जिसका अर्थ प्राति वा घन न ही अन्तर जिसका अर्थ बाहरी वा  
पड़नेका अर्थ ही अर्थनाम हूँ और प्र व व पथमी तथा अशमी के एकवचनमें  
विकल्पमें अर्थ नामके ऐसे रूप होते हैं। अन्त — पूर्व सारं पुवायां वा निशायात् उत्तरभिन्दि  
उत्तर वा मार्गं अं भा ( आत्मीया ), अन्दि अन्तर वा गृहा ( वात् ), अन्दि  
अन्तर वा शाटका ( अर्थात् परिधानीया ) ।

• एक मन्वन्तरम् ४१९, ० × ७१ = १ ६०२०, अर्थ जानें ।

रश्मि ( पु )—किरण  
 राजधानी ( स्त्री )—राजधानी  
 विषय ( विषय ) पु —विषय  
 विपरिणाम ( विपरिणाम ) पु —  
 परिवर्तन  
 वृत्तान्त ( वृत्तान्त ) पु —हाल  
 सम्भव ( सम्भव ) पु —ज्ञान  
 सग ( सर्ग ) पु —सग

सवत्सर ( सवत्सर ) पु —वर्ष  
 सुप्रभात ( सुप्रभातम् ) न ( प्राद्विष०,  
 शोभन वा सुष्टु, प्रभातम् )—सुभ  
 प्रात काल  
 स्खलित ( स्खलितम् ) न ( स्खल्  
 भ्वा पर + त )—मलती,  
 प्रसाइ

विशेषण ।

अतीत ( अति + इ + त )—बीता  
 हुआ  
 अधिगुण ( अधिका गुणा यस्य सोऽधि-  
 गुण [ बहु० ] )—गुणवान्  
 अनघ ( स्त्री अनघा बहु०, नास्ति  
 अघ इत्य यस्या सा )—  
 नौरोग  
 अनुज्ञोयित्—सिवक  
 अपराध ( अप + राध-ि पर अप  
 राध करना + त )—१ ( कर्तरि )  
 अपराधी २ ( कर्मणि )—विरोधित  
 अभिजात ( अभि + जन् — [ जा ]  
 दि आ + त ) यिनोत्, कुलोत्  
 उद्यत ( उद् + यत् [ यच्छ् ] भ्वा  
 आरम्भ + त )—तेपार  
 चतुर्गुण ( बहु० )—चौगुना

अतिशय—प्रकाशमान  
 तावत्—उतना  
 त्रिगुण ( बहु० )—तिगुना  
 विषय—स्वर्गीय  
 दुसष्ट—सहनको कठिन  
 द्विगुण ( बहु० )—दूना  
 परिच्छिन्न ( परि + छिद् + त )—  
 परिमित  
 षोडश—षिण्णुका  
 प्रतनु—( प्राद्विष०, प्रकृष्ट तनु )—  
 बहुत छोटा  
 प्रतिहत ( प्रति + हत् + त )—नष्ट  
 मखज ( मख पुं यस्य + जन् से )—  
 यन्त्रसे चल्पद्रु  
 मोघ—व्यर्थ  
 राजश्वत्—निश्चय अस्स्य राजा है

रमित्त (स्त्री०—का) — रमण      यकन ( बहु०, कलाभि अत्रयत्रः  
 रापित ( कृ० प्रा + त ) — तमाया      महित मकलमु) — मय  
 दृष्या      मद्रुग — ममान  
 दम्भित (दम्भ्या या + त) — प्रवाम ।      मद्रुस — पूष  
 क्रिया मया

घातु ।

घि + क्त (घनक्ति क पर) — मकट करना	घि + दु ( विदुनोति स्था पर ) — दृ घ दना
घि + ह (घति घ पर) — परिवसन का पदुचना	घरु ( घञ्जति-से स्था उभ ) — साना, समाना

दृश्य ।

अतिनिपुणम् — बढी कुशलतासे, बढ ध्यानस	धिष्णु — शीघ्र
कामम् — मान लिया	श्रिष्टा — सुश्रुसे (श्रिष्टि का कृ य घ)
कश्चित् — १ ( आशा वा इच्छाको जताता है ) — मैं चाहता हूँ , मैं आशा करता हूँ , २ मन	ठाम् — दृष्ट्या मदलश — द्वारा

पाठ ३२ ।

धमास — अथयथोपाय तथा तत्पुरुष ।

आरम्भिक धमासोका द्विवचन ११ वें तथा १२ वें पाठमें, अकम्बद्धो  
 में, तथा टिप्पणियोंमें शिष्या का लुका है । विशेष विवरण इस तथा  
 अग्रिम पाठमें शिष्या मया है ।

यथाश्रित, प्रतिनिधु, उपकृणुसु — इनमें यथा, प्रति, तथा उप का अर्थ

प्रधान है, इसलिये इन समासोंके अर्थ—‘शक्तिके अनुसार,’ ‘प्रतिदिवस,’ तथा ‘कृष्णके पास ये हैं’ ।

अव्ययीभाव—इस समासमें प्रायः पूर्वपदके अर्थकी प्रधानता रहती है ।

साधक—शाकप्रति=शाकस्य लेशः शाकप्रति । इसमें उत्तरपद प्रति का अर्थ प्रधान है । क्योंकि इस समासका अर्थ ‘शाकका लेश’ है ।

प्रधान अव्ययीभावोंके विशेष नीचे दिये जाते हैं—

हरात्रिति अधिहरि ( इसका सप्तमी विभक्त्यर्थ अव्ययीभाव कहते हैं ) अधि सप्तमीके अर्थमें है, कृष्णस्य समीपमुपकृतम्, यावन्त श्लोका यावच्छोकमच्युतप्रणामा ( विष्णुके उतने प्रणाम जितने श्लोक, यावत् अवधारण वा निश्चयका बोध कराता है ), यावदमत्र ब्राह्मणानामन्तु यक्ष=यावत् तमन्तुः तावतो ब्राह्मणानित्यथ ( जितनी घालिया हों उतने ब्राह्मणोंको बुलाओ ), औशनस्यन्त यावज्जीवम्, विधिमनतिक्रम्य यथाविधि, गङ्गायाः पारे पारिगङ्गम् पारिगङ्गाहा, गङ्गाया मध्ये मध्येगङ्ग मध्येगङ्गाहा ( पार तथा मध्य को पारे तथा मध्ये होता है और समास पञ्चमीके रूपमें भी प्रयोग किया जाता है ), दिने दिने प्रतिदिनम्, गृहमप्यपरित्यज्य सट्टणम् ( जैसे गृहमति ), अरण पर परोक्षम् ( पर को परा ), अरण प्रति प्रत्यक्षम्, रूपस्य योग्यमनुरूपम्, ‘हरे पद्मादनुहरि, अष्टानुक्रमेण अनुज्येष्ठम्, हिमाचलमारभ्य आहिमाचलम् आहिमाचलाहा, सेतुपयन्तम् आसेतु आसेतीर्षा, मत्तिकाणामभात्रो निर्मलिकम् ( “कृत त्वया साग्रत निर्मलिकम्”—तुमने अब यहासे सबको हटा लिया है, तुमने इस ख्यानको मक्कासे भी शून्य कर लिया है । )

समासान्त प्रत्यय—आहमानमधिकृत्येति अध्यात्मम्, अहनि अहनि इति प्रत्यहं प्रत्यहं वा—अव्ययीभावमें शब्दके अन्तिम अन् का लोप होता है और सबको अ लगाया जाता है । यदि वह अद्गन्त शब्द नपुंसक हो तो ये परिवर्तन विकल्पसे होते हैं ।

तत्पुरुष —

द्विजाय द्विजाय श्रोत्र, द्विजाय द्विजाय यथागू, द्विजाय  
द्विजाय पय —

चतुर्थीतरपुरुष चतुर्थतन्त पय तथा अथशब्दका होता है, और  
समासको विशेष्यका लिङ्ग, वचन, तथा विभक्ति हाती है। इसको नित्य  
समास कहते हैं। खटाष्ट का अर्थ है जाहम या नीच, इसका विशेष्य  
वाक्य नहीं किया सकत। इसलिये इसको नित्यसमास कहते है। विद्यार्थी  
को जमीनपर सोना वाहिये। यदि वह खटियापर सोवे तो वह खटाष्ट  
अर्थात् अतिनीच कहा जाता है। खटासाष्ट से यह अर्थ नहीं निकलता।  
अथ शब्द लगाकर द्विजाय का विशेष्यवाक्य नहीं किया सकत। इसलिये  
यह नित्यसमास है। वह समास जिसका विशेष्य ही न हो सके, वा समास  
को प्रयोगको अलग वाक्य बनाकर नहीं दियाया जा सके उसको नित्यसमास  
कहते है। अधिहरि, प्रतिजिनम्, इत्यादि सब नित्यसमास है। इस  
प्रकार—अविग्रहोऽस्यपत्रविग्रहो वा नित्यसमास ।

अथघास —अथस्य घास, रन्धनस्थाली—रन्धनस्थाली। ये षष्ठी  
तत्पुरुष समास है। यूपाय दास यूपान्—चतु तत्पु तभी होता है लत्र  
प्रकृतिविकृतिभाय हो। यूपानामें दास प्रकृति या मूल कारण है और यूप  
विकृति वा उससे घनी हुई वस्तु है। इस प्रकारका सम्बन्ध अथ और  
घासमें नहीं है, और न रन्धन और स्थाली में, इस लिये अथघास,  
रन्धनस्थाली इत्यादि षष्ठीतत्पुरुष समास हैं, चतुर्थीतत्पुरुष नहीं।

पुरुषोत्तम —पुरुषेषु उत्तम, नृषु श्रेष्ठ नृश्रेष्ठ द्विलेषु वर द्विजवर  
द्विनेषु उत्तमः द्विजसत्तम —

पुरुषाणामुत्तम वा पुरुषेषु उत्तम, नृणामुत्तम अथवा नृषु उत्तम ये  
शेनों प्रयोग श्रेष्ठ हैं। समी जगहपर षष्ठी तथा सप्तमी निर्धारणप्रणै तथा  
निर्धारणसप्तमो कहाती है, क्योंकि एक व्यक्ति मुखको निमित्त जाति

( वग ) से अलग कौ जाती है, ( निर्धारण=निश्चय ) और निश्चित कौ जाती है । निर्धारणपट्टीका समास निषिद्ध है । इणलिये इस अर्थमें जहा समास हो उसको सप्त तत्पु समझना चाहिये, पट्टी तत्पु नहीं ।

एकदेशिसमास वा अत्रयविभ्रमाम्—पूव कायस्य पूर्वकाय , अपर कायस्य अपरकाय मध्य रात्र मध्यरात्र , मध्यमह्ण (महन् का घ ए व ) मध्याह्न , सायमह्ण सायाह्न —

यह अत्रयय तथा समुदायका समास है । एकदेशका अर्थ है अत्रयय, तथा एकदेशीका अर्थ है अत्रययौ—समुदाय ।

कर्मधारय—पूव स्नात पश्चादनुलिप्त स्नातानुलिप्त ( पहिले नहा चुका फिर चल्न लगा चुका )

मेघ इव श्यामो मेघश्याम , चन्द्र इव मुन्दर चन्द्रमुन्दरम्, सप्त स ते ऋषयश्च मत्तर्पय (सत्तादाचक्र), गौत च तदुष्ण च शीतोष्णम् (विशेषण समास), पुरुषो व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्र , वदन कमलमिदं वदनकमलम् (उपमितसमास, काकि पुरुष वन्दनम् इत्यादि उपमित वा उपमेय अर्थात् सादृश्यका विशेष है) । पुरुषो व्याघ्र इव शूर —यहा समास नहीं होता । साधारण धमका प्रयोग ही वहा समास निषिद्ध है ।

नञ्तत्पुरुष—न ब्राह्मण अब्राह्मण

द्विगु—तृयाणा लोकाना समाहारस्त्रिणीकी, पञ्चाना पात्राणा समाहार पञ्चापात्रम्, अष्टानामध्यायाना समाहारोऽष्टाध्यायी, चतुर्णा मूत्राणा समाहारश्चतु मूत्री—

ये समाहारद्विगुका लक्षण है । समाहारका अर्थ है समुदाय । अकारान्त समाहारद्विगु स्त्रीलिङ्गमें होता है । समासके अन्तिम प का लोप होता है और उसकी लक्ष्य इ होता है ।

मासो जातस्यास्य मासजात , एतं भवत्सरजात —ये तत्पुरुष कदापि हैं ।

मत्प्रय ( संज्ञावाचक ), पद्यमां ज्ञानाया भयं वीयगत ( यदा तद्विषय प्रयय अ लग्ना है )—विज्ञावाचक तथा सदावाचकोका तभो समास होता है अत्र समाससे सदाका बोध है, या अत्र समासको काह तद्विषय प्रयय लग्ना प्राय ।

उपपदसमास—कुषा करोतीति कुम्भकार । सः जानातीति मुञ्जैः ।

प्रादिसमास—अतिक्रान्त इति द्रुपायि अतोन्द्रिय , त्रिष्कान्त क्रोशाम्यग निष्कौशाम्नि एषु ज मन वा मित्र सुमितम्, कुम्भित मित्र कुमितम् पृष्टु तनु प्रतनु ।

मध्यमपदलोपी—शाकपिपय पात्रिव शाकपार्यिय , दशपूषको ब्राह्मण देवप्राह्मण ।

मयुरश्चसकाटि—कुङ्क शनिपत समास इव धर्म श्राव है जो तत् पुद्गल कथात है ।

मयूरा वाचक ( धूत ) मयुरश्चसका एतन्मेव कर्मणं यदन कमलम्, अन्यो राजा राजान्तरम्, चिन्म चिन्मात्रम्, नास्ति कुतोऽपि भयं यम स अकुतोभय । उक्त्वा च अद्याश्च उच्चावचम् ( विविध ), नास्ति किञ्चन यम सोऽकिञ्चन । यद्यपि अकुतोभय शौर अकिञ्चन अर्धमे वक्षुवादि है, तथापि इनका गणना तत्पुद्गलमे है ।

तत्पुद्गल समासमे प्राय उत्तरपत्रका अथ प्रधान रहता है ।

वाचक—पूर्ववाचक, प्राह्नौधिक ( प्राप्ते जो वकी प्राह्नौधिक ) प्रापन्नौधिक ( प्रापन्नो वाचिकाम् ) ।

समासान्तप्रत्यय—अङ्गानो राजा अङ्गराज , परमशोभी राजा च परमराज , महाशोभा राजा च महाराज , महात् वाहुर्यम स महा वाहु , महतां सेवा महत्सेवा , शयग स्या शचीसख , पुण्य च तद्वदय मुख्याहम्—(१) तत्पुद्गलके अन्तमे रहनवाल राजन्, अहम्, तथा सखि शब्दके अन्तिम स्वरका वा उपात्य स्वरके साथ अन्तिम व्यञ्जन

का लोप होता है और उसको अ लगाया जाता है, अर्थात् वे राज, अष्ट, तथा मख में बन्ध जाते हैं । (२) कमधारय तथा बहुव्रीहिमें मष्ट को मटा होता है, पर तत्पुरुषमें नहीं ।

मध्य रात्र मध्यरात्रि, अतिक्रान्तो रात्रिमतिरात्र ( प्रा० ४० ), मध्यमद् मध्याद्, पूर्वमद् पूर्वाह्ण, अपरमद् अपराह्ण, सायमद् सायाह्ण, पुष्य च तन्मध्य पुष्याह्नम्, द्वयोरद्वौ समाहारो द्वरह, नवाना रात्रीणां समाहारो नवरात्रम्, अष्टय रात्रिषाहोरात्र, द्वन्द्व—

(३) अहन्, सव, अथयशवाचक—इसमें पूज, अपर, तथा मध्य,— सख्यात पुष्य मख्यायाचक तथा, चणसा पूर्थ रहनेपर रात्रिका रात्रि होता है, आर उसी अवस्थामें अर्थात् सज इत्यादि शब्द पूज रहनेपर अहन् को अह्ण होता है, परन्तु पुष्य, सुदिन अथवा मख्यायाचक पूज होनेपर अहन् को अष्ट होता है । (४) रात्रि, अह्ण, तथा अष्ट शब्दान्त द्वन्द्व आर तत्पु० पुल्लिङ्गमें होते हैं, परन्तु मख्यायाचक पूज होनेपर रात्रि, तथा पुष्य, सुदिन पूज होनेपर अष्ट को नपुंसक लिङ्ग होता है ।

(५) ह्युणा ह्याया इतुस्त्रायम्—घनी ह्यायां इस अयमें ह्याया-शब्दान्त तत्पु० नपुंसकमें होता है ।

द्वयो मयाः समाहार द्विसयम्, पञ्चाना मयां समाहार पञ्चमयम् पञ्चभिर्गामि क्रीत पञ्चगु, द्वाभ्यां शोभ्यां क्रीत द्विगु ।

(६) गोशब्दान्त तत्पुरुषको अ लगाया जाता है पर लय इसको लगे हुए तद्धित प्रत्ययका लोप हुआ हो तो अ नहीं लगता ।

कुत्सिता राजा किराजा, कुत्सित मखा किरखा ( “स किरखा शक्ति न यो नराधिपम्” ), आभनो राजा सुराजा, अव्ययिको राजा अतिराजा—

(७) निन्नायक क्रिस् तथा आन्नायक भु और अति पूजण्ड हो तो समासान्त प्रत्यय नहीं होते ।



अन्यस्मिन्नस्मिन्नि न कृतमव्यक्तं कर्मास्माभिः । जन्मान्तरकृतं हि कर्म  
फलमुपनयति पुरुषस्यैव जन्मनि ।

किमनु कियत ऋषयस्तं वक्षुनि । सुख्यता शोकानुबन्धः । एतद्येदृशेन  
अनन कौटुम्भो मे दृष्ट्यानुबन्ध इति जानामि ।

परं हि देवतस्यैव । यत्रेनाराधिता यथासमीहितफलानां हुलभानामपि  
वराणां दातारो भवन्ति ।

प्रायसाकारणमित्वात्प्रतिक्रियाद्वाणि च षड् भवन्ति षटा चर्तव्ये ।

द्विसहस्रैर्यमतिक्रम्य दृशा ज्ञतत । तथा हि रश्मिभ्रमरतलमध्यवर्ती स्फुरन्त  
मातृपमनवरतमनलधूलिनिकरमिव विकिरति करे । अधिकासुपजनयति  
तृणम् । सन्तप्तवासुपटलदुर्गमा भू । अतिप्रबलपिपासाजसन्नानि मनुमल्प  
मपि मे नालमद्भकानि । अप्रमुरस्मरात्मन । सीति मे दृष्टयम् । अन्धकारता  
मुपयाति चक्षुः । अपि नाम खला विधिरनिच्छतोऽपि मे भरणमशुभोप  
पायत् ।

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्ती त्यागे साक्षाद्विपर्ययः ।

गुणा गुणानुबन्धित्वात्तत्र सप्रसजा इव ॥

कुलनं कात्यायनस्य नयेन

गुरोश्च तैस्तैस्त्रिनयप्रधाने ।

द्विमात्मनस्तुल्यमसु दृष्टोऽथ

रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ॥

शरणं करवाणि काश्च ते

चरणं धाणि चराचरोपभीक्ष्णम् ।

कदलामस्यै कटाक्षपातै

कुम्भं मामम्ब कृतायसाधवाङ्म ॥

इस गायिका रहनेवाला कोई ब्राह्मण ज्ञानमभ्यासको लिये दूमरे गाव गया ।

सज्जनको अपने किये हुए पापका विचार जन्मभर हुआ होता है ।

द्वारकाहोष समुद्रका बीचमें है ।

सर्पों तथा ध्यासका सताया में एक पग भी नहीं चल सकता ।

मरा ज़रीर जिन २ चीज ही रहा है । कर्मावित्त मेरी दृष्टि न रहनपर भी यम मेरे प्राण लेले ।

यद्यपि यह निधन था तो भी बड़ा उदार था, अथवा इसमें आश्चर्य क्या है ? क्योंकि यह दयालु था ।

यह सब अध्यापकोंमें उत्तम था, उसके विद्यार्थी उसको पिताके समान मानते थे ।

थोड़ा हुम अधिक काम करोगे थोड़ा सुन्दारा नाम होगा ।

### सज्ञाशब्द ।

अङ्गक ( अङ्ग + क एक प्रत्यय जो कोमलताके अर्थमें आता है )	कटाक्ष ( कटाक्ष ) पु — वितवन
न — कोमल अङ्ग	कर ( कर ) पु — किरण
अनल ( अनल ) पु — अग्नि	क्षात्रन ( क्षात्रनम् ) न — सुवण
अनुबन्ध ( अनुबन्ध ) पु — १ बन्धन, सातत्य, २ प्रेम	गुणानुबन्धित्व ( न गुण पु — अनुबन्ध-पु बन्धन, सातत्य ) — गुणोंका लगातार चलना
श्रम्बा ( स्त्री ) — माता	तल ( तलम् ) न — तल
श्रम्बर ( श्रम्बरम् ) न आकाश	तृषा ( स्त्री ) — प्यास
श्रातप ( श्रातप ) पुं — गर्मी	त्याग ( त्याग ) पु — दाग

१। ई ए व ई अन् पर अन्विका नियत है ई अन्विक ।

देवत ( देवतम् ) न — वंशता  
 वृत्ति—तया वृत्ती ( वृत्ती )—वृत्त  
 निष्कार ( निष्कार ) पु — समूह  
 पठल ( पठलम् ) न — राशि, समूह  
 पानु ( पु )—धूत्ति  
 पात ( पात ) पु — निरना  
 पिपासा ( स्त्री )—प्यास  
 प्रमथ ( प्रमथ ) पु — नम

मोन ( मोनम् ) न — चुप रहना  
 धर ( धर ) पु — धर  
 विषयय ( विषयय ) पु — जैपरीत्य,  
 विरोध  
 श्लाघा ( स्त्री )—स्तुति  
 साध्याह ( साध्याह ) पु — समुदाय  
 का श्रगुश्रा

## विशेषण ।

अत्र—अत्र  
 अतिक्रष्ट—अतिदुःखी  
 अतिप्रबल—अतिबली  
 अत्रमु—अत्रमथ  
 अत्रगत ( अत्र + ग्—भ्या पर + त )  
 —शुद्ध, पवित्र  
 अत्रवन् ( अत्र + वृ [ वृत् ]  
 भ्या पर + त )—दूबता हुआ,  
 —मुका हुआ  
 अत्रधत् ( अत्र + धत्—भ्या आ + त )  
 अत्रधत्  
 अत्राधित ( अत्र + अध्—भु पर + त )  
 अधित

अद्—गोला  
 उपजोय ( उप + जो—भ्या पर +  
 य )—आश्रय  
 काम—सत्र मनोरथोंकी पूर  
 करनवाला  
 कृताह—कृतकृत्य  
 चर—चल  
 दुग्म—पार करनेमें कठिन  
 मद्य—कोमल  
 मन्त ( मन् + तप्—भ्या पर + त )  
 —गरम  
 समीहित ( मन् + हित—भ्या आ  
 + त )—इष्ट

## धातु ।

उप + जन् ( मित उपजनयति )—उत्पन्न करना

उप + नी ( उपनयति—भ्या पर )—  
 लाना, उत्पन्न करना

उप + पन् ( में उपपात्यति ) — उत्पन्न करना	}	सन् ( मोक्षति भ्वा पर ) — भुक्ता, दृवना
उप + या ( उपयाति — अ पर ) — समोप जाना, पाग		सम + आ + गम् ( समागच्छति भ्वा पर ) — मिलना
वि + कृ ( विकिरति — तु पर ) — विप्रेरना		

श्रव्य ।

अनेवरतम् ( अन् + अन् + रम् + त ) निरन्तर	}	( यह समग्र तथा इच्छा का बोध कराता है । )
अपि नाम — समग्र है, जैसा मैं चाहता हूँ ।		अलम् — समर्थ अल्प — थोड़ा

पाठ ३३ ।

बहुव्रीहि तथा द्वन्द्व समास ।

बहुव्रीहि—ग्रामसुक्त य स प्राप्नोतको ग्रामः, धीरा पुंसो  
यस्मिन् स वीरपुरुषको ग्राम, पौतमन्वर यश्च स पीताम्बरो हरि ।  
( इसम समासके पन् समानाधिकरण अथवा एक विभक्तिमें होते हैं )  
इस समासमें दो प्रा अधिक पद होते और वे समानाधिकरण रहते हैं ।

व्यधिकरण बहुव्रीहि—असि पाणो यस्य स असिपाणि, दण्ड  
पाणो यस्य स दण्डपाणि । इस बहुव्रीहिमें पन् समानाधिकरण नहीं  
हैं । इस प्रकारका समास कहीं २ होता है, सप्रतु नहीं ।

तद्गुणसविज्ञानि तथा अतद्गुणसविज्ञान—एस लाग कहत हैं—  
नस्यक्षणमानय जय लम्बकण ( लम्बो कर्णो यस्य स, गर्भ हृदय )  
अथवा गर्भा . . . उससे लगे कान भी उसी साथ जाने हैं . . .

इस प्रकार उसके गुणकी—उसे जानकी—पहचान ( सचिचान ) है । इस लिये यह सङ्कतगुणमयिचान बहुव्रीहि हुआ । अब हम लोग कहते हैं—दृष्टमागमानय ( दृष्ट सागरो यन स दृष्टसागरस्त दृष्टमागम् ), तो यही गुणकी कोई पहचान नहीं है—इस लिये यह सङ्कतगुणमयिचान बहुव्रीहि हुआ ।

मीतया सह यत्तसो—वा यत्मान मसीत सहसीतो वा ( सह को विकल्पसे म होता है ) उत्तरमा पूजमा त्रिशोऽन्तराल मध्य सुत्तरपूर्वा, दक्षिणमा पूवमा अन्तरान् दक्षिणपूर्वा—इस प्रकारके समास बहुव्रीहि कहाने है ।

यत्तु कामो यद्य स वक्तुकाम , गन्तु मनो यद्य स गन्तुमना ( काम और मनस आग रहनपर तुमको म का लीप होता है । )

आहित अग्निर्येन स आहिताग्नि अग्न्याहितो वा , अग्नि चक्षती येन स अग्न्युदात्त ( कह २ तमपदान्तरपत्तो भी होता है ) ।

बहुव्रीहि समासमें प्राय अन्तप्राय प्रधान रहता है ।

साधक—द्विधा ( द्वौ वा त्रयो वा ) द्विधा । हममें समासके शानो पत्तोके अय प्रधान है ।

समासान्त प्रत्यय—सर्लोक , सवधूज , बहुकर्तृक—( १ ) यदि बहुव्रीहिका उत्तरपत्तो अकारान्त दीध ईं वा ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग वा तो समासको का लगता है । सकमकसु, अकमकसु—( २ ) प्राय बहुव्रीहि समासके अन्तमें क लगता है ।

एको वा द्वौ वा एकद्वौ , द्वौ वा त्रयो वा द्विधा , त्रयो वा चतुरो वा त्रिचतुरा , चत्वारो वा पञ्च वा चतुष्षड्वा , पञ्च वा षड् वा पञ्चपा , दशाशां समीप ये सन्ति तं उपदशा , द्विंश द्विदशता वा दश द्विदशा , त्रिंशत्तरेधिका अधिकाविंशा , आसन्नविंशा , अदूरपञ्चाशा , अधिक चत्वारिंशा—( ३ ) सपञ्चाशत्तरेधिका सपञ्चाशत्तरेधिका , अत्रयके साथ,

प्रासन्न, अदूर, वा अधिकसे साथ समास बहुव्रीह समास है । इसमें अन्तिम स्वर वा उपागम स्थानसे साथ अन्तिम व्यञ्जनका साथ होता और उस अ लगता है । विशेषिते त्त का साथ होता है और चतुर् में अ लगता है ।

कमपु कोनेपु सुदीप्त्यं पुष्ट प्रवृत्तमिति केगाकेशि, दण्डैश्चण्डैश्च प्रदृष्ये सुष्ठ प्रवृत्तमिति दण्डादण्डि, मुष्टीमुष्टि—(४) ऐसे समासों को गणना बहुव्रीहिमें होती है । इसमें पूव्यपत्यके अन्तिम स्वरको नीच होता है और समासके अन्तमें ह लगता है । यह समास अथय है और क्रियाको पुनर्दत्ति ( कर्मव्यतिहार ) का बोध कराता है ।

कमले इवास्तिथौ यमर स कमलाक्ष , हरिषमर अस्तिथौ इव अस्तिथौ यमरा सा हरिणाक्षी—(५) बहुव्रीहिके अन्तमें अस्तिको अक्ष होता है ( स्त्री अक्षी ) ।

नास्ति प्रजा यमर स अप्रजा , दृष्टा मेधा यमर स दुमेधा , शोभना प्रजा यमर स सुप्रजा —(६) ाञ् ( अ ), दृष, तथा सु पूव रक्षेपर प्रजा तथा मेधाको प्रजष तथा मेधन् होता है ।

सीता जाया यमर स सीताजानि —(७) बहुव्रीहिके अन्तमें जायाको जानि होता है ।

आमघिरुद्धमघिञ्चम् । अधिच धनुयमर स अधिञ्चधन्वा ( जिमसे धनुपर प्रत्यञ्जा वा डोरसे चढ़ी हुई है )—(८) बहुव्रीहिके अन्तमें धनुस्को घ-यन् होता है ।

शोभनी पानौ यमर स गुपाद्, द्वौ पानौ यमर स द्विपाद्—(९) सु या गख्यावाचक पूव्य होतपर पान्को पान् होता है । चतुष्प — द्वि व य, चतुष्पाम्—प व य ।

शोभनी गन्धो यमर स सुगन्धि , चण्गती गन्धो यमर स उद्गन्धि , सुरभिगन्धो यमर स सुरभिगन्धि , पद्मसैख गन्धो यमर स पद्मगन्धि —

(१०) उ०, पुति, मू, मुरभि पूय रचनेर, वा छही समास साधक प० मं ही, बहुव्रीहि समासक अन्तिम 'गन्ध'को 'गन्धि' होता है ।

हन्द्—यह दो प्रकारका होता है, इतरतरहन्द् और समाहारहन्द् । रामलक्ष्मी, हरिहरा, युधिष्ठिरार्जुना, इत्यादि इतरतरहन्द्के उदाहरण हैं ।

पाणिपादम् ( पाणी च पादौ च तथा समाहारः ), रथिकाश्वानोत्तम्, मार्दङ्गिकपाणविकम्, यूकान्निघम्, अहिनकुलम् इत्यादि समाहारहन्द्के उदाहरण हैं । शरीरावयवशाचकीका, सेनाके अवयवशाचक, वा वाद्य ( वाजा ) वाचकीका, समुद्रक्षुवाचकीका, अथवा स्वाभाविक विरोध रचनशक्ति पाणिशाचकीका समास समाहारहन्द् है । ऐसे ध्यानपर इतरतर याग नहीं मानत । पाणिपादौ नहीं होता ।

देवताहन्द्—मनुष्य वस्त्रय मित्रावरुणी, सूर्यश्चन्द्रमाश्च सूर्या चन्द्रमसौ, अग्नीषोमी, अग्नीवरुणी ( पृथक्को अन्तिम स्वरको दीर्घ होता है ) ।

इतरतरहन्द्में दोनों पदोंके अर्थको प्रधानता रहती है, पर समाहारहन्द्में मनुष्य प्रधान रहता है ।

एकशेष—माता च पिता च पितरौ, धाता च धात्रा च धातरी, पुत्रश्च पुत्रिता च पुत्रौ, दधी च दधय दधी, अशूश्च अशुरश्च अशुरौ ।

अनुकम्पमास—युधिष्ठिर, परस्मैपद्म्, आत्मनपद्म्, विशांपति, सरचित्तम् इत्यादि ।

स्वगच्छ पन्था स्वगपथ, रम्य पन्था पस्य च रम्यपथो दंश ( समासके अन्तमें पथिको पथ होता है ), विष्णो पू विष्णुपुरम्, राक्षस्य घृ राज्यधुरा ( घृ तथा धुरको अ लगता है ) ।

पृपीदरादि—पृषत् ( शूका ) उदर पृपीदरम्, वा पृषत् उदर पथम् तत् पृपीदरम् ( पथन ), मनस इषिणः ( विचार करनवाले )

मनीषिण ( पण्डित ), धारोणां वाहक बलाहक ( भेद्य )—कुछ समासोंमें पूर्वपदके कुछ अक्षरोंका लोप होता है । ऐसे अनियत समासोंका इस गणमें समावेश होता है ।

सुप्सुप्समास—पूर्व भूत भूतपूर्व, पूज दृष्ट दृष्टपूर्व—यद्यपि ऐसा समास है जिसकी गणना श्रव्ययीभा०, तत्पु०, बहु०, वा द्वन्द्वमें नहीं हो सकती । इसमें एक सुबन्त ( जिसके अन्तमें सुप् अर्थात् विभक्ति हो ) का दूसरे सुबन्तके साथ समास होता है ।

सन्देहोलाधिष्ठ मे चेत ।

न शक्तोमि भवन्त विना सखमप्यवस्थानुमेकाकी । कथमपरिचित  
इजात्पृ पूव इवाद्य मानेकपत् उत्सव्य प्रयासि ।

सखे ! नेतानुरूप भवत । सुद्वन्द्वसुख एव माग । धैर्यधना हि साधय । किं य कश्चन प्राकृत इय विक्रवीभवन्तमात्मान न कश्चित् ?

अहह ! इत्यममच्छि खल्वमी कथोद्घाता ।

किमपि यत्तु कामांसि ।

वत्स ! कथय किमप्यन्यर्चतसा मया नायधारित किमनयोक्तमिति ।

अन्तरेणापि शब्दप्रयोग अद्योऽर्था गम्यन्तेऽस्तिनिकोचै पाणिविहारैश्च ।

यत्ता कश्चिन्नाशुभिधायी भवति । आशु वर्णानभिधत्ते । कश्चिच्चिरेण ।

कश्चिच्चिरतरेण । तद्यथा । समेवाध्यान कश्चिन्नाशु गच्छति । कश्चिच्चिरेण

गच्छति । कश्चिच्चिरतरेण गच्छति । रथिक आशु गच्छत्यशुच्चिरेण पश्चति

च्चिरतरेण ।

गुरुवत्किन् गुरुपुत्रं वतितव्यमन्यतोच्छिष्टभोजनात् पानोपसप्रवृत्त्याच्च ।

यदि च गुरुपुत्रोऽपि गुरुभवति तदपि कर्तव्यं भवति ।

अतिमहद्भिन्माशयमाख्यातव्यम् । अत्रप्रवेशमह । प्रथाधीर्नति च

न ज्ञानममय । तदुक्तिपुन्नु भवन्त । मय एवाचरन्तु यथोचित इत्यस



व्यापार्य । अथवा अथवा मयतामाजितः मभूति मयमापैइयापि ५१५  
 यथात्वा कुतमदरमिभूमनाद सोत यथात्वा मभूति ।

मभूति मभूति मभूति मभूति मभूति मभूति मभूति मभूति ।

तत्पत्यरुतय कथातो मभूतिमातरदूषय ॥

मभूति द्रासनात्पय राजमहिमा तयादि—

म य म परिनिर्वाते म चाप्यमन्दर्शाकृतगुणमि तयापि पात्र मभूति ।

मभिलानिधिधिधि मीनपात्र न मभूति म यय नया मभूतिमभूति ।

यद्युपाप्याममीभूति दन्वान मिद्विद्वत्तय ।

लप्यय निद्विपाया धान्दयोया इयाराय ॥

यह ! समुद्रके घीव यह हीच फेला सुन्दर है ।  
 चाप यह तीन या चार दिन ठहर । इतना अदरमें मैं आपका कार्य  
 मिद्व करभका यव करंगा ।

दोनाकी रक्षा करना आपकी वाचत ही है, का कि चाप अपने घूब  
 पुषधीसे कायका अनुकरण करत है ।

अरे ! यह मझेरा छा गया । मुझे पीछे उठना चाहिये । अथवा मैं डीप  
 उठकर का करंगी । मरे हाथमें तो धारा नहीं ।

सुमया ( शिकार ) से छोटे हुए राजार गीतवरीके तटपर विनाम  
 क्रिया और मनीष आनेवाले मन्त्रपथनम लक्ष्मी चक्राष्ट मिट गयी ।

मेरा मन दूमरी आर धमा या, इषलिय मेने सुन्दारी कहीं हुई बात  
 न सुनी ।

यह मितु, का राजाको अच्छी बलाह नहीं देता, धराय मितु है ।

मभूति यह राजा, जिसके धनपर डारी चढी हुई थी, जिसके धन  
 हीच ये तथा क्राती छोड़ी थी युद्धतनुमें उतरा, समझे यह इत्र उसी  
 सय ससके अरय थाय ।

सन्तानशब्द ।

अणव (अणव) पुं—समुद्र	}	गोला (स्त्री)—भूला
आगम (आगम) पुं—शान्, वन		निकोच ( निकोच ) पु—मकोच
उपमद्गुह्य ( उपमद्गुह्यम् ) न—		पत्ति (पु) —पैल सवार
धीरेर दाना		रधिक ( रधिक ) पु—रघारुद
ओघ ( ओघ ) पु—समूह		विहार (विहार)पु —कोड़ा, टिलना
कयोद्घात ( कयोद्घात ) पुं—		व्यापार (व्यापार) पु—काम
कयाका आरम्भ		सम्भृति (स्त्री)—सम्भ
कषाट ( कषाट ) पु—कषाटक		
देशका यापौ		

विशेषण ।

अधिरुट ( अधि + रुट् + त )—	}	दुराम—कठिनाइसे पाने योग्य
यद्वा हुआ		प्राकृत—सामूची
अनुवप—योग्य		समच्छिद्र ( समञ्ज न )—
अवधारित (अव + वृ—चु पर + त)		समखानको काटावाला
—विचारित		त्रिमासीमत्रत्—व्याकुल होता
उच्छिष्ट ( उच्छ्र + शिष फ पर + त)		हुआ
—जूठा		क्षुण्ण ( क्षुद्र फ चभ + त)—
एकाकिन्—अथेना		कुचला गया हुआ
लाटवीय—गङ्गाका		क्षुद्र—नच्छ

१। न विक्रम विक्रम यथा सम्पद्यते तथा भव तीयथ —यर्था दमस्त भाव अथ है।

इस अर्थ में मंगा

लगाया जाता है और उभरे पाने क भु, अम्

के रूप को

धातु ।

आ + वि + (प्र) - कटना ,  
निवेदन करना

प्रति + आ + म [ क्री ] प्रयाची

✓ इति च पर ) - पास आना  
प्र + या (प्रयाति - अ प) - जाना

अव्यय ।

अव्यय - आ (आव्यय लिखाता है) ,

आगु - शीघ्र

एकपदे - एकस्मात्

चकितसु ( चक् च्वा चम + त )

उरा हुआ वा आव्यययुक्त

पाथ्य सु (पाथ्य पु , न ) - एक तरफ

प्रभृति - आरम्भ कर

पाठ ३४ ।

कारक ।

कारकोके अथ इवे पाठमें लिखे गये हैं । विशेष धातुश्री और उपसर्गों के योगमें उनसे प्रयोग शब्दसप्रदाई तथा टिप्पणियोंमें कहे गये हैं । विद्यार्थियोंके सुभीतेके लिये इस पाठमें जिलागसे उनका ध्यान किया जाता है ।

पट्टीको झोड़ और सब विभक्तियां कारकविभक्तिया कहाती हैं , काकि व क्रियाके साथ अश्वित होती हैं । पट्टी इस प्रकार क्रियाके साथ अश्वित नहीं होती । यह विशेषणके अर्थमें आती है और विशेषण विभक्ति कहाती है ।

प्रथमा - यह नाम की विभक्ति है । इसका अर्थ नाम अथवा प्रातिपदिक है । कर्त्तरि प्रयागमें कर्त्ताके अर्थका क्रियासे बोध होता है । इस नियम प्रथमान्त, यद्यपि यह कर्त्ता हो, कर्त्ताके अर्थमें नहीं कहा जाता क्योंकि कर्त्ता अभिहित अर्थान् क्रियासे बोधित है ।

अधालिपित प्रथमाके अर्थ हैं—

१ । माणवक पुस्तक लिपति—प्रातिपत्तिकाय, नामाय, या निर्याय । यह कर्त्तरि प्रयोग है और कर्ता क्रियासे उक्त है ।

२ । द्रोणी त्रौष्टि —परिमाण यदा द्राणका अर्थ है द्रोणपरिच्छिन्न द्रोणनामक परिमाणसे नया हुआ ।

३ । एष्ट देवदत्त—सम्पादन ।

द्वितीया—इमका अर्थ है अनभिहित कम । कर्मणि प्रयोगमें कमका अर्थ क्रियासे अभिहित होता है । इसलिये कम प्रथमान्त होता है ।

१ । माणवको अन्य लिपति—यह कर्त्तरि प्रयोग है । यदा कमका क्रियामें बोध नहीं होता और इस प्रकार यह अनभिहित है । इसलिये द्वितीया हुई । माणवकेन अन्यो लिप्यत—यह कर्मणि प्रयोग है और कर्म लिप्यत' से अभिहित है, द्वितीयासे इसका बाध नहीं होता । इसलिये प्रातिपत्तिक अर्थमें 'अन्य' से प्रथमा हुई ।

विपल्लवोऽपि भवर्ष्यं स्वयं हस्तुमसान्तम्—यदा असाम्यतम् इम अत्रय से कमका बाध होता है क्योंकि इसका अर्थ न युज्यते ( याग्य नहीं है ) है । इसलिये विपल्लवसे प्रथमा हुई ।

स्वयमेव दृश्यन्ते दुष्टजनशोषा —यह कर्मकर्त्तरिप्रयोग कहाता है । यदा शोष कर्ता भी है और कर्म भी । इसका अर्थ है—शोष और किसीसे देख नहीं जाते, वं स्वयं अपनहोसे देखे जाते हैं ।

२ । हुष्ट, याच्, इत्यादि द्विकर्मक धातु है । ( १०६ वं दृष्टुमें टिप्पणी देखो ) इन धातुशोभे अर्थको वृषरे धातु द्विकर्मक होत है ।

गां दोग्धि पय , ब्रजमवकण्ठि गाम् , माणवक भाग पृच्छति , पोरव गां भिक्षसे याचते वा , पुत्र धम द्रूत अनुशास्ति वा , वृचमय चिनाति फलानि , अजां ग्राम नयति हरति दहति कथति वा तण्डुला नान्न पचति , उत मुष्णाति देवत्तम्, इत्यादि ।

इन चत्वार्यर्थों में एक प्रधानकर्म है, दूसरा गौण कर्म । ध्वज, गाम्भिर्य, गाम्भिर्य, धमम्, कर्त्तानि, अज्ञान, आसनम्, शीर शतम्, क्रमक प्रधान कर्म हैं, इतर कर्म गौणकर्म हैं ।

गा दोग्रिध पय — गादृष्टय पय, युद्धमयविराति पयानि—युद्धो  
इच्छीयत फर्त्तानि अज्ञा याम अर्त्तित—अज्ञा प्राममुष्टय—

३ । नौ, दृ, कृप, तथा यदृको बभूवि प्रयागमें प्रधान कर्म, शीर इतर दुष्टानि धातुश्रीक फर्त्तयि प्रयागमें गौणकर्म कियेये श्रीभरित इता है, इमनिये यद प्रथमाम रचता है श्रीर दूसरा कर्म द्वितीयार्थमें ।

प्रोत्थायक प्रयागार्थ व नियम २ —

हरि प्रकाक विपत्ति (अख्यन्तरचना, खिचु या खि घेरणादक प्रत्यय है, अख्यन्तरचना=प्रख्यायक प्रयोग और अख्यन्तरचना=अप्रख्यायक प्रयोग) ।

भाष्यका हरिणा पुस्तक अख्यन्तरचना—अख्यन्तरचना अथवा प्रेरणादक प्रयोग । भाष्यक हेतुकता इत्यादि ।

भाष्यक हरि पुस्तक अख्यन्तरचना—प्रोत्थायक प्रयोग ।

४ । अख्यन्तरचनाया कर्ता ख्यन्तरचनामें तृतीयान्त होता है ।

गच्छति भूयो गामम् । गमयति भयं गामं राधा । गच्छते भूयो ग्रामं राधा । इता अख्यन्तरचनन्ति । हरिर्त्थान्मुनमाश्रयति । हरिणा विद्या अमृतमाश्रन्ते ।

इत्तममयत्प्रयाग जेनाय इत्तममयत् ।

प्राशयच्चासुत इत्तान् धम्मध्यापय्यहिधिसु ॥

प्रासवत्तलिल पुष्पों य स न श्रीहरिसति ॥

अश्रयति हरि रत्तान्—

५ । गमनायक, ज्ञानायक, भक्षणायक, तथा यम धातु जिनका कर्म प्रथम है, तथा अकर्मक धातुअ का अख्यन्तरचनाका कर्ता ख्यन्तरचनामें

द्वितीयान्त होता है, तृतीयान्त नहीं। ऊपर दिये हुए श्लोकोंमें इस नियमके सब उदाहरण हैं। दृश धातुमें भी वैया ही प्रयोग होता है।

नाययति वाद्ययति वा भार भव्येन । हारयति कारयति वा भृत्य भृत्येन वा कटम् ।—

६। नी तथा घट् धातुका अख्यन्त रचनाका कर्ता ख्यन्त रचनाने तृतीयान्त रहता है, और टृ तथा कृ का अख्यन्त रचनाका कर्ता ख्यन्त रचनाने द्वितीयान्त वा तृतीयान्त रहता है।

बोध्यते माणयक धम, बोध्यते माणयको धममिति वा। भोज्यते ब्राह्मण भोजनम्, भोज्यते ब्राह्मणभोजन इति वा। शिष्यो वेत्समध्याप्यते, शिष्य वेत्सोऽध्यापयति इति वा।—

७। ज्ञानायक, भक्त्यायक, तथा श्रयकमक धातुओंमें ऊपर दिये हुए श्लोकोंके प्रयोग होते हैं।

उपयसति—अनुयसति—अधिउसति—आउसति वा वैकुण्ठ हरि ( ११६ वे पृष्ठमें टिप्पणी देखो ) ।

अन्तरा त्वा मा च कर्मण्डलु । अन्तरेण हरि न सुखम् ( १५५ वे पृष्ठमें शब्दसंग्रह देखो ) ।

अधिगते—अधितिगति—अधास्ते जा वैकुण्ठ हरि ( १२६ वे पृष्ठमें टिप्पणी देखो ) ।

हा कृष्णभक्तम् । बुभुक्षित न प्रतिभाति किञ्चित् ( हा तथा प्रति के फोरसे द्वितीयान्त होती है ) ।

धिगु आत्मान् । धिगु कृष्णभक्तम् ( प्रत्येक पृष्ठमें शब्दसंग्रह देखो ) ।

धिगर्षा कष्टशय्या । धिगिय हरिद्रता । धिह् सूख । ( इस प्रकार धिगु के योगमें द्वितीया, प्रथमा, तथा सम्बोधन होता है । )

मासमधौते—श्लोत्र कुटिला ( अख्यन्तसयोगवाचक )—  
८। काल या खलकी व्यापकताके अर्थमें द्वितीया होती है।

यह अन्वन्तस्योग कदापि है । इसका अर्थ क्रियाका फल वा स्वल्प मात्र घना सम्यक् है ।

तृतीया—यह कना वा करण अर्थमें होती है ।

प्रकृष्या वाह , प्रायेण यागिक , गायत्र गाय , समनेति ( समनेन मार्गैतौथय ) , विषमनेति ।

अदना कारा । कर्त्तन यधिर । पादन यद् । पुन्येन मद साधं साक वा गत विना —

१ । येहे उपाहरणोम तृतीया होती है ।

पुन्येन दृष्टो हरि । अद्ययमन वसति ।—

२ । यह तृतीया हेतु अर्थमें है ।

अत्र महीपाछ तत्र अमल ( अमल न किमपि साध्यमिषय ) । अत्र मतिविचारण । कृत प्रयत्नेन ।

३ । 'अपाम' इस शब्दके अर्थम् तदा कृत्तु क योगवै तृतीया होती है । यहाँ साधन क्रिया गन्वमान अर्थात् अभादुत है और अम समता कारण है ।

उदाहरणार्थ , हेतुच्छयेण राजानमपयत् , कमण्डलुना हानु —

४ । यह नक्षत्रतृतीया कदाती है , क्योंकि यह अनुष्यके लक्ष्यको उताती है ।

चतुर्थी—यह सम्प्रदान वा तात्पर्य अर्थमें होती है ( तामे इ- त-य त-र्व-य भावस्वात्पाय ) । शिक्षका कोई यद्यु की छात्र वा शिक्षके सम्बन्धमें कोई क्रिया को छात्र यह सम्मान है । जैसे—  
शिक्षाय मां अति , युद्धाय सन्नदा ( युद्धके लिये तैयार होता है ) , गच्छ करमपयति , शिष्याय ज्ञानमुपदिशति गुण , अतिथये पाशुमुपनयति ।

इयं राक्षते भक्ति । यत्तत्ताय स्त्रीषुपूष ( अर्पण = मालप्रदा )—  
यथा मन्त्रं दानजाला ( प्रीयमाण ) सम्मान है ।

हरये क्रुध्यति—कुप्यति—द्रुहति—ईष्यति अमूयति वा, परन्तु क्रूरमभिक्रुध्यति अभिद्रुहति वा—क्रोध, द्राघ (झाँट), इष्या, तथा अमूया एक धातुश्रीके योगमें जिनके ऊपर क्रोध इत्यादि हो उससे चतुर्थी होती है, परन्तु उपसर्गपूर्वक क्रुध् तथा द्रुह् के योगमें द्वितीया होती है ।

भक्तिर्नानाय कल्पते सम्पद्यते जायते वा (६८ वें पृष्ठमें शङ्खमग्नद देखा) ।

देवन्ताय गा प्रतिशृणोति आशृणीति वा ( प्रतिज्ञा करता है ) ।

फलेभ्यो याति ( फलान्याहर्तुं यातीत्यर्थ ) ।

यागाय याति ( षष्ठ यातीत्यर्थ ) ।

नमो भगवते यागुन्धाय । प्रजाभ्य स्वस्ति । अग्नये स्वाहा । पितृभ्य स्वधा । नैत्येभ्यो हरिरन्नम् ( समय प्रभुवा ) । वषट् ( यह एक शब्द है जो देवताको उद्देशसे होम करनेमें प्रयोग किया जाता है ) इन्द्राय ।

ग्राम ग्रामाय वा गच्छति—गमनायक धातुश्रीके योगमें द्वितीया वा चतुर्थी होती है, पर पण्यान गच्छति—नहा जाना हो यह पणि मार्ग हो तो केवल द्वि० होती है, मनसा हरि व्रजति—पदि वास्तविक गमन वा चलना अथ न हो तो केवल द्वि० होती है ।

उपपत्तिविभक्ति—नम इत्यादि अव्ययोंके योगमें होनेवाली विभक्ति उपपत्तिविभक्ति कहती है और इसमें इतर विभक्ति कारकविभक्ति कहती है । वाक्यमें क्रियापद प्रधान रहता है, इतर पद उपपत्ति वा गौण पद होते हैं । उपपत्तिविभक्तिसे कारकविभक्ति प्रचल होती है ( उपपत्तिविभक्ति कारकविभक्तिर्बलीयसी ) । जैसे नमिह नमस्करोमि ( यहाँ नम के योगमें चतुर्थी होनेवाले चार्हिमे और करोति के योगमें द्वितीया, चतुर्थी उपपत्तिविभक्ति है, और द्वितीया कारकविभक्ति, इसलिये द्वितीया हुई ) ।

वृषिहाय नमस्करोमि इत्यादि प्रयोगोंका समाधान, 'फलेभ्यो याति' समान 'नमिहमनुकूल कतु नमस्करोति' ऐसा अर्थ करनेसे होता है ।





वृथां नृपु या द्विष ऋषु—निर्धारणपट्टी या निर्धारणसहस्री  
( २२० तथा २२१ वा पृष्ठ देखो ) ।

रन्ति ( पुत्रादिको ) रन्तो ( पुत्रात्किञ्च ) वा मात्रजन्त—यद्यपि पुत्र  
इत्यादि रो रक्षे ये तो भो वह सन्यासी हुआ । यह अन्तारपट्टी वा  
अनादरसहस्री है । इसका अर्थ है—रन्त पुत्रात्किञ्चनात् ।

मातु स्मरति बाल । मातर स्मरति वा । ( १५ के योगमें पट्टी वा  
द्वितीया होती है । )

राजा मतो बुद्ध पृष्ठितो वा । ( यद्यपर पट्टी तृतीयाशे अथमें तथा  
मृतकृदन्त यतमान कृन्तके अर्थमें है । ) “अहमेव मतो महीपतेरिति  
सर्वं प्रकृतिप्रचिन्तयत्”—रघुवश—८—८ ।

हृत् सद्गुण समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा ।

दक्षिणेन वृक्षवाटिकामालाप इव ध्रुवते , दक्षिणेन ग्राम ग्रामस्य वा ,  
उत्तरेण ग्राम ग्रामस्य वा—दक्षिणेन तथा उत्तरेण एव—प्रत्ययान्त अव्यय  
हैं और इनके योगमें द्वितीया वा पट्टी होती है ।

सप्तमी—यह आधार वा अधिकरणका बोध कराती है ।

गोपु दुद्यमानासु गत —सतिषप्तमी ।

प्रसिद्ध उरसुको वा हरिणा हरी वा ।

—

अपि यत्स ! कृत कृतमञ्जिनयेन । अनेकवारमपरिप्लव परिप्लवस्य माम् ।

कुण्डलो भगवता यारसीकिना धात्रीकर्म वद्युत परिप्लव पोपितो  
परिरक्षितो च । वृत्तबुद्धो च तृपीवचनितरा विद्या भावधानेन परिपाठितो ।  
समनतर च गर्भकाण्ठे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनापनीय गुरुणा तृपीविद्यामध्या  
पितो ।

हा वेत् । एष मया विनाहमप्यतेन विनेति स्वप्नेऽपि कोन सम्भावित

माधोत् । तन्मुद्रुत कसपि अन्तान्तरत इत्त लब्धमर्त वाप्यसल्लिखान्तरेषु  
प्रसे तादृष्टवतामाप्युत्तुम् ।

अनया कारकतया मुद्रुमपक्रान्त स पादश्रुदिति मनविकृष्य तत्र  
सृतात्रिभ्रम्य सतिलसमीप सतु प्रपत्रमकरवम् ।

मा तु प्रसाल्य लीचनं य कलापान्तीन यन्नमपमञ्ज दीधमुषं च  
नि श्रश्च शनै प्रदवन्त—राजपुनु । किमनेनातिनिर्धुषुषुषुषाया मम मन्  
भागिन्या पाषाया ल मन प्रभृति शैराप्यष्टतान्तेनाऽश्रवणीयेन युक्तेन । तथापि  
यन् मद्यत् कुतूहल नत् कथयामि । श्रुयताम् ।

अतिक्रष्टास्त्रयप्रध्यासु लीशितनिरवेद्या न भवन्ति खलु जगति प्रापिना  
वृत्तय । नास्ति लीशितान्त्रयभिमत्तरमिदं जगति मयलम्बानाम् । एवमुप  
रतेषुपि मुष्टलौतनासि ताते पन्धमविक्रमिन्द्रिय पुनरेव प्रापिभि । पिह  
सामकद्वलमतिनिष्ठरमदृत्तम् । उपहृतमपि नापेक्षते परं दि खलु मे  
दृत्तम् ।

प्रियप्राया वृत्तिधिनयमधरो वाचि नियम

प्रकृष्या कल्याणी मतिरनवगीत परिधय ।

पुरा वा पञ्चाहा तन्दिमत्रिपर्योहितस

रदभ्य साधूनामनुपधि विशुद्ध विजयते ॥

विरं नीत्र विर नन् त्रिर पालय मेन्नीषु ।

विरभार्तलोकाना पुरय त्व मनारधान् ॥

कमलभूतमया सुषपद्भुजं

वसत मे कमला करपद्भुये ।

वपुषि मे रसता कमलाङ्गत्र

प्रतिन्नि दृष्टये कमलापति ॥

मूर्खको उपदेश उसकी मूर्खता उठानके लिये होता है ( कृप् ) ।

वह उसको बुद्धिमान् नहीं बनाता ।

दाय । घटो बुरी बात हुई । शकुन्तलाने किसी पत्न्य ऋषिका अपराध किया ।

धर्मिके सिवा और कौन आत्मिको जला सकता है ?

गोबरसे विष्णू उत्पन्न होता है ।

मे नहीं जानता कि अबतक वह राजपुत्र कितना चरकर चुका है ।

नीच आदमी दूसरेके उपकारके तरफ ध्यान नहीं देता ।

सज्जनोंका चरित् सदात्तम है, जो मज्जा सब बोलते है, आर कामी नीचोंके मार्गसे नहीं चलते ।

रामने लड्डू खानेके लिये नलसे समुद्रपर पुल बनवाया ( कतरि तथा कमलि प्रयोग करो ) ।

कृपाकर उसे जौधमें न छेड़िये । मैं आरम्भसे वह किस्सा गुननके लिये बड़ा उत्सुक हूँ ।

संज्ञाशब्द ।

अथव्या ( स्त्री )—स्विति	पु , न —पल्लवने समान कोमल
उपकृत ( उपकृतम ) न उप + कृ	दाय
+ त )—उपकार ।	कारप ( पु )—विधि
कमलसु ( पु )—त्रसा ( विष्णुके	कालकला ( स्त्री )—कालका मूत्रम
नाभिकमलसे उत्पन्न )	शश
कमला ( स्त्री )—लक्ष्मी	घूडा ( स्त्री )—क्षोशान्तसम्कार
कमलाद्भज ( अद्भज पु पुतु ) पु—	क्षीयित ( क्षीयितम ) न ( नीत्र् + त )
लक्ष्मीका पुत्र प्रद्युम्न	—जीवन
करपल्लव ( कर पु + पल्लव पु न )	धरती ( स्त्री )—धार

दक्षिण (दक्षिण) पु — पश्चिम  
 दाया (दाया) पु, न — दायि  
 रक्ष (रक्ष) पु — अनुराग, प्रेम  
 रक्षमा (रक्षमा) न — गूढ दाया  
 यक्षनायिका (यक्षनायिका) पु, न —

दाया + वपाक संज्ञिनाया —  
 दायाय यय कृष्यन्ना जिनाया  
 दृगि (दृगि) — धानस कापर  
 देराय (देराय) न — सीमार्तिक  
 दूषयि दूषया

त्रिपदा ।

अज्ञान — या क्रिय दूष उपहारको  
 नदी मानता, कृया  
 अतिशुभ — उद्युत द प नशाना  
 अतिनिष्ठुर — कठारदुःख,  
 अतिक्रूर  
 अथापित (अधि + प — अ या  
 प्र ० + त) — वदाया गया  
 अनयतात (अनु + यत्र + मोत =  
 मे — पत्र पर + त) — अनिच्छि  
 अतुषधि — निष्कारट (उपधि पु —  
 कपट)  
 अतिक्रम — अक्रमाकुल  
 अत्रिपदासित (अ + त्रि + परि +  
 अत् — तु पर ० + त) —  
 अपरिवर्तित  
 उपकान्त (उप + क्रम् पत्रा, इ पर  
 + त) — गया कृया  
 उपरत (उप + रम् भूया या + त)

कल्याणिक — दूषरोका दितविलक  
 सानु — सानुपसम्पत्थी  
 सभकाण्ड — सभमे पत्रा द्यो  
 निरपक्ष — मि शुक, येषवीट  
 परिपालित (परि + पत् — प्रे + त)  
 वदाया गया  
 पापकृत् — पापी  
 प्रियपाय (प्रो — प्रियपाया) (यदु०  
 प्रिय + प्राय — पु पत्र ददा  
 विश्वा) — प्राय प्रिय, बहुत  
 फर प्रिय  
 सम्भारित — अथागा  
 मयल — कामन, मयुर  
 सम्प्राशित (सम् + प्रु — प्रे + त)  
 — अथारित, विान्तत  
 सुशुद्धीतनामन् (यदु०) — सुध नामका  
 त्रिपुट (त्रि + पृथ — त्रि पर + त)  
 — अयन्त पवित्

घातु ।

<p>अप + मुन (अपमाणु—अ पर) — घोड़ना</p> <p>उप + नी (उपनयति—ते—इया उभ) —घनोपश्रीत करना</p> <p>नन् (नन्दति—इया पर) —प्रसन्न होगा</p> <p>निष्कम् (निष्कामति—भ्यति—इया, दि—पर) —निष्कलना</p>	<p>परि + छ्वञ्ज (परिच्छजते—इया आ) —गले लगाना, आलि- ङ्गन करना</p> <p>प्र + चल (प्रचालयति—तु पर) —धीना</p> <p>भ्रनमि कृ (तना०) —मोचना</p>
---	---

अव्यय ।

<p>अपरिस्रयम्—गाढ़</p> <p>अनेकवारम्—अर्धं वार</p> <p>उष्णम्—गरम</p> <p>कृतम्—ग्रह</p> <p>तत्—तो</p> <p>तृयीत्रयम् (तृयी इती तीन वे०, तत्पु०, त्रिपाविगे०) —तीन वेदके विद्या</p> <p>दीघम्—लघा</p> <p>पश्चात्—पीछे</p>	<p>पुर—सामने</p> <p>प्रभृति—आरम्भसे (तत प्रभृति— तद्भृते)</p> <p>सुदु—वार २</p> <p>वस्तुत—सबसुध</p> <p>समनन्तरम्—बाद</p> <p>साध्यधानम् (अथ अथधानेन सदितं यथा ह्यत्तथा) —ध्यानपूर्वक</p> <p>सुदूरम्—अतिदूर</p>
--	---

पाठ ३५ ।

सुट्, सृट्, लट् ।

भविष्यत् तथा क्रियातिपत्तिः ।

न ज्ञानं प्राप्त काले किं भविष्यति—यै नही ज्ञानता कि भउरे क्या होगा ।

अनुभू विज्ञेये वा मरिष्यामि वा—मै अनुभूयेका खीनूंगा वा मर जाऊंगा ।

सृष्टिघोटभविष्यत् इभिस नेत्र समपत्स्यत—यदि अच्छी दृष्टि होती तो अकाल कमा न होता ।

अथ धम व्याख्याम्याम । कतस धम व्याख्यास्यास इति यावत्—इमलास मरपूण धमकी व्याख्या करेगे । अथ धम व्याख्यास्याम का अथ है कृतस धम व्याख्यास्याम —अर्थात् इमनोग समपूण धर्मकी व्याख्या करेगे । यावत् अर्थात् के अथमै आता है ।

अथ भगवान् कुशली काश्यप । अनु प्रसार्याऽथशब्द । “महूजानन्तरा रम्भप्रसक्तान् अर्थेऽथो अथ” इत्यमरात्—आ भगवान् काश्यप सुखी है ? यदा अथ का अथ प्रस है । कौकि अमरकोशके अनुसार अथो तथा अथ के अथ प्र है —महूरा, अनन्तर, आरम्भ प्रथ तथा पूर्यता ।

अथा क्रोधेन वा अनुयाकोऽधीतो मया । तन नु साधमधीतो नायात —

१। अहन् की रूप इस प्रकार होते हैं —

प्र	अह	अथा हनी	अहानि
नि	,	”	,
उ	,		,
ट	अहा	अधीष्याम्	अधीमि
स	अहि हनि	अही	अहं सु अहंसु

नियम —अहन् की प्र नि तथा सं की ए व भी अह रूप होता है । इत्यायके दिवचरने लेकर अहनात् प्रत्यय आने रहनेपर अहन् की न् की विसर्ग होता है ।

सैने एक दिन वा एक कोसमें अनुप्रास पड़ा, उसने ता एक महीना पड़ा पर यह न आया ।

इस प्रयोगकी ओर ध्यान दी । जब क्रियाके फलकी प्राप्ति हो तो तृतीया, तथा जब यह न हो तो द्वितीया (माससु) छाती है ।

इस पाठमें दोना प्रकारके भविष्यत्, तथा क्रियातिपत्तिका घणन क्रिया गया है ।

अप्रत्यय घणन किये गये लकार साधधानुक्त लकार थे । क्योंकि इन लकारोंमें धातुको विकरण छोड़ा जाता था, अथवा विकरणके निमित्त दोनेत्राला परिवर्तन—जैसे हित्वा इत्यादि—धातुमें होता था । अप्रतिन लकारोंका घणन इस पाठमें तथा अग्रिम पाठोंमें किया जायगा व आर्धधातुक लकार फटाते हैं । इनके रूप बनानेमें धातुके विकरण जाननेकी कोई आवश्यकता नहीं होती ।

य के सिवा आधधातुक व्यञ्जनानि प्रत्यय आगे रहनेपर कुछ धातुओंको इ आगम होता है, कुछ धातुओंको नहीं होता, और कुछको विकरणसे होता है । वे धातु जिनमें इ आगम होता है सेट् (स+इ), चिनमें यह नहीं होता वे अनिट्<sup>१</sup> (अत्+इट्—इ फे जिना),

१ अधोलिखित दो कारिकाओंमें अनिट् धातु गिनाये हुए हैं । पहिलीमें सरान्त, तथा दूसरीमें व्यञ्जनात् धातु दिये हुए हैं ।

(क) ऊर्ध्वोत्तिष्ठणुशीर्षुत्तुशिडीउंशिभि ।

२ इडवर्ष्भ्यां च विनकावीजनेषु निहता कृता ॥

अजल (अथ—सुर) धातुओंमें ऊकारान्त (अत्—ऊ) अकारान्त, यु इ, एग गी, यु, वृ, च, शि डी (आत्, उ आत्मनेपदका बोध कराता है) शि, उ (आत्) इ (उभ—अ से उभउपदका बोध होता है), इन धातुओंके सिवा और सब एकाच् धातु निहता वा अनुप्रास हैं । वेमें अनिट् धातुओंकी अनुप्रास स्वर होता है । इस निये अनुप्रास स्वर वा निहताग्र अनिट् के बराबर है । इसप्रकार अजल धातुओंमें ऊकारान्त, अकारान्त, तथा ए इत्यादि कारिकामें गिनाये हुए धातु सेट् हैं । और इतर



तथा त्रिमम एव त्रिकल्पमे होता हे यत् ( पा. ५. ४८ ) कदाप ए ।  
 माय बरहो ही मायूम पदता हे कि मायु मेरु, अन्वित, या एरु हे ।  
 काहेपयं मत् धानुश्रीम अनितु धानुश्रीका प्रयाग अघिक निमत हे ।  
 ए धानु त्रिमलायं न्ये मय हे । मये त्रिगायिकाको वसते कलाय एर  
 मकी आत्रयकता नही हे । तथापि य नाम, ला अदय हे कि माकाएल  
 नान लक्ष्मीतरह हो उरु कलाय करे ।

० प्रकारेण भावय्यस्तकाल हे । एव अतदतन ( आकता मदी )  
 अथवा अस्तन ( कलहा ) भविष्यत्काल , काकि एव आन आनवाली

एकाय धानु अन्वित हे । एमे धानु त्रिमम एवमे अघिक एव यारवर ही हे । एव  
 एर मयम धानु—अस प्रेरकाएन रकादि—मय हे ।

- (४) मल्लयव मुष रिष वव विष मिषदक्षिणान्निविरमम ।
- ० एर भुजभाउमभिन्नान्नानुद्वमृशविजनम् । एरमम रूप ॥
- वदेषु वि कि पुन्निम ययभि किन्तिविमम् ।
- ० सुनी निन्ति अन्विकनी म्बुधुधितु ० ति ॥
- बन्धिरद्विरिधाराविम वमय काधिसिधती ।
- मन्वहृशायविपदुपिपतिपन्नान्निवितो ॥
- निपुणयवमममपुमपियम मन्वभमममममया रनि ।
- म्बुम्भु म्मिन्नीममम रिम मन्वतिम विम म्भु एवि ॥
- निपुणवृदिमदुषदुधविषविषु रिम म्भु त्रिधयती धमि ।
- वसतिवहन्निहिदुदी नव निहकदुविदुवदिमया ॥
- अनुनामा इन्नेषु धातवो धाधिक मयम ॥

एवम धानुश्रीम ( इन्-आहन ) कारिकां म्भु मय २ २ धानु अन्वित हे , और  
 एरु ही । कारिकां म्भु मय धानुश्रीका मम अन्वित ममकी अन्वितम हे—एवम  
 ककायम कि एकारान इन्नि । यदि मम धानुश्रीका अन्वित मम एकरही हे ता वे यवाउ  
 क्रमसे निवे इण व । कुत्र धानुश्रीम इ ति तथा विकारण इन्क अन्वितमे मयावे मदी हे ।

१। एम अम मृद् म्भु मिष ( मया पर ममसे ररता ), लपु मन्व म्भु मम  
 उरु, मुद अ व विह लपु, इण, इकादि ही धानु हे ।

क्रियात्ता बोध नहीं कराता, और दूसरा सामान्यभविष्यत्काल कदाता है ।

अनद्यतनभविष्यत् वा लुट् ।

त्रि—पर ।

कृ आत्म ।

प्र पु	जता	जतारो	जतार	कर्ता	कर्तारो	कर्तार
म पु	जतामि	जतास्य	जतास्य	कर्तामि	कर्तास्ये	कर्तास्ये
उ पु	जतामि	जतास्य	जतामि	कर्तामि	कर्तास्ये	कर्तास्ये

सामान्यभविष्यत् ।

ख्या पर ।

दा आत्म ।

प्र पु	ख्यास्यति	ख्यास्यत	ख्यास्यन्ति	दास्यते	दास्यते	दास्यन्ते
म पु	ख्यास्यमि	ख्यास्यथ	ख्यास्यथ	दास्यमि	दास्यथे	दास्यथे
उ पु	ख्यास्यमि	ख्यास्यथ	ख्यास्यमि	दास्ये	दास्यथे	दास्यमथे

त्रि पर ।

शी आत्म ।

प्र पु	जेष्यति	जेष्यत	जेष्यन्ति	श्रियिष्यते	श्रियिष्यते	श्रियिष्यन्ते
--------	---------	--------	-----------	-------------	-------------	---------------

क्रियातिपत्ति ।

ख्या पर ।

दा आत्म ।

प्र पु	अख्यास्यत्	अख्यास्यताम्	अख्यास्यन्	अनास्यत	अनास्यताम्	अदास्यन्त
म पु	अख्यास्य	अख्यास्यतम्	अख्यास्यत	अदास्यथा	अनास्यथाम्	अनास्यथाम्
उ पु	अख्यास्यम्	अख्यास्यथ	अख्यास्याम	अनास्ये	अदास्यथहि	अदास्यमथि

नियम —

१ । प्रत्यय ये है —

लुट् वा अनद्यतन भविष्यत् ।

पर ।

आत्म ।

तारो

तार

ता

तारी

प्र पु	तासि	ताभ्य	तास्म	तासे	तासाप	तास्ये
उ पु	तांसि	ताम्ब	तास्म	तासे	तासाप	तासापे

कुट् वा सामान्यभविष्यत् ।

पर ।

आ ।

प्र पु	स्यति	स्यत	स्यन्ति	स्यते	स्यते	स्यते
म पु	स्यसि	स्यथ	स्यथ	स्यसे	स्यसे	स्यस्ये
उ पु	स्यामि	स्याथ	स्याम	स्य	स्याथहे	स्यामहे

कुट् वा क्रियातिप्रति ।

पर ।

आत्म ।

प्र पु	स्यत्	स्यताम्	स्यत्	स्यत	स्यताम्	स्यन्त
म पु	स्य	स्यतम्	स्यत	स्यथा	स्यताम्	स्यथ्वम्
उ पु	स्यम्	स्यथ	स्याम	स्य	स्यथहि	स्यामहि

२ । जेता, जेष्यति—य विकारक प्रत्यय है । इसलिये उभयो आगे रदनेपर धातुश्रीको अन्तिम स्वर तथा उपान्तर दृश्य स्वरको गुण आनेस जाता है ।

गमु—पर ।

भगसु—आत्म ।

सामान्य—भवि ।

सामान्य—भवि ।

प्र पु	गमिष्यति	गमिष्यत	गमिष्यन्ति	गमिष्यते	गमिष्यते	गमिष्यन्ति
--------	----------	---------	------------	----------	----------	------------

इन्—पर ।

कु—पर ।

प्र पु इनिष्यति—इत्यादि ।

करिष्यति—इत्यादि ।

इ—पर क्रियाति ।

सु—आत्म क्रियाति ।

प्र पु अइरिष्यत्—इत्यादि ।

अभरिष्यत्—इत्यादि ।

३ । सामान्यभविष्यत्के प्रत्यय आगे रदनेपर गमु पर, इन्, तथा अकारान्त धातुश्रीको इ होता है ।

४। जो नियम सामान्य भवि में लगते हैं वे ही क्रियातिपत्ति में लगते हैं ।

वृत्—वृत्तिष्यते—वृत्स्यति, वृध्—वृध्निष्यते—वृध्स्यति, खन्द्—  
खन्दिष्यते खन्दिष्यते—ति, क्लृप्—क्लिष्यताद्ये—क्लिष्यताद्ये—क्लिष्यताम्नि,  
क्लिष्यते—क्लिष्यते—ति ।

नियम —

५। वत्, वृध्, खन्द्, तथा क्लृप् धातु सामा भवि में विकल्पसे परस्मैपदों होते हैं और उनका पर रूपोंमें इ नहीं लगता, क्लृप् में अनशतनभविष्यतको समान भी काय होता है ।

दृश्—दृष्टा दृष्टारो दृष्टार, दृक्षति—दृक्षत दृक्षन्ति, दृष्टुम् (तुम्)  
दृष्टु ( देखनेवाला ), परन्तु दृष्ट, दृष्टा, दृष्टि ।

सृज्—सृष्टा सृष्टारो सृष्टार, सृक्षति सृक्षत सृक्षन्ति, सृष्टुम्,  
सृष्ट, पर सृष्ट, सृष्टा, सृष्टि ।

सृप्—सृपिता, तुमा, तमां, सृपिष्यति, सृप्स्यति, तप्स्यति ।

नियम —

( अ ) अनुनासिक वा अन्त अक्षरे सिद्धा हलात् विकारक प्रत्यय आगे रहनेपर दृश् तथा सृज् को श् को नियम र होता है, तथा इतर अनिट् धातुओंमें विकल्पसे होता है । जैसे—

दृश् + ता = दृश् + ता = दृष + ता [ २० वां पाठ ( अ ) ] = दृप् +  
टा = दृष्टा, दृश् + सति = दृश् + सति = दृप् + सति = दृक् + सति  
[ २० वां पाठ ए ] = दृक् + सति = दृक्षति, सृज् + तुम् = सृज् + तुम् =  
सृप् + तुम् = सृप् + तुम् = सृष्टुम्, यज्—यष्टा, यक्षति, यष्टुम्, यष्ट,  
यष्टा, सृज्—मानिता—माष्टी, माष्यति—माक्षति ( पाठ २०  
वां क ) ।

इन रूपोंमें ज् को ष् हुआ है ( २० वां पाठ अ ) । तुम् विकारक



घोडम् ( तुम् ) । वट् + ता = वट् + ता = वट् + धा = वट् + टा = वाटा  
 ( २६ वा पाठ, ऊ )—वट् + स्यति = वट् + स्यति = वक् + स्यति ( २८ वा  
 पाठ, ए ) = वक् + स्यति = वक्षति । वच—वक्ता, वक्षति । वच + स्यति  
 = वक् + स्यति ( पाठ १३, २ ) = वक् + स्यति = वक्षति, नह्—नद्धा,  
 नह्यति ( २६ वा पाठ, उ ), गुह्—गूहिता ( ११० वें पृष्ठमें टिप्पणी )  
 —गोहा, गह्यति—घोक्षति ।

कृ—प्रै प्रकृत—कारय—कारयिता, कारयिष्यति । नञ्—कमलि  
 प्रयो—नह्—नते=नष्ट होना । लज्—कम प्र—त्यक्षते=छोड़ा  
 जायगा ।

आधधातुक लकारोंमें कमलि तथा भावे प्रयोगके रूप आरम्भप्र  
 प्रत्यय लगानमें बनते हैं ।

दा—दाता, दापिता, दास्यते, दापिष्यते, ह्य—हरिष्यत्, कारिष्यते,  
 कताष्टे, कारिताष्टे, हन्—हन्ता, धानिता, धनिष्यते धानिष्यते,  
 भ्रह्—भ्रष्टीता, भ्राहिता, भ्रष्टीयते भ्राहिष्यते, दृश्—दृष्टा, दशिता,  
 दक्षयते, दशिष्यते ।

( ६ ) अजन्त, एन्, अह् तथा दृश् धातुके कमलि तथा भावे  
 प्रयोगमें आधधातुक लकारके रूप ही प्रकारोंमें बनते हैं ।—(१) उन २  
 लकारोंके आरम्भ प्रत्यय जाड़नेसे, तथा (२) अनिट धातुश्रीमें भी प्रत्ययोंको  
 ह आगम कर अन्तिम ध्वर तथा उपात्य अ को वृद्धि तथा इतर  
 उपात्य ह्रस्व ध्वरको गुण आदेश करनेसे । लज् एन् को उपात्य अ को  
 वृद्धि होती है तो ए को घ् होता है । आकारान्त धातुश्रीके इन वैकल्पिक  
 रूपोंमें ह् को मूळ य् आगम होता है ।

लवःकृते सुम्वपुर्पा बहूनि पुस्तकाभ्यानेथ्यामि ।

एतौप नञ् । नो नञ् —+ आपापिष्यति ।

मुद्राय कनकविद्ययाप नृपत सुरारथः । तद्युक्ति कदाचित् तोष  
 नृद्राभ्या र्जासिन प्रहरिष्यति तन्महामनस मन्त्रयतः ।  
 न चापम किमशु यत्प्रशंसितं शिष्टद्वयानां मन्त्रयो भविष्यति नो यति ।  
 मया मत् मुभाषितमाहुंमुत्तमनुभवत् मुखेन काव नेष्यति । न एषयास  
 कृत विना क्रिया ।

ब्रह्मवप ममाप्य पृथी भयत् पृथी गुरवा यनी भयेहना भुजा प्रज्ज्वे ।  
 यदि यतरथा ब्रह्मवपान्थ मज्जत् नृदान् यनाह । यदहरथ वि  
 रज्जत्पहरथ मज्जत् ।

शिवानाय मुदमथाभिगच्छत् मन्त्रिणाति आश्रिय प्रकनिकुम् ।

यान् यान् जायत तत्त्वसाध ।

गतानुगतिका लाको न लाक पारवादिना ।

प्राणा प्रगयती राजन् जल्पो जेष्याति पाण्डुशम् ।

मयूरो मरिचो यथा नीतकणा भुज्जुभुम् ।

कक्षा वायो मयूराथ मसो चन्द्रकमचको ॥—इयमर ।

श्लोके षष्ठे गुरु नीय सवत् लघु वज्रामम् ।

द्विवसु पाण्योदस्य सप्तम दीर्घमन्त्रयो ॥

मन्त्रना मय मज्जता मन्त्राजो सान् नमश्कुम् ।

भागवेष्यसि सय न प्रतिगामे द्विदोदसि मे ॥

नष्टो माह श्रुतिरुक्था यत्प्रमाणा मयाचुरत ।

द्वितोदसि सतसदेह कथिष्ये शवन तत्र ॥

इत्यथा सह निष्प्रमनासि यनपु मद्यसन्धिपु ।

इति ह्यारमणेयानो म्नेदक्षायया स तादृशः ॥

कसो तु वगच्छसुनीरित नरा ।

१ । ' न चनामि तुषारे ( रास ) माथ मर कदम् - इम विचारसं शैला प्रसव  
 इति शो, उचका ( रामपर ) प्रेम नया ही था ।

निमित्तमुत्थि ह्य य प्रभुपरति  
 ध्रुव स तस्यापगमे प्रसौत्ति ।  
 अकारणद् वपरो हि यो भवेत्  
 क्षय अनस्त परितोषयिष्यति ॥

सुतान्प्रवर्णोत्तराग्रियाने  
 निवध्य सेतु विशिखोमखौ ।  
 शौरामवर्द्धेण समर्पित त  
 रामेश्वराख्य त्रियत स्मरामि ॥

वृथादपि लघुस्तूलस्तूलापि च याचक ।  
 वायुना किं न नीतोऽसौ मामय प्रार्थयति ॥  
 आलोक्ष्य सवशास्त्राणि विचाय च पुन पुन ।  
 ह्मेक मुनिपद्म ध्येयो नारायण सः ॥



चाहे मैं इस कायको सिद्ध करूँगा, चाहे देह त्याग दूँगा ।

जब मैं बन्धन लाऊँगा, तुम्हारे लिये उन ही पुस्तकोंको लाऊँगा ।

घोर लोग ज्ञानधनको नहीं चुरा सकते ।

रे दुष्ट ! तू फिर न खड़ा होगा ।

यदि तू मेरी आज्ञा न मानेगा, मैं तम्के अपने तेजसे जला दूँगा ।

म नहीं जानता कि मेरा मित्तु इस धार धर आवेगा या नहीं । उसने  
 उसी दिन संसार का त्याग किया जिस दिन उसका साधारण मुखमें  
 घृणा हुई ।

उसके लिये चिन्ता न करो, वे लोग जहाँ जाँधने, पण्डितोंके साथ  
 ज्ञानधर्म कर सकका शतभय करेते ।



## संज्ञाशब्दः ।

अच्युत ( अच्युत ) पु — शिष्णु  
 अग्रघ ( अग्रघ ) पु — शानि  
 अपगम ( अपगम ) पु हटना  
 अष्टन् ( न ) — जिन  
 आशा ( स्त्री ) — आशा  
 कोका ( स्त्री ) — मारकौ वालो  
 गृह्णिन् ( पु ) — गृहस्थाश्रमी  
 गोष्ठी ( स्त्री ) — सजावातचौत  
 चन्द्रक ( चन्द्रक ) पु — मोरको परका  
 चन्द्राकार चिह्न  
 जलराशि पु ( तत्पु०, जल—न +  
 राशि—पु सप्पुट ) — ससुन  
 तत्त्वबोध पु ( तत्पु०, तत्त्व—न  
 यथायता + बोध — पु ) —  
 यथायताका ज्ञान  
 मूल ( मूल — लम् ) पु , न — रहें  
 दुर्भिक्ष ( दुर्भिक्षम् ) न — अकल  
 नारायण ( नारायण ) पु ( बहु०,  
 नार पु जल + अयन—न  
 स्थान ) — यह जिसका स्थान  
 जान है , हरि, शिष्णु  
 निमित्त ( निमित्तम् ) न — कारण  
 नक्षत्र ( नीलक्षत्र ) पु — मयूर  
 मोर

पाण्डव ( पाण्डव ) पु — पाण्डुका पु  
 प्रात काल ( प्रात काल ) पु —  
 ( प्रातर—अथ - प्रात काल )  
 प्रसा ( प्रसा ) पु — कृपा  
 वहिष् ( वहिष् ) पु — मयूर, मोर  
 अष्टिन् पु ( अष्ट—न पर, + इन्—  
 एक मत्वर्थीय प्रत्यय ) — मयूर  
 ब्रह्मचय ( ब्रह्मचर्यम् ) न — एक ब्रह्म  
 जिसमें यदाध्ययन होता है  
 भुजङ्गमुज्जु पु ( उपपद स० ) —  
 सपभक्षक , मयूर  
 मुम्बापुरी ( स्त्री ) — वायव्य नगर  
 मेचक ( मेचक ) पु — मोरको परका  
 चन्द्राकार चिह्न  
 घोस ( घोस ) पु — सख्य, मिलना  
 वशश्च ( व शश्चस ) न — एक कृष्णका  
 नाम  
 वनिन् ( पु ) — वानप्रस्थ  
 वा ( वा ) पु — विद्या  
 विज्ञान ( विज्ञानम् ) न — विशिष्ट  
 ज्ञान  
 विशिख ( विशिख ) पु — शाल  
 विहङ्गम ( विहङ्गम ) पु — पक्षी  
 शय्य ( शय्य ) पु — राजा शय्य

शुद्ध ( शुद्धम् ) न —सौम  
 लोक (लोक) पु —अनुष्टुम् छन्द  
 मक्षय ( मक्षय ) पु —मात्र  
 मन्त्रेष्ट ( मन्त्रेष्ट ) पु —संगय  
 सुभाषित ( सुभाषितम् ) न —  
 मधुरवाणी

गुवृष्टि ( स्त्री )—अच्छी वृष्टि  
 सेतु ( पु )—पल  
 गुताम्रपर्णी स्त्री ( गु अश्वय  
 अश्वी + ताम्रपर्णी स्त्री )—  
 सुन्दर ताम्रपर्णी नदी

विशेषण ।

अकारणहृषपर ( बहु०, न कारण  
 यस्मिन् कमपि यथा ध्यात्तया  
 अकारणम् (अर्थ०स०) अकारण  
 हृष अकारणहृष ( कम० )  
 अकारणहृष पर प्रधान वस्तु  
 यश्च स )—विना किसी  
 कारणको वृत्तियोंको साथ हृष  
 करनेमें लगा हुआ

असख्य—असख्य

उत्तारत ( उ + त् + र + त )—

उक्त, कहा गया

कृत्स्न—सम्पूर्ण, सब

गैतानुगतिक ( बहु०, गत—गम् +  
 त + अनुगति—स्त्री अनुगमन  
 + क—एक प्रत्यय )—वेद्या  
 देखी चलनेवाला

सीदण—तेज

दृष्येय ( दृष्ये + य )—दृष्ट करने योग्य

पारमागिक—यथाध्यायमे चलनवाता  
 अस्मिन्निष्ठ ( बहु०, ब्रह्मन्—न पर-  
 ब्रह्म + निष्ठा—स्त्री भक्ति )—  
 ब्रह्ममें लीन

मद्यापिन् ( तत्पु०, मत् + प्यापिन् )  
 —दमको पूजनवाला

मधुगन्धि—मद्यको समान गन्धसे  
 युक्त, अथवा यह मधुगन्धिन्  
 शब्द है—मधुन गन्ध मधु  
 गन्ध, स श्यामस्तीति मधु  
 गन्धीति वनानि—मकारणको  
 सुगन्धसे सुगन्धित

रामेश्वराध्य ( बहु०, रामेश्वर—पु  
 + आस्था—स्त्री नाम )—  
 रामेश्वरनामक

वन्धासिन् ( वट पु वृटवच +  
 वासिन् )—वटके  
 रहनेवाला

दध — सारन याव्य	हाय ) — हायसे दणकायु निपा
धात्रिण — द्वैत्रिक	दुष्टा
धमवि ( धम + वृ — धे + त ) —	तुनिष्पन्न ( तु शब्द शब्दो तरह +
— रया दुष्ठा	निष्पन्न — निम् + प् + त )
धमिष्ठाति ( धमिष्ठा + त् + इति ) —	शब्दो तरह भया दुष्टा
— रतो यन्कायु + धमिष्ठा — पु	

धातु ।

धनु + म ( धनुभक्ति-भवा पर ) —	मध रका त्याग करना , मयाव
धनभय दाना , भागना	दना
धरि + तुप् ( धरिष्ठाति णि पर )	धि + धा + प्त् ( धाष्ठाते णि
धर — प्रसन्न करना	शब्द ) धि — सारना
ध + कुप् ( धकुष्यति णि पर ) —	धि + रद्भ ( धिरजति त, धिरन्यति त
धरन्त कुषिन् दाना	भवा धम णि धम ) — संसारसे
धति + धा [ धा ] ( धतिजानाति त	धृणा करना , धैर्य करना
धया धम ) — धतिना काना	धम् + प्त् ( धम्ष्ठाते णि धा ) —
ध + धन् ( धधरति भवा धर ) —	दाना

शब्दः ।

धातु + क्त ( धा + क्त — धा पर	निष्पन्न — ( नि + शब्द — शब्द भ
धे शब्द भूत क्त ) — मयकर,	क्त ) — रवकर, धनाकर
सुख विचार कर	नियतम् — शब्द
द्विषया — शब्द	नो — नदी
द्विषति — द्वेष प्रकार	विद्यानायम् ( धनु० तत्पु० क्रियाविष्णु०
द्विष्य — धृ + णि शब्द भू क्त )	विद्यानाय न + शब्द ) — ध्यानसे लिपे
— विचारकर	सत्यम् — सत्य
	द्व — निष्पन्न

पाठ ३६ ।

परोक्षभूत वा लिट् ।

दुदोह गा स यथाय स्याय भयवा विश्व—उस ( रघु ) ने यज्ञके लिये पृथ्वीको दुहा ( प्रजाश्रीके कर लिया ), ( शौर ) इन्द्रन स्वर्गको दुहा ( शत्रुके लिये दृष्टि को ) ।

भयवन्—पु

द्वि	भयवान्	भयवानी	भयान
स	भयानि	भयानी	भयवतु
स	भयवन्	भयवानी	भयवान

भयान्—भयवन् का भ अङ्ग है ।

शिवधनुर्नामिका राम भीता परिणिनाय—शिवके धनुको तोड़कर रामन भीताको विजाह किया ।

स राजा मृगयो फतु वन जगाम—यह राजा शिकार करनके लिये वनको गया ।

सेनयोस्तुन युद्ध बभूव—दोनों सेनाश्रीमें घोर युद्ध हुआ ।

तनु त्रिप्राथमाभ्यामे वैश्वमेक ददश स—वहा ब्राह्मणकी आश्रमके समीप उसने एक वनिकको देखा ।

धपत्रिष्टा कागा काञ्चिच्चक्रतुर्वैश्वपादिसौ—वैश्व और राजा, जो बैठे थे, धनक प्रकारकी बातें करने लगे ।

वहु जगद् पुरस्तात्तस्य सत्ता किलाहम्—मैंने उसने सामा बहुत बातें की निशय मैं सत्त था ।

ऊन न सस्येष्वाधिको ब्रवाधे तस्मिन् वन गोपरि गाहमाने—उस राजाने धनमें प्रवेश किया, प्राणियोंमें वसती दुखनकी नहीं बनाता था ।

इस पाठमें परीक्षभूतका ध्यान किया गया है । संस्कृतमें तीन भूत कानिक लकार है । पहिले उनके अर्थों में भेद था, पर उसके बादके साहित्यमें बिना भेदके उनका प्रयोग किया गया है ।

पहिले परीक्षभूतसे दूरकी भूतकालिक क्रियाका बोध होता था । संस्कृत साहित्यमें इसका बहुत प्रयोग आता है । उत्तम पुस्तकसे मातृम दाता है । क वक्ता बोलोय था । लंसे—बहु जगत् पुरस्तात्तस्य मत्ता किलात्सु ।

## परीक्षभूत ।

## गङ्—पर

## विश्व—पर

प्र पु	जगत्	जगत्सु	जगद्	विश्व	विश्वसु	विश्वसु
म पु	जगन्वि	जगन्सु	जगन्	विश्वे	विश्वसु	विश्वे
उ पु	जगत्	जगत्	जगन्वि	विश्व	विश्वे	विश्वे

## गङ्—आत्म ।

## घृध—आत्म ।

प्र पु	मुमुक्षे	मुमुक्षुः	मुमुक्षुः	वृधे	वृधन्त	वृधे
म पु	मुमुक्षि	मुमुक्षुः	मुमुक्षुः	वृधिषे	वृधिषुः	वृधिषुः
उ पु	मुमुक्षुः	मुमुक्षुः	मुमुक्षुः	वृध	वृधिषुः	वृधिषुः

## नु—पर ।

प्र पु	नुनाथ	नुनुवत्	नुनुः
म पु	नुनविष	नुनुवत्	नुनुव
उ पु	नुनव—नाथ	नुनुवत्	नुनुमिस

इत अर्थात् यह मातृम पहेला कि

१ । परीक्षभूतमें धातुश्रीकी द्विव्य होता है । द्विव्यसे नियम ३० के पाठमें दिये गये हैं ।

२ । परोक्षभूतको प्रत्यय य है —

	पर ।				आत्म ।	
प्र पु	अ	अनुम्	उम्	ए	आत	इरं
म पु	य	अयुम्	अ	से	आपे	इय
उ पु	अ	अ	म	ए	वहे	महे

३ । इन प्रत्ययोंमें व, म, य और वहे, महे, से, तथा धी में इ आगम ही सकता है ( ३५ वा पाठ देखो ) ।

४ । विशेष, विविश्रित, इत्यादि—परस्मैपदको एकवचन प्रिकारक हैं , द्विवचन, बहुवचन तथा आत्मनपदको सब प्रत्यय अविकारक हैं ।

५ । विशेष, जगत् जगत्, नुनय नुनाय—विकारक प्रत्यय आगे रहने पर अन्तिम स्वर तथा उपान्तर द्रव्य स्वरका गुण आदेश होता है , प्र पु ए य में अन्तिम स्वर तथा उपान्तर अ फा नित्य सृष्टि होती है, और उ पु ए ध में विकल्पमें होती है ।

६ । नुनुविष इत्यादि—अज्ञादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर यानुषो अन्तिम उ को उव् होता है ।

कृ—उभ पर ।

आत्म ।

प्र पु	चकार	चक्रतु	चक्रु	चक्रे	चक्राति	चक्रिरे
म पु	चक्रय	चक्रयु	चक्र	चक्रुषे	चक्रापे	चक्रुर्हे
उ पु	चकरकार	चक्रुव	चक्रुम	चक्रे	चक्रुयहे	चक्रुमहे

शु—पर ।

ए—पर ।

प्र पु	शुश्राव	शुश्रुतु	शुश्रु	शुश्राव	शुश्रुतु	शुश्रु
म पु	शुश्राय	शुश्रुयु	शुश्रु	शुश्राय	शुश्रुयु	शुश्रु
उ पु	शुश्रव श्राव	शुश्रु	शुश्रुम	शुश्राव श्राव	शुश्रुय	शुश्रुम

इन रूपोंसे मात्रम होगा कि इनमें इ आगम नहीं होता ।

नियम —

७। क स भृ ए, एतु नृ, ए, तथा शु धानुस एतेषुमात्रे ष  
आगम नहीं होगा ।

८। खगर्ह—अ या आ के निष्ठा कार्हे मल्ल ह्यर पूय प्रोनपर भे  
का नियम टि हाता है ।

कौ—पर ।

आत्म ।

प्र पु विक्राय विक्रियतु विक्रियु विक्रिये विक्रियाते विक्रियते  
म पु विक्रय विक्रियतु विक्रिय विक्रियिषे विक्रियाये विक्रियिष्ये  
चिक्रिय

उ पु विक्रय-क्राय विक्रियिष्य विक्रियिष्य विक्रिय विक्रियिष्य विक्रियिष्य विक्रियिष्ये

प्रच्छ—पर ।

त्यज—पर ।

प्र पु	पप्रच्छ	पप्रच्छतु	पप्रच्छ	तत्याज	तपयतुः	तप्यजु
म पु	पप्रच्छिय	पप्रच्छिय	पप्रच्छ	तपयिष्य	तप्यजयु	तप्या
	पप्रच्छ			तपयिष्य		
उ पु	पप्रच्छ	पप्रच्छिय	पप्रच्छिय	तप्यज तप्यज तप्यजिष्य		तप्यजिष्य

वृ—आत्म ।

वृ—पर ।

प्र पु	ममार	ममनु	मयु	जहार	जहनु	जह
म पु	ममय	ममनु	मम	जहय	जहयु	जह
उ पु	ममार मार	ममिष्य	ममिष्य	जहार हार	जहिय	जहिष्य

नियम :—

९। तपयिष्य, ममिष्य, पप्रच्छिय विक्रियिष्ये, खगर्ह, मल्ल वृह, व,  
हत्यानि—क, ए, भृ, नृ, ए, एतु तथा शु का होकर और मय धातुओं  
के य के सिवा छत्र प्रत्ययके पूज ह आगम होना है ।

यहो नियम अनिट् धातुश्रीको लिये भी है ।

१० । मस्य, लङ्घ—ऋकारान्त अनिट् धातुश्रीमें य को पूव इ आगम नहीं होता ।

११ । तत्त्वजिघ—तत्त्वञ्च—पप्रच्छिद्य—पप्रष्टु, विक्रियिद्य—चिक्रेद्य—अजन्त वा अकारवान् अनिट् धातुश्रीमें य को पूर्व विकल्पसे इ आगम होता है ।

१२ । विक्रिययु, निनायु, इत्यादि—अजाति अधिकार प्रत्यय आगे रहनेपर धातुको श्रान्तम इ वा ईं का इय् होता है, यदि उसको पूव संयुक्ताक्षर हो । यदि उसको पूव संयुक्ताक्षर न हो, तो य् होता है ।

१३ । ममार इत्यादि—इ धातु परोक्षभूतम परस्मैपत्नी है । यह दोना भविष्यत् लकारों तथा क्रियातिपत्ति में भी पर है ( पाठ ३५, नियम ७ देखो ) ।

१४ । विक्रियिद्ये—ठे—लव ध्ये को इ होता है और उस इ को प्रत्यय र्, ल्, व, वा ए होता है, तो उसको विकल्प से ठे होता है ।

भू—पर ।

चि—पर ।

प्र	पु	बभूव	बभूवतु	बभूवु	जिगाय	जिग्यु	जिग्यु
म	पु	बभूविष	उभूवयु	धभूव	जिगयिय मेघ	जिग्यु	निय
उ	पु	बभूव	बभूविष	बभूविम	जिगय गाय	जिग्यु	जिग्यिम

दि—पर ।

चि—उभ ।

प्र पु जिघाय—इत्यादि । चिवाय—काय इत्यादि । चिद्ये चिक्रे इत्यादि ।

१५ । भू को षव बभूव् प्रकृतिसे बनत है ।

१६ । परोक्षभूतमें जि धातुको ज् को ग्, दि को छ् को घ्, तथा चि को च् को विकल्पसे क् होता है



वा—पर ।

ह्र—पर ।

प्र	प	पपो	पपतु	पपु	पहो	महत्तु	मह्
म	पु	पपिप	पपप	पप	मपिप	मह्यु	मह
		पपाय			महाय		
उ	पु	पपो	पपिप	पपिम	महो	महिव	महिम

घ्रा—लघा , ग्ले—सग्लो ।

नियम —

१०। आकारान्त धातुश्रुतिं प्र पु तथा उ पु के ए व का प्रत्यय श्रा है । अत्रादि अत्रिकारक प्रत्यय आगे रहनेपर, तथा इ आगम हो कर प्र आगे रहनेपर इस श्रा का लोप होता है ।

११। ग्ले—ग्लता, ग्लास्यति जग्लो—ए, ऐ श्रो, तथा श्रौकारान्त धातुश्रुतिको वृत्त आधधातुक लकारमें आकारान्त समभङ्गा चाहिये ।

गम्—पर ।

हृन्—पर ।

प्र	पु	जगाम	जगमत्तु	जगमु	जघान	जघन	जघ्
म	पु	जगमिप	जगमप	जगम	जघनिप	जघपु	जघ
		जगमप			जघप्य		

उ पु जगम गाम जगिमप जगिमप जघन घान जघिव अमिम  
घम्—जघाम जघत्तु जत्तु , खन्—खघान खघन्तु खघ्न् ,  
जन्—जघ् जघाने जघिरे , अद्—आ जघाम, आन्वि—जघमिप ।

नियम —

१२। आ—जघाम—पराक्षभूतमें अत्रु को विकल्पसे घम् हाता है, तथा यक पुथ अत् तथा अ् को नित्य इ होता है ।

१३। जगमत्तु, जघत्तु—अत्रादि अत्रिकारक प्रत्यय आगे रहनेपर गम्, हृन्, खन् खन्, तथा घम को वपाप्य श्र का लोप होता है , अ का

लोप होने पर हन् को घ् की घ् जाता है, और घस् को ( घस्—कस्—कष् ) ल, तथा छन् का ( लम्—जञ् ) छ् होता है।

२९। घन् धानु अत्रक परोक्षभूतमें लोभजाला एक आदेश है। इस लिये इसको परोक्षभूतमें खप गही जाये।

पुरा किल समस्ते चितिमच्छते सुरयो नाम राजा यभूज। शौरसान्  
 पुत्रानिश्च प्रजा सन्धक पालयत्सत्स्य कविर्द्व भूषा शत्रुयो यभूज। ते  
 सहातिप्रदलस्य तस्य युद्ध यभूव। शृणैरपि तैयुद्धे स क्षिप्ये। तत स खपुर-  
 भायातो निन्दनाधिपोऽभवत्। तत्रापि स प्रजलारिभिराक्रान्त। हुत्रलस्य  
 तस्य कोशा बल च मय खपुरेऽपि दुरातमिभ्रलि। ररिभिरपजहृ। ततो  
 दृत्तम्बाम्य स भूपतिश्च गयाव्याजेन दयमारुह्यैकाकी गहन वा जगाम।  
 तत्र च कस्यचिद् द्विलवयसगश्रमप इश। तेन मुनिना शकृतस्तस्मिन्ना-  
 श्रम स कचित् काल तस्यो मस्र्वाकृष्टचितन यन्नचिन्तयच्च। यत् पुर  
 मत्पूर्वं पृज पातित तन्धुना मया हीगम्। न जान मन्नुष्यैर्यद्वृत्तेर्धमत  
 पाव्ये गे या। धनभोजनैरित्य प्रसादिता मन्नुपायिनोऽत्यान्यमहोभृतां  
 यति कुर्वन्ति। अतिदु खेन सचित कोशलोपासमद्दयैः क्षय गमिष्यतीति।

श्या वसन्ततिलका तभजा जर्गी ग ।  
 रात्रिगामिष्यति भविष्यति सुप्रभात  
 भास्त्रानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्री ।  
 इत्येव चिन्तयति कोशगत द्विरफे  
 एा हन्त हन्त नलिनी गन उमुम्ल ॥  
 १ तञ्जल यन्न सुचारुपङ्कज  
 न पङ्कज तद्यदतीनपट्पम्सु ।  
 न पट्पम्सोऽपौ न जुगुञ्ज य फल  
 १ मुञ्जित तन्न जहार यम्न ॥

एका हि त्वापो गुण रुनिपात  
 निमज्जतीत्यारिति यो व्रमाणे ।  
 तून न दृष्ट कथिनापि तेन  
 त्वात्पिनापो गुणराशिनाश्री ॥  
 वासामि लोणानि यथा सिद्धाय  
 नद्यानि वृह्णाति मराऽपरानि ।  
 तथा शरीरानि सिद्धाय जीवा -  
 मन्वानि संद्याति नद्यानि त्थी ॥

छिन्न प्रकार पिता अपने लड़कीका हितचिन्तन करता है उसी प्रकार  
 राजाको दृश्यसे प्रजाको हितचिन्तन करना चाहिये ।

उस प्रसङ्ग पठनन, जो कभी किसीने पढ़ले मुना नहीं था, वागर्षी  
 सप्त पेड़ोंको लडसे उखाड़ दिया ।

पाण्डव तथा कौरवोंमें अठारह दिन तक घोर युद्ध हुआ । अन्तमें  
 कौरव हारे ।

एक बार राजा दुष्यन्त तिकारके लिये वनमें गया । उसने क्रमशुनिके  
 आश्रममें प्रवेश किया । उस आश्रममें एक उमीवेमें वसन हो सखियोंके  
 साथ पंदाका भींचती हुई शकुन्तलाका देखा । उन दोनोंम परस्पर प्रेम  
 हुआ और वसन शकुन्तलासे मान्धव दिया, किया ।

#### संज्ञाशब्द ।

, अन्धाश ( पु )—सामीप्य अमद्गय ( अमद्गय ) ( पुं कर्म० अषत्—खराब + अय—पु खख ) —अयोग्य खख [२ खनी कोश ( कोश ) पु —१ खजाना ,	चित्तिसण्डल न ( चित्ति—स्त्री पृथ्वी )—सूत्रण्डन गो ( स्त्री )—पृथ्वी चतन ( चतन ) पु —मन दारिद्र्यन्नेष ( दारिद्र्यन्नेषः ) पु कर्म०,
--	---

दारिद्र्य—न निधनता +  
 शोध पु )—निधनताका शोध  
 देहिन् ( पु )—आत्मा  
 धनुम् ( न )—धनु  
 नलिनी ( स्त्री ) कमलकी लता  
 भासत् ( पु )—भूष  
 मघट्ट ( पु )—इष्ट  
 ममत्त्व ( ममत्त्वम् ) न—ममता  
 मघोषत् ( पु )—राजा  
 मृगयाद्यान पु ( मृगया—स्त्री +  
 व्याञ्ज—पु )—शिकारकर वधना

वमन्ततिलका-क ( स्त्री, न )—एक  
 कृत्का नाम  
 घासम् ( न )—वस्त्र  
 जिघ्र ( जिघ्र ) पु—ब्राह्मण  
 हृत्ति ( स्त्री )—लौजिका  
 घट्पद ( घट्पदम् ) पु—धमर  
 मनिपात ( मनिपात ) पु—समूह  
 सन्ध ( सन्धम् ) न—धनु  
 सुरय ( सुरय ) पु—एक राजाका नाम  
 म्नाम्य ( म्नाम्यम् ) न—मालक्रियत,  
 प्रभुता

विशेषण ।

अतिप्रबल—बहुत बली  
 अनुयायिन्—अनुगामी  
 श्रवद्भृत् ( बहु० )—दुखरितु  
 आकृष्ट ( आ + कृष्ट + त )—  
 छोटा गया  
 आक्रान्त ( आ + क्रम् + त )—  
 आक्रमण किया गया  
 उपविष्ट ( उप + विष्ट + त )—  
 बैठा हुआ  
 ऊन—दुबल  
 शीरम ( शीरम—न से )—शय  
 अपना

कल—श्रवण मधुर  
 मदन—धना  
 गुणराशिनाशिन—गुणकी समुदाय  
 को नष्ट करनेवाला  
 गोम—रक्तक  
 जील ( लु—णि पर—लीयति—का  
 मू कृ )—गला हुआ  
 गुप्त—घार  
 द्विनजय—द्विजोंमें श्रेष्ठ  
 निश्च—अपना  
 म्पूत—दुबल

प्रकाशित ( प्र + मृ - प्रे + त )	भक्षण - मृध
— प्रकाश किया गया	सुभाष ( प्राप्ति + मृ, सुष्ठु, चाट ) -
सञ्चित - ( सम + चि + त ) परबुद्धा	अतिमुग्ध
किया गया	हीन ( हा - होइना, + त ) - रहित,
सकृत - प्रसन्नता प्रकाश किया गया	शून्य

## धातु ।

अप + हृ ( अपहरति - म्या पर ) -	परि + नी [ नी ] ( परिलयति म्या
हरना, ले जाना	पर ) - विद्याए करना
उ + मूल ( उमूलति म्या पर ) -	पानय ( पा अ पर पे ) - रपय करना
उखाड़ना	वाध् ( वाधते - म्या पर ) -
गम् ( गन्ति म्या पर ) - घोलना	दु ख देना, मताना
गाह् ( गाहते - म्या आ ) - प्रवेश	मसु + धा ( संयाति - अ पर ) -
करना	प्रवेश करना
रञ्ज् ( रञ्जति म्या पर ) - गूजना	हम् ( हर्मा - म्या पर ) - छटना
नि + मरन् [ मरञ् ] ( निमज्जति -	
तु पा ) - डूबना	

## शब्दार्थ ।

१. किञ् - निश्चयसे, लोग सेषा  
 कर्त्तृ शब्द  
 निमित्तवत्त्वा ( नम् प्रे अथ  
 मू क्त ) भुक्ताकर

- नूनम् - निश्चयसे  
 पुरा - पूर्वकालमें  
 पूजम् - पहिले

पाठ ३७ ।

परोक्षभूत ।

उमको छि वैशेहो बहुशक्तिमेन यज्ञेन ईजे ( यज्ञेभजे )—विद्ययसे  
विशेषके रात्ता ज्ञानकरे यत्न किया, छिमें बहुत दक्षिणा भी गयी थी ।

ते कपीन्द्रा मय्यु रोह्नु न शेकु — उच्चतम कपि क्रोधणा न रोक सके ।

तपोष्णुमुल युह समापदे — उन नीनीमें घोर युद्ध हुआ ।

निश्व दवानुचररय वाच मनुष्येश्व पुनरप्युवाच—देव ( शिव ) को  
संशककी बात सुनकर मनुष्योंके स्वामी ( राजा ) न फिर कहा ।

विश्वामितृमागत प्रोक्ष्य वसिष्ठ स्वामत व्यानहार—विश्वामितृको  
आये हुए दक्ष वसिष्ठने स्वागत वचन कहा ।

परोक्षभूत ।

पच्—पर ।

प्र पु	पपाच	पेवतु	पेचु
म पु	पेविय पपक्य	पचयु	पेच
च पु	पपच पाच	पेचिय	पचिम

शक्—पर ।

प्र पु	शशाक	शेकतु	शकु
म पु	शेकिय शशक्य	शेकयु	शेच
च पु	शशक शाक	शेकिय	शकिय

तू—पर ।

धस्—पर ।

प्र पु	ततार	तेरतु	तेरु	बधाम	बधमनु	सेमनु	बधमु	सेमु
--------	------	-------	------	------	-------	-------	------	------

भच्—पर ।

राज्—पर ।

प्र पु	धमाज	भेजु	भेचु	रराच	रराचु	रेजु	रराचु	रेलु
--------	------	------	------	------	-------	------	-------	------

तुप आरय ।

यम्—पर ।

म पु अरिष्य अरुषे अराय अरि अेष य म पु दयाम उदयानु यप्रमु

भञ्ज—पर ।

म पु वभञ्ज वभञ्जु यः भञ्जः

नियम —

१ । पचतु, वभञ्जु, चकन्तु, पथिष—यदि किसी धातुमें भी कञ्चुनांश थाच अ हो कर उसका प्रथम अक्षरमें द्वित्व होकर काद परत्तन न होता था, ता अभ्यासना लोप होता है और अत्रिधा क प्रत्यय तथा क क मृदित च आने रहने पर य दो न होता है ।

२ । तरतु, भञ्जय फेलिष चर, दधमिष धमिय—तु फर्त् भञ्ज, यष ह्यादिमें यष षत्य तथा अभ्यासलोप नियम, तथा यम् तुम् राज् धाञ् ह्यादिमें विकल्प होता है ।

३ । यप्रमनु—यकारादि धातुश्रीम पक्ष परिचयता नहीं होती ।

रुप—पर ।

अ—पर ।

म पु अकार अकारतुः अकार म पु आरिष्य आरु आर

कृ—पर ।

म पु अकार अकारतु अकार

४ । अकारतु, अकारतु, आत अकारतु — अकारात् अकार, अकारतु पूर्व सप्तकार हो, अकारात् आत अकार, तथा अकार धातुके परोलभूतमें अत्रिकारक प्रथम आने रहनेपर भी गुण अत्रिष्य होता है ।

यज—पर ।

यद्—पर ।

म पु अयाज अयतु अयु अयाज अयतु अयुः

म पु अयत्रिष्य अयतु अयु अयु अयत्रिष्य अयुः अयुः

म पु अयाज अयतु अयु अयु अयत्रिष्य अयुः अयुः

यज् + य = अयज् + य = हयन + य = हयन् + य ( २८ वां पाठ, अ ) = हयन् + ठ = हयन्ठु ।

यज् + अयु = हय् + अयु = हयज् + अयु = हय्यु ।

अट्—पर ।

याउ—पर ।

म पु नम्रष्ट नम्रष्टु ऋष्टु चवास कपतुः कपु

यव—पर ।

यच—कर्मणि ।

म पु चवाच ऊचतु ऊचु ऊचे ऊचते ऊचिरे

१३ । यज्, यष्ट, यष, यष्ट, व्यध, यव, यम ( १३वा ), अट् स्वप्, तथा और कुछ धातुओंके परोक्षभूतमें अभ्यासको सम्प्रसारण होता है । अधिकारके समय आगे रहनेपर धातुग्रांथका द्वित्व होनेकी पूर्य सम्प्रसारण होता है ।

इप्—पर ।

इ—पर ।

म पु इषेय ईषतु इषु इषाय ईषतु ईषु  
म पु इषेयिय ईषयु ईष इषयिय इषेय ईषयुः इष +

स्वप्—पर ।

सि—आत्म ।

म पु सुध्याप सुध्यातु सुध्यापु निष्पिये निष्पियाते निष्पियिरे

( अ ) इप् + इय = इइप् + इय = इ इप् + इय = इय + इप् + इय = इषेयिय ।

इइ + अ = इ ये + अ = इ आय् + अ = इय् + आय् + अ = इषाय ।

( ब ) इइ + अतु = इय् + अतु = ईय + अतु = ईषतु ।

( क ) स्वप् + अ = सु अ स्वाप् + अ = सु स्वाप् + अ = सुध्याप् + अ = सुध्याप ।

सि + ए = निष्पि ए = निष्पिय + ए = निष्पिये ।



गुण आरम ।

यम्—पर ।

म पु अविद्यन्त्सि अमाप अविद्यन्त्सि आध्य म पु दयाम वधम्, वधम्

धञ्—पर ।

म पु धञ्

यधञ्

यधञ्

नियम —

१ । पञ्चगुः, यमञ्चगुः, चञ्चगुः, पञ्चि—यञि किञ्चो धातुसंज्ञो ऋष्यभक्ति धान् अ हो चोर उभयो मयम लठञ्जने द्वित्ये दामवर कर्त्तव्यतन न दाता हो, ता ऋष्यामला लोप दाता हे चोर अत्रिवाकल दय्य तथा र्त्तं क मदिता च आर रदन पर ययो ए ह ता हे ।

२ । गरन्, भञ्जय कर्मिण्ये, यधमिच धमिच—तू कर्त् भञ्, यप हयादिभ यष्ट ष्ट्य तथा अभासलोप निय, तथा यम् गुम् राञ् धाञ् इत्यादि विकल्प्ये धाता हे ।

३ । यजम्—यकाराणि धातुशाम यष्ट परिवान नष्टो हीता ।

श्च—पर ।

श्च—पर ।

म प सप्तार मस्यारुः सप्तार म पु आरिच आरु आरिच  
कृ—पर ।

म पु चकार चकारु चकार

४ । मस्यारुः, चकारुः, आरु अत्रागरु — शृकारान् धातु, जिनके पूर्व यदुन्नासर हो अकारान् धातु शृ तथा चाप धातुके परोक्षभूतर्त्त अत्रिकारक प्रत्यय आगे रदनेपर भी हुय आञ्ज दाता हे ।

यञ्—पर ।

वष्ट—पर ।

म पु इयान	इञ्जतु	इञ्नु	उवाच	कटु	कटु
म पु इयञ्जिच इयञ्जु	इञ्जयु	इञ्ज	उवाच	उवाच	उवाच
उ पु इयाञ्ज	इञ्जिच	इञ्जिच	उवाच	उवाच	उवाच

यञ् + य = इ अयन + य = इयन + य = इयप् + य ( २८ वा पाठ, य ) = इयप् + ठ = इयष्टु ।

यञ् + अयु = इय् + अयु = इइञ् + अयु = ईजयु ।

ग्रह्—पर ।

घञ्—पर ।

म पु अग्रह लृहत्तु नश्नु चवाम कश्नु क्यु

घव—पर ।

वच—कर्मणि ।

म पु चयाव कश्नु क्यु कचे क्वात ऊचिर्

३ । यञ्, घह, घघ, घङ्, घध, घव, घम ( भ्वा ), ग्रह स्वप्, तथा ओर कुछ धातुश्लोक परोक्षभूतमें अम्यासन्तो सम्प्रसारण होता है । अत्रिकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धातुश्लोक द्वित्व होनेको पूर्य सम्प्रसारण जाता है ।

इप्—पर ।

इ—पर ।

म पु इषेय ईषत्तु ईषु इषाय ईष्यतु ईष्यु  
म पु इषेषिय ईष्यु ईष इषयिष इषय इष्यु इष्य

इष्य—पर ।

सि—आत्म ।

म पु सुखाप सुपुपत् सुप्पु सिषिये सिषियाते सिषियिरे

( अ ) इष् + इष = इइष् + इष = इ एष् + इष = इय + एष् + इष = इषयिष ।

इह + अ = इ ए + अ = इ आम् + अ = इय् + आय् + अ = इषाय ।

( व ) इह + अयु = इय् + अयु = इय + अयु = ईष्यतु ।

( क ) स्वप् + अ = सु अ स्वाप् + अ = सु स्वाप् + अ = सुखाप् + अ = सुखाप ।

सि + ए = सिमि ए = सिषि + ए = सिषिय + ए = सिषिये ।

६। ( अ ) इयाय, उयोय इयाय—अमयाय अय् आगे रहनपर  
अभ्यासके इ या व को इय् वा उय् होता है ।

( ब ) ईयन्तु—अविचारक प्रत्यय आगे रहनपर घातुकी इ को य तथा  
अभ्यासके इ को लीय होता है ।

( क ) मुद्याय, निषिद्य—इय् तथा सि की म् को य् होता है ।

त्रि—म्वा पर का शिश्यय रथाय, श्रुश्रु—शाय, शिश्ययिष्य—शुश्रुषिष्य  
( क्वाकि यद्य घातु भेद है ), इ—इ—लुङ्—पुङ्गव—दाय—

७। शि को षोडशभुक्तके एव विकल्पसे शु से घनत है, पार ट् के  
निय हु से घना है ।

अह्—पर ।

अच—पर ।

प्र पु आनह आनह्तु आनहु आनच आनचतु आनचु  
अह्—इत् आत्म म पु—आनशिदि आनले आनशाये आनशिध्वे—  
आनहळे ।

नियम —

८। अकारान्ति घातुश्रोम, जिनमें सयुक्ताक्षर हों, अभ्यासके अ को  
आ होता और उसके बाद न् आराम होता है । अण्—स्वा से भी, जा  
वंट है, यद्य नियम लागता है ।

( अ ) इङ्—प्र पु ए व—इजांचक इजाच्यभूव—इंशायास,  
इल्—उन्नाचकार—वभूव—आस ।

( ब ) इय्—इयांचके—वभूव—आस, अय्—अयाचके—वभूव—  
आस, आस—आसाचके, विद्—विदि, विञ्चकार, लाय—लजागर  
—जागराचकार, भी—विभाय—विभयांचकार, भ्—वभार—विभरा  
चकार, टो—निदाय—जिदयाचकार, हु—लुदाय—लुदायांचकार ।

( क ) चुट—चोरयांचकार—वभूव—आस, धृ—धे—कारयां  
चकार—उभ्व—आस ।

नियम —

६। (अ) — अ वा आ की छोड़कर अजादि धातुओंमें, जिनका अदि अच् दीर्घ ही वा इच्च होकर उसके पूर्व कोई सयुक्ताक्षर हो, उनके बाद आम् लगाकर कृ, भू, वा अम् धातुके परोक्षभूतका रूप छोड़ने से परोक्षभूतके रूप बनते हैं ।

(आ) इच्, अच् तथा आस के परोक्षभूतके रूप भी इसी प्रकार बनते हैं, विद्—अ पर जाण्, भी, घ्री, भृ तथा हु में आम् इत्यादि विकारपसे होते हैं। लज ये हीने हैं तत्र साधधातुक लकारोंकी तरह इनकी द्वित्य होता है। आम् विकारक प्रत्यय है, वह आगे रहनेपर विद् अ पर के इ की गुण नष्टो होता ।

(इ) चुत्वादिगणके धातु, प्रेरणापक तथा इतर मूलध धातुओंके परोक्षभूतमें इसी प्रकार रूप बनते हैं ।

(ई) यच् धातु आत्म दा तो कृ को भी आत्मनेपदके रूप इसको लगते हैं, पर भू तथा अम् को पर से रूप लगते हैं ।

१०। कर्मणि वा भावे—तयजे, यभूजे—कर्मणि वा भावे प्रयोगके रूप आत्मनेपद प्रत्यय लगाकर बनाये जाते हैं ।

समानमीहमानानां चाधीयात्मानां च केचित्<sup>१</sup>ैवु ल्यन्तेऽपरे न । तत्र किमस्माभिः  
कतु शक्य स्याभाजिकमतत् ।

या वै ब्राह्मणानामनृधानतम स रषां दीपवत्तम ।

अलमा बहु विकल्पय । राक्ष समक्षनेदावधारधरोत्तरशक्तिभविष्यति ।

एकं पुत्रिय फनाहाराय वन गतं न्ययत्तुता उमन्त्रे स्त्री रशुका  
स्नातु क्षाम । आसक्छन्ती यदृच्छया धिनुरय नाम नृपमुद्रिमन्त मभाय  
त्तमः । इया च तत्तुस्त्रमधिसत्तुमियष । एतस्माद् दृष्टविचारात् या  
नियमाश्चुचुरे । आधम च तुसा प्रथिमः । समन्त्रिस्ता द्राष्टा लक्ष्या

विश्वित्रीणां धेनुःशरणां नृशत्रुः । विश्वरूपेण च तां जगद्दे । ततः च  
 आनुपूर्वाद्युक्तं पदान् सारं जगत्कारिणम् । न तु साधुःशरणाद्विद्येतत्  
 न किञ्चिद्ब्रह्मादिभिः । तस्मात्तु कोषात्तुमिहाद्यं शशाप, यज्जमे पशु  
 परशुनाम च साधुःशत्रुं पशुं शशाप । साधुःशत्रुः विश्वेऽपि परशुना  
 विनुमाना जिरसि कृत्याऽप्या निर परशुना विच्छेत् । ततो जगदपि  
 प्रममात्त्यन्त्याय च ।

समं च यथाज्ञातं जगत् न कम दुस्परम् ।  
 शरीरं च कामात् प्रमत्तं तस्मात् शशापे दुःखम् ॥  
 स शत्रुं मा ज्ञानमस्मृति च तपस्य जे ।  
 पापेन मनःशान्तं चानृतां प्रकीर्तय ॥  
 अस्मिन्निदृशितां पुत्रे शोभायुक्तं ततः ।  
 शत्रो च भयान् कामांस्तान् शशापिदृशतप ॥  
 हा राम हा राम हा जगत्करीर

हा गाय हा रघुपते शिशुरक्षणे मासु ।

दत्तं विश्वतनयां मुहुरानवन्ती—

सात्तप राक्षसपतिनभसा जगाम ॥

मानुषशृङ्गागतस्य भराद्यै केष्वप्यस्य मशान्शोभसु—

सात्तपान् कृ पात, सुरपति भजन, हा कृत, प्रशुशोकार  
 कोऽशोपुत्रुपनया, स्वमवरपतया दस्य जात, किमस्य ।

सात्तपसा काननास्त, शिमिति, जप गरा कि तथासां शशापे  
 मद्वाश्रुतु कृत ने किमिह तज धराधीशता, न जसोर्दिसा ॥  
 यद्योऽप्येवह जगत् प्रवध्या प्रवतने चादितकमभिरुये ।  
 शश्विन्द्रारामयणकद्रुशन्ति च न स्या यच्छु मद्रुल रथि ॥

चार वेद, छ वेदाङ्ग, मीमांसा, न्याय, पुराण, तथा धर्मशास्त्र ये चोक्त विद्याकी गणना हैं ।

ब्राह्मणका सम्बन्धे आठवें वर्ष, क्षत्रियका ग्यारहवें, तथा वैश्यका बारहवें वर्ष उपनयन ( यज्ञोपवीत ) करना चांछिये ।

अनुनन रथसे पूछा कि वसिष्ठ और विश्वामित्रम श्रुता कौ उत्पन्न हुए ।

कुशिकका पुत्र माधि नामका एक बड़ा राजा था । उसका विश्वामित्र नामका अति प्रतापी पुत्र था । किसी समय विश्वामित्र युवायाव वन गया और वृषासे पीड़ित हो वसिष्ठक आश्रममें चुमा । वसिष्ठने उसका स्वागत किया । विश्वामित्रने वसिष्ठम उनकी कामदुष्टा मा वनका नियम प्रदाना की, पर वसिष्ठन उसे गौ न ली ।

सौतेनेका कथन नहीं है । आशा, हम लोग लड़, लिये ल ग सम्भक्ष जाय कि हम दोनोंमें अधिक बनी काम है ।

सङ्गाशब्दः ।

अपरोक्षव्यक्ति ( स्त्री )—योगि	अभृति ( स्त्री )—भूतमा
एकका उत्कृष्ट या निकृष्ट	आनपूज्य ( आनुपूज्यम् ) न—क्रम,
होनाका लक्ष्य होना	एकस वाचकका एतना
अप्रतिवृद्धता—( स्त्री प्र + प्रति-	उत्थाग ( उत्थागम् ) न—उठना
वृद्धि—पु शत्रु + ता )—	कानन ( काननम् )—वन
वह अथवा निबन्धे कोई शत्रु	चिचुरय ( चिचुरय ) पुं—एक राजाका
होती	नाम
अवर्तता ( अवर्त ० वाच्य,	जसगति ( पु )—एक शक्तिका नाम
अथवा पु छोटा भाई )—छोटा	तात ( तात ) पु—उत्प, लड़के
भाईवन	शिष्य ह्यपान्तियो मध्ये
अपग ( पु )—स्वयका अभाय	प्रयोग किया जाता है

पराधीनता ( स्त्री )—प्रत्योका	मानस (मानसम्) ( न )—मन
अधिपति राजकी	रेवता ( स्त्री )—समर्पणी स्त्री
परशु ( पुं )—ऊरुका कठार	वेदद ( वेदः ) पुं —विदेहका राज्ञः
पराशुराम (पराशुराम) पुं—अमरपि	भवन
का पुत्र शिवन पुत्रयोका १ धार	गुरपति ( पुं )—देशिका राज्ञः
सुविपशुना दर शिवा	दृष्ट
भारत ( भारत ) पु—भारतवर्षीय	स्वागत (स्वागतम्) न (प्राणि वः
अनुन	गुप्तु आगतम्)—स्वागत
मनु ( पु ) १ माघ, २ आश्व	दृष्ट (न)—दृश्य (इषके प्रथम पाठ
मानुन ( मानुनः ) पुं—माया	एव नदी ज्ञाते । )

विशेषण ।

अचल—धन	चुन ( चुन + त, स्त्री चुनता )—
अपोयान ( अजि + ह - अ	गिरा हुआ
भा का या हू )—पदता हुआ	तायू—उतना
अनुचानतम—गुदमे भाङ्ग वे पदने	गुप्त ( गुप्त + त, स्त्री गुप्ता )—
यागम उत्तम ( अनु + यच् )	रस हुआ
सँदमान ( सँद—अथा धा वा यत	धमच—धमको जाननेवाला
हू )—वेष्टा करता हुआ	नियतयुत ( यहु०, नियत—नि +
श्रुद्धिमरु—वस्तु	यम् + त, युत न—स्त्री तता)
रक—अद्वितीय, अनुपम	—सो नियमसे युत करता है
व्यविध ( यहु० एव विधा यथ म	ब्राह्म ( स्त्री ब्राह्मी )—पवित्र ,
एवंविध एवम् + विधा—	ब्राह्मणसम्बन्धी
स्त्री प्रकार )—इव प्रकारका ,	भविष्य—भविष्यत्
रेखा	मदातपन—विषका तप इडा है
	यावत्—जितना

रमय—वितास करता हुआ,  
 विलासके आनन्द देता हुआ  
 विवेतम् ( वहु० )—उदास

त्रियन्तित ( त्रि + यञ् - चु उभ,  
 स्त्री - वा )—रहित

घान ।

अभि + प्र + ईत् ( अभिप्रैक्षते -  
 भ्यां प्रा )—देखना  
 आ + णिच् ( आण्णिति—ण पर )  
 —आज्ञा करना  
 उप + ईत् ( उपेक्षते—भ्यां प्रा )  
 —उपेक्षा करना  
 उप + क्षन् ( उपजायते—णि प्रा )  
 —उत्पन्न होता  
 उप + आ + छप ( उपसपति—भ्यां  
 पर )—पहुचना, पास जाना  
 गृह् ( गृह्ते—भ्यां प्रा )—निल्या  
 करना  
 च्वा—( च्वाञ्जते—भ्यां प्रा )—  
 सिरना

नि + श्मृ ( निशाम्यति—णि पर )  
 —सुनना  
 प्र + बुध् ( प्रबोधति—भ्यां पर )  
 —जानना  
 वाञ्छ् ( वाञ्छति—भ्यां पर )—  
 चाहना  
 वि + कल्प् ( विकल्पते—भ्यां प्रा )  
 —झीटना, अपनी क्षुति करना  
 वि + आ + हृ ( व्याहरति भ्यां पर )  
 —कटना  
 शप ( शपति ते भ्या उभ )—  
 शाप देना ( कसम खानेके शप-  
 में चतुर्थी के साथ—शपे ते  
 मनुजाधिप )

अव्यय ।

अप्रत—आग  
 कनाहारार्थम्—( चा० त.पु०,  
 कल—न + आहार—पु ) कल  
 खानेके लिये  
 भृग्म्—बहुत  
 यच्छ्रया—( यच्छ्रा—स्त्री के वृ  
 का ए व )—अस्मान

वै—निश्चयके, वाक्यालङ्कारमें प्रयोग  
 किया जाता है ।  
 समक्षम्—सामने, किसीकी उप  
 स्थितिमें ( अव्य अव्यय ५  
 —या समीपम् )  
 गुह्यम्—सुपके



## पाठ ७८ ।

कुठ अनियत खप ।

समाह्वान मध्यमद्वय मयिता—सूर्ये त्रिनके मध्य पर चढ़ा है—यह मध्याह्नका है ।

नायकप्रत्यक्ष तिर्यक्षोऽपि मापता याति—पशु भी उसके सहायक होते हैं जो आपमागधे चलता है ।

सा यद्वि तस्मिन्नभिः शतशः शशाकं जापोनतया न वक्तुमु—यह लज्जाप्रश उस पुशाक विषयम श्रुत । प्रेमको न कह सकी ।

यस्मात्सा य पुमां लोके (पुमांलोके)—जिसके पास धन है वह छात में पुष्य (समाप्त जाता है) ।

पारत मवत (समार) त्यक्ता व्रजतीति परिव्राट्—यह जो सभारका परिण, चारा श्रोर से श्रयोत् सन्ध्यूप खपसे क्लोडकर चला जाता है वह परिव्राट् श्रयोत् म याथी है ।

आश्रिप प्रतिष्ठन्तासु—आशीवां लिये लाय ।

माला कारा पुष्पाणा स्वजोशन्ति—मानी लाग फलोंकी मालाएं गुपत हैं ।

भवेत्तद्यथा भयन्तीति यथाभव क्षयन्ते—सेइक वरसातमें होत हैं हवलिये वर्षाभू । वर्षाभिं कल्पन शनिजाल ) कहते हैं ।

सा तु स्वयमुगीः द्वितीया यष्टि—यह ती निशयसे ब्रह्माकी अपूर्व यष्टि है ।

जरसा दिगुलीभूतमस्य शरीरम्—इसका शरीर बुढापेसे मानी हुना ही गया है ।

हे मद्यवन् अमु उरग परिमात्कु मद्यधीति रघुनामयत्—“हे इन्द्र ! इस शत्रुको क्लोडना आपकी उन्नित है” इस प्रकार रघुने उससे कहा ।  
इस पाठम अनियत खप त्रिये मय है ।

जरा—स्त्री ।

प०	जरा	जरे जरसौ	जरस -जरा
प०	जराया —जरस	जरयो —जरसा	जरायासु—जरसासु

इसो प्रकार निर्जर शब्दके—निजरौ निजरसो, निजरस्य निजरस, इत्यादि ।

१। अर्थात् विभक्ति आगे रहनेपर जरा और निजर को विकल्पसे जरस तथा निजरस आदि होते हैं ।

सेनानी—पु स्त्री ।

प	सेनानो	सेनायो	सेनाय	प	सेनाय	सेनायो	सेनायासु
द्वि	सेनायसु	”	”	स	सेनायाम्	”	सेनानीषु

सुधी—पुं ।

स्वयम्—पु ।

प	सुधी	सुधियो	सुधिय	स्वयम्	स्वयमुयो	स्वयमुज
	वषाम्—पु ।			पुनम्	—स्त्री ।	

प	वषाम्	वषाम्त्रो	वषाम्त्र	पुनम्	पुनम्त्रो	पुनम्त्र
---	-------	-----------	----------	-------	-----------	----------

२। अर्थात् प्रत्यय आगे रहनेपर धातुय शब्दके द या क को य् व् या इय् तथा उय् आदेश करनेके नियम कठिन हैं । अधोलिखित भाते ध्यानमें रखनी चाहिये :—

(अ) निय, भुज, नियाम् भुजि—यत् धातुञ् इच्छते पूज कोई वृक्षरा गज न हो तो अन्तिम ईं वा क या इय् वा उय् होता है ।

(आ) मध्य, उन्नय ( यदा उन्नो में मयुक्ताक्षर ऐ पर वद धातका नहीं है, उन्नीनी ), मयक्रिय, वृष्य ( वृष्ट व्यापतीति ), वृषियः ( वृष्टा धीर्षयात् )—यत् धातुशे अन्तिम द या क को पूज धातुका मयुक्ताक्षर हो और यत् तत्पुङ्गव समान हो, तो अन्तिम ईं वा द को य् वा व होता है, ।

वाचक—(६) भुय, सुधिय —म् तथा सुधीके अन्तिम ऊ तथा ह्रस्वो क्रमसे उय तथा ह्य् जाता है ।

प्रतिप्रसज—(७) वषाभ्यो, पुनभ्या— परतु वषाभू तथा पुनभू के अन्तिम ऊ को व् जाता है ।

(क) नियाम्, सेनाभ्याम्, ग्रामभ्याम्—नीशब्द, तथा सेनानो, ग्रामयो इत्यादि नो से अन्त जानेवाले शब्दोंका मस ए व का रूप प्राप्त लगानेसे बनता है ।

(ख) मध्य न्विया, सुधिय या त्विया उय अन्तिम ई तथा ऊ को इम् तथा उय होता है तो हंकारान्त तथा ककारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप धी तथा भू के समान होते हैं, और छद्म अन्तिम ई तथा ऊको य तथा छ जाता है तो उनको वय लट्मी तथा यधुको समान होते हैं ।

(ग) ग्रामभ्या, सेनाभ्या (प प थ थ)—ग्रामयो सेनातो इत्यादि स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप लो आरम्भमें पुरुषने धावारका वीथ कराते है, पुल्लिङ्गके रोंके समान होते है ।

पुष्—पु ।

प	पमान्	पुमांसो	पुमांस	वृ	पमा	पुभ्याम्	पुभि
हि	पुमांसम्	पुमांसो	पुन	थ	पुमन्	पुसातो	पुमांस

३। सवनाप्रख्यानके पूर्व पुष के रोंपर ध्या हो। प् अङ्गमें पुष् के थ का लोप जाता है ।

छञ्—स्त्री ।

अप्—स्त्री ।

(यह केवल बहुवचनमें होता है ।)

प	छञ्	छञो	छन	आप	अप	अद्भि
स	छनि	छनो	भूञ्	अद्भ्य	अद्भ्य	अपाम् अप्तु

४ । धृत्वा- श्रिमक्ति आगे रहनेपर मज् जो ल को फुं होता है ।

५ । अच्, प्राच्, अद्, सिक्ता, यर्षा, तथा समा-इन शब्दोंको रूप प्राय बहुवचनमें होता है । इनमें अन्तके तीन शब्दोंके रूप एकवचनमें भी कभी २ प्रयोग किये जाते हैं ।

प्राप मुमनसो यर्षा अक्षरा सिक्ता समा ।

एतं स्त्रियां ( स्त्रीलिङ्गमें ) बहुवचनं रूपरेकर्त्तव्येऽप्युत्तरतुयम् ॥

उशनस-पुं ।

प्र उशना उशनसो उशनस म ए य उशन-उशन-उशनन्  
६ । इस शब्दको प्रथमा तथा सम्बोधनके ए य को रूपसे तरफ ध्यान दो ।

प्राच्-पुं ।

प्रत्यच्-पुं ।

प्र	प्राङ्	प्राञ्चो	प्राञ्च	प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चो	प्रत्यञ्च
द्वि	प्राञ्चम्	”	प्राच	प्रत्यञ्चम्	”	प्रतीच
तृ	प्राचि	प्राचो	प्राचु	प्रतीचि	प्रतीचा	प्रत्यचु

तियच्-पुं ।

उदच्-न ।

प्र	तियङ्	तियञ्चो	तियञ्च	उदक	उन्नीचो	उन्नीच
द्वि	तियञ्चम्	”	तिरञ्च	”	”	”
तृ	तिरञ्चि	तियरभ्याम्	तिरञ्च	उन्नीचि	उन्नीचाम्	उन्नीचम्

० । प्राच्, प्रत्यच्, उदच्, अश्चच् तियच् इत्यादि अच्' धातु(जाना) से बन हुए शब्दोंको मयनामस्थानमें अन्तिम वक्ष्य पूर्यन् लगता है । भ अङ्गमें अच्'को अ का लोप तथा उमका पूर्य रहनेवाले स्वरको दीर्घ होता है अर्थात् उनको प्रकृतियां प्राच्, प्रतीच, अचु होती तियच् का भ अङ्ग तिरञ्च, तथा उदच् का उन्नीच है ।

पुत्रन्—पुं ।

रन्—पुं ।

प्र	पुत्रा	पुत्राना	पुत्रान्	पुत्रा	पुत्राना	पुत्रान्
द्वि	पुत्रानम्	,	पुत्र	पुत्रानम्	"	पुत्र
च	पुत्रि	पुत्रो	पुत्रु	पुत्रि	पुत्राः	पुत्रु

८ पुत्रन् का म अहू पून् तथा रन्का गुन् हे ।

परिव्रात्—पुं ।

मघात्—पुं ।

प्र	परिव्राट्	परिव्रात्	परिव्रात्	मघात्	मघात्	मघात्
द्वि	परिव्रात्	परिव्रात्	परिव्रात्	मघात्	मघात्	मघात्
च	परिव्रात्	परिव्रात्	परिव्रात्	मघात्	मघात्	मघात्

९ । इत्यादि विभक्ति पाठे रद्वन पर परिव्रात् ल् का ट या ड ट ता  
हे । ( २८ या पाठ ( अ ) । )

तिर्यञ्चोऽपि परिवचसनुसंधाना ।

दुधियो धिक्कभिय एते ।

श्रीशोभसक्तिपा यस्तुनिर्देशा वा मघाकाकष मुखम् ।

भो भा राजन । श्रायसमुगाऽय न दन्तयो १ दन्तन ।

भो । प्रयास नन चक्षुःश्रेण भक्तिज यतस्तिमिररिच्यमान

प्राचासुखतालोकमुभय दृश्यत ।

धन्यगनुधोधितोऽसि । अस्मिन् क्षण विस्मृत परत्परतः ।

विद्य चित्तुमिन् ! कथमेतद् विस्मृतोऽसि ।

यामन्तो—देव ! अतिज्ञाने धैर्यसत्रसम्पत्तासु ।

राम —सपि, किमुषणो धैर्यमिहा ?

देव्या शून्येण जगतो ह्यदश परिवत्सर ।

प्रमथ्यमिदं नामादि न च रामो न लीजति ॥

विद्यान्ताऽस्मि भद्रं । समयगहचाद्यमस्य पश्यान् ब्रूहि ।

इत पञ्चऽटीमनुप्रविश्य गन्धतां गोशावरीतीरेण ।

चे प्राणा म गता रामस्तानु वलत द्रुतम् ।

सरमा लजरेरङ्गे शक्तिशरघस्य का ॥

काम धनेषु हरिणाधृत्तेन जीवत्यपन्नमुलभेन ।

धनिषु न देव्य द्विधाति ते खनु पण्डो वय सुधिय ॥

पुरोधसा च सुप्य सा विद्धि पार्यं वृक्षपतिम् ।

सैनानीनामह स्कन् सरसामस्मि सागर ॥

वृक्षीना वामुधोऽस्मि पावर्द्धवाना धनज्ञय ।

मुनीनामप्यह व्यास कपीनामुशना कवि ॥

एकाऽहमस्मीति च मन्यसे तत्र न दृष्ट्य वेत्सि मुनि पुराणम् ।

यो वर्जिता कमण पापकस्य तस्मान्तिके त्व वृजिन करोषि ॥

मन्यते पापक कृत्वा न कश्चिद्वृत्ति मामिति ।

विन्दन्ति चेन देवाश्च यद्यैवान्तरपुरुष ॥

आदित्यचन्द्राद्यग्लोऽनलस्य क्षीभू मिरापो दृश्य यमस्य ।

अहस्य रान्निष पभे च सार्धे धर्माऽपि जानाति नरस्य वृत्तम् ॥

लज्जा तिरस्त्रो मन् चेतसि व्याङ्गशय पञ्चतराजपुत्रा ।

त कोशपाश प्रसमीक्ष्य कुपु बालप्रियत्रय शिथिल चमय ॥

पाश पक्षश्च दृक्षश्च कलापाशा कचात् परे ।

माहाद्वाघीमडुधा प्रतीचीं प्राचीमुत्तीचीमपि पयटन्ति ।

सच्चिन्मये मानस एव तीर्थे स्वच्छे मृत्यु स्नानुमपारयन्त ॥

इन्द्र पूजको, वरुण पश्चिमको, कुम्भर उत्तरको, तथा यम अक्षिणको देवता है ।



प्रथम ।

दृष्टम्—श्रीर

|

संप्रात—श्रव

पाठ ३६ ।

तद्विषयं श्रीर कृत प्रथम ।

भोमानुनो राधेयेनैव विधिनामन जा न शक्यते निवारयितुम्—भीम श्रीर  
श्रुतु न कथ वा चक्षु र्देह श्रीर किञ्चित् रोषो जा नही सकत ।

वैनतीय इय विनतानन्जनाना राजाऽषा—यद् राजा विनतानन्जनान  
( विनत + आनन्जन ) हे अर्थात् नम लोकांशो आनन्जन उत्पन्न  
करनयाला है, जोसे महड विनतानन्जन ( विनत + आनन्जन ) है,  
अर्थात् विनताको आनन्जन दता है ।

यद् अप्मूलक उपमाका उदाहरण है । विनतानन्जनन को दो  
श्रव है । एक प्रकृत राजाको तरफ लगता है श्रीर दूसरा अप्रकृत गरुडको  
तरफ । यह सर्व अलङ्कार कहता है ।

द्वैषायने! अनमत्यपमात्मान शोकानले क्षेप्तुम्—हे द्वेषको पुत्र !  
( अत्र उच्यते ) अपनेका श्रवन्त शोकरणी आशुमे मत ढालो ।  
अनम्, जिमका अर्थ 'वध' है तृतीयान्त अर्थ भूत कृ, श्रीर तुमुनन्-  
का षाय आता है ।

धमरादि युद्धाच्छुयाऽन्यत् क्षत्रियश्च न विद्या—क्षत्रियका धमयुद्धको शिया  
श्रीर कोई वक्षु अच्छो नही है ।

गतो वन गया भयितति राम शोषन दद जनतातिमातृम्—'कण्ठ राम  
वनको जायगा' इन विचारसे प्रजाश्रीरा एतुः ( मय प्रनादे ) शोकसे  
श्रवना इयद् दुःखा ।

अल रुदित्वा । ननु भयतीभ्यामय स्थिरीकर्तव्या श्रुन्वा । रोषो  
हुम्पो लोकोने श्रुन्तलाका निलाया दना खादिय ।



उपपन्नमतमिन्न नरपितृन्पे राज्ञि—शृणुष्व इव राज्ञो यद घोष्य है ।  
 कथञ्चि विजुलपाहितोपा दग्निः नानयन यन्दिप्राज्ञ एदीता—धनुषेणाके  
 र्दित्त कथञ्चि दग्निः नरपेरे देवम को को राई ।

इम पाठमें तद्धित तथा कृष् प्रपयोका यत्न किया गया है ।

प्राथमिक प्रपय, अर्थात् व प्रपय का भक्षण, अनाम, तथा विशेष  
 यणोको लगते हैं, तद्धित कदा है ।

तद्धित प्रपय कई हैं, जिनमें न कुछ नीचे दिये जाते हैं —

### १ । अपत्यवाचक ।

अपत्य—सन्तति, सङ्घा या लङ्कियां, क्रिया ६सक यात्री यद्को  
 सन्तति ।

१ । अ—रावण (रवणःपत्यम्—रवणका पुत्र), राघव  
 (रघोरपत्यम्—रघुधर्मोय लङ्का), पायती (पयतस्याप्य स्त्री—  
 पयतनी लङ्की), जानकी (जनकस्याप्य स्त्री) ।

य प्रपय आगे रहनपर प्राय अन्तिम स्वरका लाप होता है और प्रथम  
 स्वरको घृष्टि होती है । इस प्रकारका परिवर्तन नीचे दिये शब्दोंमें सुगमतासे  
 देख सक संकत है ।

२ । इ—दागरयि (नरपस्याप्यम्), सोमिनि (सुमित्राया  
 अपत्यम्) ।

३ । ए—गाङ्गेय (गङ्गाका पुत्र भीष्म), वैनतेय (विनताका  
 पुत्र, मङ्ग), राधेय (राधाका पुत्र कथ) ।

४ । य, ईय, य—श्वशुय (श्वशुरस्यापत्यम्), स्वस्वीय (स्वशुर  
 पत्यम्), भ्रात्रीय भ्रातृव्यो वा (भ्रातुरपत्यम्) ।

### २ । समूहवाचक ।

१ । ता—प्रामता (प्राप्ताणा समूह), जनता, बन्धुता ।

३ । तदधीते तद्वेट ।

( यह जो समझो पढ़ता है वा जानता है । तद् से प्रकृति का बोध होना है जिसका प्रथम लगाये जाते है ) ।

१ । अ—वैयाकरण ( व्याकरणसमीत वेद वा ) ।

२ । इक—नैयायिक ( न्याय से ), ताकिक ( तर्क से ), ऐतिहासिक ( इतिहास से ), पौराणिक ( पुराण से ) ।

३ । अक—मीमांसक ( मीमांसा से ) ।

४ । तत्र भव ।

( उषसे उत्पन्न हुआ ) ।

१ । य—दन्ध ( ऋत्तेषु भद्र )—नाससे उत्पन्न, ऋत्तस्थानीय, श्रोत्र ( श्रोत्र से ), कण्ठ ( कण्ठ से ), तालव्य ( तालु से ), मूधन्य ( मूधन से ), प्राच्य ( प्राच से ), उदोच्य ( उचू से ), प्रतीच्य ( प्रत्यच् से ) ।

२ । त्प—दाक्षिणात्य ( ऋत्तिणा से ), पाश्चात्य ( पश्चात् से ), पौरस्य ( पुरस से ) ।

३ । इक—मानसिक ( मनस् से ), शारीरिक ( शरीर से ) ।

इक अनेक अर्थोंमें मन्दाशब्दोंको विशेषण बनाता है ।

भाव—भाषिक

धम—धामिक

न्नि—नैनिक

प्रमाण—प्रामाणिक

निसग—नैसगिक

स्वभाव—स्वाभाविक

५ । तस्येदम् ।

( उषका वा उषका सम्बन्धी ) ।

१ । अ—शैव ( शिवस्मैरम् ) धनु ।

२ । इय- तदाय, मदीय, भवदीय, त्वदीय, अम्मदीय, युष्मदाय, अन्यदीय ।

५ । विकारवाचक ।

( आक्षारणं परिशतनका शोध कराता है ) ।

१ । मय-गोमयम् (गाशिवारः)-गोद्वर घाडमयम् (दाषीका)-गाम् ।

२ । य-गध्यम्, पयम्यम् ।

० । तत्र साधु ।

१ । य-शरथ्य ( शरले साधु-रता कानर्म अस्था )

२ । इय-धातिधेय ( अतिथिपु साधु ) ।

८ । तग्मादनपेतम् ।

( वक्षस एडा गरी ) ।

१ । य-धर्मराम ( धर्मानपेतम् ), न्याय्यम् ।

९ । भाववाचक ।

( तद्य भाव )

१ । इय ता-गोत्वम्, गोता ( गोपन ) ।

२ । इयन्-प्रथिमन् ( प्रथु से ), गरिमन् ( गुह से ), लघिमन् ( लघु से ), अदिमन् ( अदु से ), तनिमन् ( तनु से ) ।

३ । अ-गोरव ( गुह से ), लाघव ( लघु से ) मादव ( मनु से ), तातव ( तनु से ) कौमार ( कुमार से ), यौवन ( युवन् से ), शैशव ( शिशु से ) ।

४ । य-पाण्डित्य ( पण्डित से ), नानित्य ( अनित से ), शौच ( शूर से ), धैर्य ( धीर से ), इमी प्रकार साधुप, आलक्ष नेपुण्य, को-न्य, मोख्य, इयात् ।

१० । उत्कपवाचक ।

- १ । तर, तम—लघुतर, नघृतम, उत्तर, उत्तम, पाचजातर, पाचकतम, इत्यादि ( २२वा पाठ देखो ) ।
- २ । तराम् तमाम्—नीचैस्तराम पचतितमाम् ।
- ३ । इंपस, इप्यु—लघीयस् लघिष्ठ—इत्यादि ।

११ । स्वामित्वाचक ।

( मत्प्रथीय प्रत्यय ) ।

- १ । मत्—मतिमत्, बुद्धिमत्, भूमिमत्, यवमत्, भगवत्, भास्वत् ( १३वा पाठ देखा ) ।
- २ । त्रिन्—मायाविन्, मेधाविन् यशस्विन्, तेजस्विन् ।
- ३ । शालु—दयालु, मायालु, कृपालु ।

१२ । अभृततज्ञावयाचक ।

- १ । त्रि ( इ )—कृष्णीकरोति ( अकृष्ण कृष्ण सम्पश्यते यथा तथा करोति—तो काला नदी या उसको काला बनाता है ) लघुभवति इत्यादि ।

१३ । इपन्ननतावाचक ।

- १ । कल्प—विद्वत्कल्प ( इषद्वूनो विद्वान्—पण्डितको समान, कुछ कम पण्डित ), द्वीपकल्प द्वीपसे कुछ कम, जिसके तागे श्वर लल है ।

- २ । इय—अष्टादशवपदेश्य
  - ३ । इशीय—अष्टादशवपदेशीय
- } कर्त्तव्य १०० यपका

१४ । तदम्य सञ्चातम् ।

- १ । इत—तारकित नभ ( तारका अथ सञ्जाता—जिसमें त उनी हुए हैं ), पुलकित ( रोमाञ्जयुक्त ) शरीरम् ।

## १५। प्रमाणवाचक ।

- १। मान्—तापन्मात्रम् ( उतना ) ।  
२। द्य—जानुदत्त जनम् ( घुट- तक्र ) ।

## १६। तेन तुल्य क्रिया चेत् ।

१। दत्—ब्राह्मण्यदधीते ( ब्राह्मणके समान पढ़ता है । ) 'तुल्य' श्रयमें दत् लगाया जाता है । तिन शब्दोंको यह लगाया जाता है व क्रियाके साथ श्रित्वित हात है ।

## कृत् प्रत्यय ।

३। प्राथमिक प्रत्यय, जो धातुश्रीका लगाय जाते हैं, कृत् प्रत्यय कहते हैं । जिन शब्दोंको अन्तमें कृत् प्रत्यय हात है व कृन्त शब्द कहते हैं ।

१। दत्मान भूत श्रययभूत, विधि, तथा तुमन्त कृन्तोंका दत्तन पहिले हो चुका है ।

२। भविष्यकृन्त—भू—भविष्यत् ( स्तुते भविष्यन्ती तौ ), कृ आत्म—करिष्यमाण ( स्तुते करिष्यमाणा ) ।

३। परोक्षभूतकृन्त—सद्—सन्निवम, युशुशुवम् कृ—सकृष, चक्राण, सप + ई—उपयिषम्, अघि + वम्—अघ्युषिषम् ।

४। श्म् ( एषुत् )—क्रियाका पुनर्दत्तके श्रयमें धातुश्रीकी श्म् लगाया जाता है ।

कार कार नमति शिष्यम्—कार २ धरण कर वह शिष्यको प्रणाम करता है ।

पा—पाय पायम् श्रु—श्राय श्रावम् ।

मभूलघात हन्ति—ममल नष्ट करता है । लीघप्राह पृह्णाति—लीता पकड़ता है । घन्घ्राह पृह्णाति—कौं करता है ।

३ । कर्तृवाचक कृन्त—कतादी श्रमं धानश्रीको वृ तथा शक  
लगाया जाता है ।

कृ—कृ, कारक, पठ—पठित्यु -पाठक, गी—नेतृ, नायक ।

६ । भाववाचक प्रत्यय—

( अ ) ति—बुद्धि, मति, गति, स्थिति, नीति, रत्नानि, ज्ञानि इष्टि,  
वक्ति ।

यद्य प्रत्यय प्राग रक्षणेव जानेवाले परिवर्तन प्राय वेसे ही है जैसे  
भूतकृन्तमं त प्राग रक्षनपर हुआ करत है ।

( व ) अन—वाचन करण, मजन कौतन, मनन, दशन, द्रवण,  
इत्यादि ( सद्य नपुंसक ) ।

( फ ) अ—लय, भय, काम, पाक, योग (सद्य पुलिङ्ग) ।

मत्वे । प्रतीक्षस्व माम् । अद्यपि भयन्तमुयासि । १ श्कासि  
मयता विना क्षणमप्यज्ख्यातुमीकाकौ । कथमपरिवित्त द्वाष्ट्यपूर्व इत्याद्य  
मानेकपत् उत्पद्य प्रयासि । कुतस्तयमतिनिष्ठुरता ? कथय, त्वदृते क  
गच्छामि । श्रुत्या मे निशा जाता । तदुतिष्ठु । ऐहि म वित्तपत प्रति  
वचनम् ।

न हि भित्तुका मन्तीति ख्याल्यो नाधिश्रीयन्ते न च सृगा मन्तीति यथा  
नोप्यन्ते ।

कश्चित् कश्चित्तन्तुवायमाह । अथ सूत्रस्य शाटक लय इति । स  
पश्यति । यदि शाटको न यातव्य । अथ यातव्यो न शाटक । शाटको  
यातव्यश्चेति विप्रतिषिद्धम् । भाविना खल्वेष सच्चाभिप्रेता । स मन्य वातव्यो  
मस्मिन्नुत्तं शाटक इत्येतन्नयति ।

सकलभुवनतलरत्नानामुदधिरिजैकभाजन इवः । विहङ्गमशायमाद्य  
भूतो निखिलभुवनतलरत्नमिति कृत्वा इवपातलमान्तायामताहमिच्छा  
द्वेषदशनसुखमनुभवितुम् ।

जायते यस्मिन् यथा जित्तिलमग्न्यद्यधीयते नम्यतेति ई-  
शिकारा ।

इतो गता सा क्व गता न ज्ञानं मेघं गता न ह्युच्यते गता वा ॥

एतद्विद्यते रघुनन्दन रामधनु

धम्भामि मृधनि चिराय परिपञ्चे स्यात् ॥

श्याय श्याय कृतिशान्ता श्लाघ्या श्लाघ्या स्थित कृतिवत् ॥

वीर्यमालो युग रामचित्तवृत्ति विनिर्दिष्टे ॥

नममासना गः पङ्क्त्यैर्द्वैर्द्वैरिणी मता ।

इति दृश्येताद्वैत द्विधा न मु भिद्यते

वदन्ति विद्वान् काया माष्ट न पुञ्जति धेतनाम् ॥

एतदपि तनुमन्तःपि करोति न भक्त्यात्

मदरति विधिर्ममच्छन्ते न कृन्तति क्षीयन्तम् ॥

मूर्ध्निर्ग्रेयसि म चञ्च मत्तमा शार्दूलविक्रीडितम् ॥

किं तोय हरिणापद्मभजन किं रत्नमध्या मति

किं जाम्बु अश्वत्थेन यद्य गलति सूताम्भकारोऽयम् ॥

किं मिथ सततोपकाररक्षित सत्त्वाश्रयश्च यत्

क जयुश्च येनानकुशलो हुयासनामज्जय ॥

शुच्यमानन्तर दुःख दुःखमानन्तर सुखम् ॥

शुच्यते खावृत्त लोके नास्ति सोऽप्यमनसकम् ॥

सत्त्ववत्तरो हरीं सा भग्न सानसम्याद्यपुरो जघान च ।

अजन्तश्च हि दुःखमग्रता यियुतद्वारसिधोपजायते ॥

इत्नीयरेलक्ष्यासमिन्निरानन्दकेशलम् ।

यन्नामजनमन्तार यद्वेष्ट यदुनन्तम् ॥

नम्यतको निगुङ्गु नामका एक पुत्रु या । यद्य धर्मिणो जायते  
धण्डान् हुषा । तिसर भौ यद्य शिष्यामिनुषो प्रभाषसे यशरीर स्वराजो

गया। पर जड़ यह वहां गया, देवीने उसे टकेल लिया। तर्थापि विश्वामित्तुके तपोबलसे यह बीच ही में रोका गया।

यह बात नहीं है कि अन्न नहीं हुआ, क्योंकि वहां ऐसे प्राणी है जो उसे खा डालते हैं।

सबसेब तुम बड़े निष्ठुर हो, तुमने हमको अरुन्नात छोड़ लिया।

तुम्हारा यह कहना कि जल एक ही समय गरम है और ठंडा भी, विरुद्ध है।

सज्ञाशब्द ।

अतिनिष्ठुरता ( स्त्री ) अतिक्रूरता  
अन्तर्नाह ( अन्तर्नाह ) पु — भीतरही  
जलन

अवबोध ( अवबोध ) पु — ज्ञान  
अय्य ( अय्य ) पु — घोड़ा, यह बात  
सख्याको बोध भी कराता है।  
( क्योंकि सूयके घोड़े बात है। )

इन्दिरा ( स्त्री ) — लक्ष्मी  
इन्दीधर ( इन्दीधरम् ) न — नीलकमल  
इण्डु ( पुं ) — चन्द्र, यह एक सख्या  
का बोध कराता है।

कण्ठ ( कण्ठ लम् ) पु, न — १  
कली २ समूह, ३ कारण,  
स्थान अथवा विषय

केशिन् ( पुं ) एक देव  
गति ( स्त्री ) — ज्ञान  
गेह ( गेहम् ) न — घर

ग्रह ( ग्रह ) पु — ग्रह, यह ९  
सख्याका बोध कराता है।

तन् ( स्त्री ) — शरीर  
तन्तुजाय ( तन्तुजाय ) प — जुलाहा

जल ( जलम् ) न — पत्ता  
दुर्वासना ( स्त्री ) — दुष्ट वासना

दृश ( स्त्री ) — दृष्टि  
हैतान्यकारोऽय ( पु ) — ( हैतन भेद

+ अन्त्यकार पु — अन्त्यकार, अज्ञान  
+ अन्त्य — पु उत्पन्न होना ) —  
भेदसे होनेवाले अज्ञानकी उत्पत्ति

पाण्पद्म ( पाण्पद्मम् ) न ( कर्म०,  
पाण् — पु + पद्म न ) — कमलके  
समान अरण

यस्मिन् ( पु ) — कैनी  
भजन ( भजनम् ) न  
भाजन ( भाजनम् ) न



स गार ( मन्त्र ) पु — पालक  
 शुद्धीमे एक  
 मुनि ( पु ) प्रति पद ०  
 मछाका धार करता है ।  
 यदुत्तम ( पु — यदुत्तम मन्त्र ) —  
 यदुत्तमको धार करता है  
 धारा , अक्षय  
 पत्र ( पत्र ) पु — पत्र  
 त्रिद्वन्द्व ( त्रिद्वन्द्व ) पु — पत्र  
 वे ( वर ) पु — वरम छ मछाका  
 धार करता है ।

गारक ( गारक - कपु ) पु , स — यदु  
 गारक ( गारक - कपु ) पु , स — यदु  
 दितम् ) स — एक छारका नाम  
 मछय ( मछय ) पु — यदु  
 मू ( मू ) पु — मू, वरम छारका  
 धार होता है ।  
 म्वापी ( म्वापी ) — छारका  
 दप ( दप ) पु — यदु, वरम छ  
 मछाका धार करता है ।  
 हरि ( पु ) — यदु  
 हरिकी ( म्वापी ) — एक छारका नाम

विशेषण ।

अच्छु — निमल  
 अदृष्टय — जो पहिले कभी नया  
 नहीं  
 अपरिवित ( अ + परि + चिन् —  
 चि का धू ६ ) — अज्ञान  
 अभिप्रेत ( अभि + प्र + प्र + त  
 ली० प्रेता ) — इष्ट  
 आश्रयभूत — आश्रयजनक  
 अक्षय — अक्षयमान , समय  
 कठोर — बड़ा  
 गाढीहंग ( बहु०, गाढ  
 वह )

विशेषण ( बहु०, विश्व विश्व  
 अदृष्टय + यति ली व्यापार )  
 — अशुभ व्यापारदाना  
 निपिल — सम्यक् , यत्र  
 भाषित् ( ली — भाषिनी ) —  
 दामदार  
 समस्यन्ति ( समस्यन् — म समस्यन्  
 + ह्यन्ति काठनवाला ) —  
 समस्यानकी काठनवाला  
 लाकार — अगन्तुं सर्वोत्तम ,  
 अशुभ , अभाधारण  
 , — यन्मगील , नम् , पूषीकी  
 करनेवाला

विकल—ग्राममें रहनेवाला	विद्युत् ( वि + दृ + त )—खुला
विप्रतिषिद्ध—(वि + प्रति + सिध् + त )—शिशु	ग्राम—काला
विनयत् ( वि + लय् + क् )	गृह—खाली
विनाय करता हुआ	सतत—अविनाशी

घातु ।

अधि + प्रि ( अधिप्रयति ते भ्वा उभ )—पकाना	प्रति + ईच् ( प्रतीक्षते भ्वा आ )—घाट जोड़ना
अनु + या ( अनुयाति—अ पर )—पीछे जाना	प्र + या ( प्रयाति अ पर )—जाना
अप + चि ( अपचयति—भ्वा पर )—नष्ट होना	वप् ( वपति ते- भ्वा उभ )—बोना
कृत् ( कृत्ति—तु पर )—काटना	वि + परि + नम ( विपरिणमति ते—भ्वा उभ )—किसी नये रूपमें बदलना
स्वल् ( स्वलति—भ्वा पर )—खलना	त्रि + रिभ ( त्रिस्मयते भ्वा आ )—आश्चय करना
प्ल ( दलति—भ्वा पर )—टूटना, फटना	वे ( वयति ते भ्वा उभ )—पूना

अथय ।

अथस्वातुम् ( अथ + स्वा + तुम् )—रहनेके लिए	भस्मसात्—(भस्मस्—न राट् + सात्—तद्धित प्रथय अिचका अथ 'अधीन है )—
इति कृत्या—एसा सोचकर	राट् हो गया हुआ
उत्सृज्य ( उत् + सृज् + क् )—छोड़कर	स्वनववाचसु ( स्वनो ववाज, उत्पन्न )—हाती पीटकर
एकपरै—एक धारणो, एकधात्	

पाठ ४० ।

सामान्यभूतकाल ।

सुरया नाम राजाभूत् सम्पूर्णै क्षितिमच्छल—सम्पूर्ण भूमच्छलमें सुरा नामका राजा हुआ ।

बाल ! मयोर्मा भैषी —बच्चे ! मनुष्यें न डर ।

भयु विप्रकृताऽपि रापणतवा स्माम्न प्रतीव गम् —श्रममानित होनेपर भी कापसं पतिके विरुद्ध न चला ।

व्यजेष्ट पङ्कगमरस्त नीतो—बसने छ भीतरसे शत्रुप्राप्ति ( काम, क्रोध, लोभ मोह, मद, मत्सर ) समुत्पादको नीता और नीतिमें रम गया ।

इस पाठमें सामान्यभूतका अर्थन किया गया है । पढ़िये यह उसी समय बीतौ हुई क्रियाका बोध कराता था । इसका नाम अश्रुतनभूतकाल है ।

भू—अभ्र अश्रुतनभूत प्र पु र थ —आज बीतौ हुई क्रिया ।

अभ्रवत् अनश्रुतनभूत, ,, —सो आज न बीतौ

बभूव परीक्षभूत—जिसका बीत बहुत समय हुआ ।

अनश्रुतन भूतके समान अश्रुतन वा सामान्यभूतमें भी धातुश्रीको वा या आगम होता है । इस प्रकार यं रूप धुगमतासे पहिचाने जा सकते हैं । इसके सात प्रकार हैं, जिनमें चौथा और पाचवा प्रकार साधारण है ।

चतुर्थ तथा पञ्चम प्रकार ।

१ । अनिद् धातुश्रीमें चतुर्थ षेठ् धातुश्रीमें पञ्चम और षेठ् धातुश्रीमें दोनो प्रकार होते हैं ।

चतुर्थ प्रकार ।

जि—पर ।

नि—आत्म ।

प्र पु	अनेषीर्	अनेष्टाम्	अनेष्टु	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
म पु	अनेषो	अनेष्टम्	अनेष्ट	अनेष्टु	अनेषायाम्	अनेष्टम्
उ पु	अनेषसु	अनेष	अनेष्म	अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

पञ्चम प्रकार ।

यन्—पर ।

प्र पु	अथादीत्	अथादिष्ठासु	अथादिषु
म पु	अथानौ	अथादिष्टसु	अथादिष्ठ
उ पु	अथादिषम्	अथादिष्ठ	अथादिष्म

श्री—आत्म ।

प्र पु	अशयिष्ठ	अशयिषातासु	अशयिषत
म पु	अशयिष्ठा	अशयिषाषासु	अशयिष्ठसु ङसु
उ पु	अशयिषि	अशयिष्ठि	अशयिष्मि

इन ऋषीषे अघालिखित प्रत्यय मातृम होंग —

चतुर्थ प्रकार ।

पर ।

आत्म ।

प्र पु	शीत्	स्तासु	धु	स्त	मातासु	मत
म पु	शी	स्तसु	स्त	स्ता	मायासु	ध्यसु
उ पु	सम्	स्त	स्म	सि	स्मि	स्मि

पञ्चम प्रकार ।

प्र पु	इत्	इष्ठासु	इषु	इष्ट	इषातासु	इषत
म पु	इं	इष्टसु	इष्ट	इष्ठा	इषायासु	इध्यसु
उ पु	इषम्	इष्ठ	इष्म	इषि	इष्मि	इष्मि

कृ—अकार्षीत् अकार्षीम अकार्षु , आत्म — अकृत

पद्य—अपासीत् अपास्तासु अपासु

यन्—अयासीत् अयाष्ठासु अयासु

चर—अचारीत् अचारीष्ठासु अचारिषु

चत—अचालीत् अचालिष्ठासु अचालिषु

ब्रह्म—अथासीत् अथाङ्गिष्ठात् अथाङ्गिष्ठु

म् अमन्त्रोत्—मासीत् इत्याम् ।

सु—अतारोत् अतारोत्सुम् अतारिष्ठुः

अम्—अथासीत्, एम्—अहमीत्, सुम्—अतोऽङ्गिष्ठु

एन—अप्रधीत् अथिष्ठात् अङ्गिष्ठु

गुण तथा वृद्धिक नियमः ।

१ । नी—अनधीत्, कम्—अरोत्सोत्—परमेष्ठम् अन्तं प्रकारं धातुं स्वरको वृद्धि दातो द्वे ।

२ । अङ्गिष्ठु, अङ्गिष्ठात्—आत्मनयम् अङ्गिष्ठात् प्रकारं धातुं अन्तिम इ तथा उ का गुण दाता द्वे और इतर स्वर णी की लो रदां द्वे ।

३ । अतारोत्, अतारोत्सुम् अथासीत्, अथाङ्गिष्ठात्—परमेष्ठम् अङ्गिष्ठात् प्रकारं अन्तिम स्वरको, तथा र, ल में अन्त दातेयाले धान, और यम्, यञ्ज हन धातुअङ्गिष्ठात् अन्त अ का वृद्धि दातो द्वे ।

४ । मम्—अमन्त्रोत् नासीत्—पर पञ्चम प्रकारं तथा ल की छोड़ हन्त धातुयाके उपाङ्ग अ को विकल्पध वृद्धि होती है ।

५ । अङ्गिष्ठात् अहमीत् अङ्गिष्ठात्, अहमीत्—अङ्गिष्ठात्, अङ्गिष्ठात्, अङ्गिष्ठात्, एम्, तथा इच्छ और धातुअङ्गिष्ठात् वृद्धि नही होती ।

६ । अङ्गिष्ठात्, सुम्—अतोऽङ्गिष्ठात् आत्म—पञ्चम प्रकारं अन्तिम स्वर तथा उपाङ्ग अन्त स्वरको गुण दाता द्वे ।

कम्—अहमीत्

अरोत्सुम्

अरोत्सुम्

कम्—अङ्गिष्ठात्

अङ्गिष्ठात्सुम्

अङ्गिष्ठात्

अङ्गिष्ठात्

अङ्गिष्ठात्सुम्

अङ्गिष्ठात्

मन्त्रिके नियमः ।

१ । अङ्गिष्ठात् + एम् = अङ्गिष्ठात् + एम् = अङ्गिष्ठात् + एम् = अङ्गिष्ठात् + एम् + एम् = अङ्गिष्ठात् + एम् = अङ्गिष्ठात्—अनुनासिक तथा अन्त स्वरको छोड़ और कोई अङ्गिष्ठात् पृथ रदनेपर एम् एम् तथा एम् के म् का जोप दाता द्वे ।

२। अकृया, अकृत—न पृथ रङ्गनेपः स्या तथा स्त षो म् का लोप होता है ।

३। ध्वस् को नियम या विकल्पसे ढस् होनेको नियम व ही है जो पठितभूतमें ध्व का ण होनेका विषयमें है ।

पृ—अपाणि अपरसाताम् अपरसत, उन्—अजनि अजनिष्ठ अजनि यताम् अननिषत, षीष्—अपि अनीपिष्ठ अनीपिषाताम् अनीपिषत, वध्—अत्राधि अत्रुद्ध अमुत्माताम् अमुत्सत—

४। पद् में इ प्रथम पु ए व का प्रयय है और इय अपाणि होता है । णीप जन्, तथा जुध् में यह विकल्पसे होता है ।

षष्ठ प्रकार ।

नस्—पर ।

प्र पु	अगमीत्	अनसिष्टः	अनसिष्टु
म पु	अनसी	अनसिष्टम्	अनसिष्ट
व पु	अनसितम्	अनसिष्ठ	अनसिष्

यस्—अयसीत्, त्रिस्—अरसीत्, परन्तु रस् आत्म—अरस्त अरसाताम् अरसत, अरध्वस्, इत्याणि ।

पा ( रक्षण करना )—अपासीत्, ना—अत्तासीत् ।

१। यह प्रकार षोडश परस्मै धातुओं ही में होता है ।

२। यस्, रस्, नस् और आकारान्त धातुओंमें यह प्रकार होता है ।

प्रथम प्रकार ।

न—पर ।

प्र पु	अगात्	अगाताम्	अगु
म पु	अगा	अगातम्	अगात
व पु	अगाम्	अगाम	अगाम

ग—'गाना' । ( अन्तर्गतम् )

प्र ष	अविना	अविनासम्	अविनास
म ष	अविना	अविनासाम्	अविनास
उ ष	अविनाम्	अविनासम्	अविनास

पा—'गाना' ।

ह—'हाना' ।

प्र ष	अहात्	अहाताम्	अहात्
		म् ।	
म ष	अहात्	अहाताम्	अहात्
उ ष	अहात्	अहात्	अहात्

१ । अ घा, तथा ग घातुं छा नः, घा छा ह्य घातव्यं कारी हि ( इत्थं वा घातव्यं वा नियमं दद्यात् ), अघा, गे ( ह—'हाना' का आदेशः ), वा 'घाता' तथा हू सं प्रकृतिप्रकारं शीलं हि ।

२ । अघिन्, अघिन्त—अघन्त अघन्ति तथा अ घा, तथा अघा सं प्रकृतिप्रकारं जायते । अघिन् अघिन्त हि । इत्येते वा को हू शीला हि ।

सप्तम प्रकृतिः ।

विष्—'वृ' ।

प्र ष	अविच्छत्	अविच्छताम्	अविच्छत्
म ष	अविच्छत्	अविच्छताम्	अविच्छत्
उ ष	अविच्छत्	अविच्छत्	अविच्छत्

द्विष्—'दात्' ।

प्र ष	अद्विच्छत्	अद्विच्छताम्	अद्विच्छत्
म ष	अद्विच्छत्	अद्विच्छताम्	अद्विच्छत्
उ ष	अद्विच्छत्	अद्विच्छत्	अद्विच्छत्

अविष् + सम् = अविष् + सम् ( २८ पाठ, नि अ ) = अविष् + सम् ( २८ वा पाठ नि ए ) = अविष् + सम् = अविष्म, अविष् + सम् = अविष् + सम् = अविष्म, अविष् + सम् = अविष् + सम् = अविष्म, अविष् + सम् = अविष् + सम् = अविष्म, अविष् + सम् = अविष् + सम् = अविष्म, अविष् + सम् = अविष् + सम् = अविष्म ।

अलिप्ति—अलिप्तावधि अथवा अलिप्ति—अलिप्तावधि

नियम —

१। लिट्—अलिप्तत् दुष्ट्—अधुक्तत्, कृष्—अकृप्तत्—पिन धातुश्रीके अन्तमें श्, घ, ङ, वा ङ् हा और उपान्य ङ, उ, ऋ, वा लृ णो, उनमें यह प्रकार हाता है ।

२। अलौट् अलिप्तत्, अलौटा—अलिप्तया, अलौटम—अलिप्तध्वम्, अलिप्ति—अलिप्तावधि—लिट् एट्, ङिट्, तथा दुष्ट् की आरम्भ म पु ए व में, म पु ए तथा व व में, तथा उ पु षो द्वि य में वैकल्पिक रूप होते हैं । उ त्, षास्, ध्वम्, और एटि जोड़नेसे बनते हैं ।

द्वितीय प्रकार ।

इसमें तीन प्रकारके धातु होत हैं —

( १ ) ये धातु पिनमें यह प्रकार मिल्य हाता हैं, ( २ ) वे जिनमें विकल्पसे हाता हैं ( ३ ) कुछ आरम्भनपत्नी धातुश्रीमें यह प्रकार विकल्पसे हाता हैं, और अथ यह होता है तत्र उनको परस्पर प्रत्यय लगाने हैं । प्रत्यय व ही है वा अनद्यतन धृतसं ।

प्रत्येक धातुके कुछ उपयोगी धातु इस प्रकार हैं —

( १ ) गम्, शक, 'शम् तम्, शम् अम्, कम्, लम्, मट्, पत्

१। शमादि ( शम् तम्, दम्, शम्, अम्, लम् तथा मः ) दिवादिन्वयके धातु हैं । साधुभाषक लकार में उनके उपान्य ए की दीप हाता है । शम् में विकल्पसे दीप भी हाता है और वः आदि में भी है ।



( पम ), अच् ( खोच् ), घ्या ( ख् ), अम् ( अख्य ), नञ् आप् इ, ह्, ष्ट्, रुष्ट्, स्निष्ट् सुच लुप्, मिष्, जाम् ( जिष् ), ई ( इ ) ।

( २ ) कश् मिश्, रिष्, क्लिष्ट्, युष्, क्श्, दृष् ( दश् ), लृप्, हृष् ।

( ३ ) वृत्, यथ, कृप्, खन्, मर् द्युत् ।

शस्—पर ।

प्र प	अगमत्	अगमताम्	अगमम्
प्र पु	अगम	अगमताम्	अगमत
उ पु	अगमम्	अगमात्	अगमाम्

यच्—अयोचत्, पत्—अपयत्, दृष्—अदृशत्—अदृशीत्, हिष्—अहिष्णत्—अहिष्णीत्, यत्—अयूतत्—अयूतिष्ठ ।

तृतीय प्रकार ।

१ । चुरादिगणकी धातु, प्रेरणादक्ष, तत्र ह्रस्व मूलज धातुओंमें षष्ठ प्रकार होता है ।

चुर—अचूचरत् अचूचरताम् अचूचरन्

चौरय—चौर—चुर—चुचुर—चचुर—अचूचुरत्

कारय—कार—कर्—कचर्—विकर्—वीकर्—अचीकरत्

२ । ( अ ) अयका लोप होता है ( ब ) स्वरको ह्रस्व होता है, ( क ) ह्रस्वके बाद धातुको द्वित्व होता है ।

( ड ) अयिम स्वर ह्रस्व रहनेपर अभ्यासके अ को ह्र होता है, ( ए ) अभ्यासके स्वरको, यदि यह ह्रस्व हो, शीर्ष होता है ।

( २ ) अभ्यासके स्वरको, यदि यह ह्रस्व हो, शीर्ष होता है ।

सया अभाणि—सुभक्षे कहा गया ।

कर्मणि सया भावे प्रयोगके रूप—ये आत्म प्रथम समानेसे बनते हैं ।

भष्—अभाणि	अभाणिषाताम्	अभाणिषत
दा—अनायि	अनायिषाताम्	अनायिषत
क्लिष्ट्—अक्लिष्टि	अक्लिष्टिषाताम्	अक्लिष्टिषत

य ए व का प्रत्यय इ है । यह आगे रहनपर अन्तिम स्वर तथा उपात्य अ को वृद्धि होती है, और आकारान्त धातुओंमें य आगम होता है । इतर उपात्तर स्वरको गुण होता है ।

अत्यनुमना अभूव तादृशमत्यनुमना अभूव नाश्रोषम् ।

शुक्रनासाऽपि महान्त काल त राव्यभागमनायासेनैव प्रलाशनेनाभार्षीत् ।  
ययेव राजा भवकार्याप्यकार्षीत्तद्वन्मार्षापि द्विगुणितप्रणानुरामश्चकार ।

उदभतमर्काभ्यकारा च पातालतलमिवावतीर्णा तन्ना क्वाहमगम किमकरव  
कि व्यलपमिति सवमय नान्नासिपम् । असवद्य मे तस्मिन् ह्ये  
किमतिकठिनतयाऽथ मुठदृपथ किमनेकदु खसहस्रदृष्टुतया हृतशरीरथ  
कि विहिततया शोकथ कि भाननतयाथ जन्मान्तरोपात्तथ मुष्कृतथ किं  
दु खाननिपुणतया मधयेथ वोन हेतुना नोद्रच्छन्ति स तन्पि नावेत्थम् ।

१ न तथा बाधते शीत यथा बाधति बाधते ।

मुक्त्वा नि श्रीकमपाऽलं सराली न गतान्यत ।

अमराली स्वगाहं गार्थिं सम्मन्तरम् ॥

निद्रिषेणापि सर्वेण कर्तव्या महती फटा ।

विष भवतु मा भूद्वा फटाटोपो भयङ्कर ॥

नितरा नोचोऽस्मीति तत्र खेत्तु कृप मा क्वापि कृपा ।

अत्यन्तहरमदृपयो यत परेषां गुणप्रदीतानि ॥

भूयाचन्द्रमपोर्माग नचानुशा गति तथा ।

शैलराप्तो घणोत्पिष दिग्ध्य क्रोधवशानुग ॥

त निवारयितु शक्तो नान्य कश्चिद् द्विपोत्तम ।

श्रुते त्वा हि महामाग तस्मादन निवारय ॥

१ । बाध धातु भाव है । कीद कहता है— शीत हमको उतना कष्ट नहीं देता जितना कष्ट तन्दारा अगस्त प्रयोग 'बाधति' ही रहा है । बाधति का अर्थ है—बाधति इति प्रयोग ।

निन्ना अणाम मङ्कतार्पि श्रीरुद्राणा  
 निन्नाय शिष्यमपया मृषमाभयामोक्ष ।  
 अमुरद्रा कवकव किल कोकितानां  
 पाण्डिपि पाण्डिपि अमितो मतापि ॥

मा निपाय प्रतिष्ठा त्यसगम आश्रयिणी सया ।  
 यत् कोञ्जमितुनःलेकमशुधी काममोहितम् ॥  
 यद्यपि बहु नाधीष तर्थापि पठ पुत्र पाङ्कशम् ।  
 श्यपन रजना मा भूत् सका शक्य मङ्कतम् ॥

मार्गेषु<sup>१</sup> शिदु धात्र मास्तवाप  
 मकारमित्ये स्तारण्डायुषाय ।

यनेय यात यतयाऽप्य पार  
 समेय माग तय निर्मागामि ॥

श्रुत्वाया महात् कश्चित् मकारभयनाशन ।  
 तन तीत्यी भद्राम्मोधि परमातन्दमाप्सवि ॥  
 वेनात्तायश्चिखारेण नायते क्षानमुत्तमम ।  
 सेनात्यन्तिकसंमारण घनाशो भद्रयनु ॥  
 श्रुत्वात् महारण्य चित्तविद्यमदारलम् ।  
 अत प्रयत्नात् घातन् तत्प्रत्यात्तत्प्रमात्मन ॥

मैंसे आलाप करते हुए राम और सीता की रात ही गीत गाई ।  
 उसकी सब काय सकल हुए ।  
 मैंने उससे पूछा, 'तुम ब्रह्मरक्षे कब लोटे ?'

१ । वगन्तिके अर्थात्तममे भयका स्वकाण महा है । इतउदि वा इहत्तुदि  
 भयमे संवत् १ इतलिने यनी व व का प्रयोग किया गया है ।

राजाने मन्त्रीसे कहा, "मेरे देखता हूँ कि मेरा जीवन निष्फल है" ।

उसने ब्राह्मणोंको बहुत भक्ति दी ।

हे महाराज ! यदि चन्द्रमामें गरमो जा मूढमें सरलिका सम्भव है, तो युवराजमें दासका भी सम्भव है ।

इसके बाद लो ही समय बीता बिलारन उस पड़के खोपलेसे चिड़ियोंके बच्चोंको निकाला और खा गया ।

जो कोई अपने कतव्यमें दक्ष रहता है और प्रतिदिन अधिकाधिक परिश्रम करता है, उसका जीवन सफल होता है ।

### संज्ञाशब्द ।

अतिफटिनता ( स्त्री )—उड़ी	दुष्कृत ( दुष्कृतम् ) न—पाप
कठारता	निघात ( निघातम् ) पु—एक ह्येच्छजाति
अनुराग ( अनुराग ) पु—प्रेम	प्रतिष्ठा ( स्त्री )—आदर
अन्तर ( अन्तरम् ) न—भेद	फटा स्त्री )—फन
अपाय ( अपाय ) पु—नाश	फटाटोप ( फटाटाप ) पु—(फटा + टाटोप—पु त्रित्कार, आङ्-
अज ( अजम् ) न—कमल	म्वर)—सवका फणाका आङ्म्वर
अनु ( पु )—प्राण ( प्राण शब्दके	त्रिष्व ( त्रिष्वम् ) न—मण्डल
समान अर्थ में प्रयोग होता है	भ्राम्मोधि पु ( भ्रम पु सभार +
आली ( स्त्री )—पहक्ति	भ्राम्मोधि पु समुद्र )—सभार
कलकल ( कलकल ) पु—कालाहल	सभार
क्रौञ्चमिथुन ( क्रौञ्चमिथुनम् ) न	भावनता ( स्त्री )—पावता
(क्रौञ्च एक पक्षी + मिथुन—न	धमरानी ( स्त्री )—धमर पु + आली
लाड़ा) क्रौञ्च पक्षियोंका लोड़ा,	—स्त्री पहक्ति)—धमरीकी
तरण ( तरणम् ) न—तेरना	पहक्ति
दग्धदेव ( दग्धेयम् ) न ( दग्ध—	मराली ( स्त्री )—दूषी
दह् का भू कृ निन्द्य + देव	प्रक्ष्ण ( स्त्री )—मूछा,
—न भाग्य)—दुभाग्य	

राज्यभार (राज्यभार) पु —राज्यका भार	समारविन्धु (पु) —सवसागर
विधम (विधम) पु —घूमना साया	समा—स्त्री ( व व से प्रयोग
विजिता—( स्त्री )—भजितव्यता	जाता है )—वध
शकल ( शकल ) पु —घण्ड	सहितगुता ( स्त्री )—सहनशीलता
शकृ ( न )—सल	सरोरुह ( सरोरुहम् ) न —कमल
शकृजान (शकृजालम्)न (शकृ पु +	सुधमा ( स्त्री )—गामा
जाल न समुह)—शक्रीका समूह	दतशरीर (दतशरीरम्) न मन (दत-
शीत ( शीतम् ) न —घरनी	दन् + त, निन्दित + शरीर )
शुकनास (शुकनास) पु —एक शक्रीका	—निन्दित शरीर
नास	

## विशेषण ।

अनुग —घोड़ चलनेवाला	विधिष ( उद्गु० )—विषशून्य
अपनुमनम् ( उद्गु० )—निषका	नि शीक ( उद्गु० )—शीमारहित
मन दूषरी और लमा हुआ है	नीच—१ गहिरा, २ दृष्ट,
अभ्युदित ( अभि + उद् + ममु + त )	अधम
—उत्पन्न	महाभाग—भाष्यवान्
उपात्त ( उप + आ + दा + त )—	मोहित ( मुह — प्र + त )—मोहित
कृत	रायण—कुह
गुणप्रदीप्त ( गुण—पु	विषकृत ( वि + प्र + कृ + त )—
१ उद्गृह, २ हारी )—	अपमानित, विरोधित
१ मद्र खों का जाननेवाला,	गान्त ( स्त्री गान्ती )—अनन्त
२ हारोको पकड़नवाला	मकल ( उद्गु० कानाभिरवयवै
द्विगुणित—दूना	महितः सकल )—सम्पूष्य, मय
नाशन—नाशक	परस ( उद्गु० ) १ जलपूष्य,
निषण्ण—खुर	२ रतिक, सद्गुण्य

धातु ।

निर् + शिञ् ( निर्दिशति तु पर )	—रोकना
—निखाना	शि + लप् ( शिलपति—भ्वा पर )—
नि + वृ - प्रे ( निवारयति वृ - प्रे )	शिलाप करना
भ्रा, छा, क्वा उभ )	वृ ( वृणाति—वृणुत छा उभ )
	—टांकना

अव्यय ।

✓ अनायासेन ( अनायाम का वृ ष व )—जिना कष्टके	यन्वधि—जज्ञमी
अनु—आन्तर, मा	भा—१ भूत कालिक अथ बोध करानेके लिये वतमान कालिक
↓ इत—यद्यपि	क्रियाके साथ प्रयोग किया
✓ नितेशाम्—अत्यन्त	जाता है, २ मा तथा अद्य
मा—नही ( अद्यतन भूतके साथ आज्ञाके अर्थमें प्रयोग किया जाता है ।	सनभनके साथ प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ आद्यामा होता है ।
✓ प्रतीपम्—विफट, बलटा	

पाठ ४१ ।

प्राशौलिङ्, इच्छायक, अतिशयार्थक, नामधातु ।

कुशल ते भूयात्—तुन्दारा मङ्गल हो ।

केशवा व शिञ् दद्यात्—केशव तुमलोगको कुशल दे ।

शिषो व शिष पुष्यात्—शिष तुम लोगकी लक्ष्मीको बढ़ावे ।

राजन् दुधक्षसि यन्ति तितिर्धनुमेता तेराद्य वः समिध लोकममु पुषाण—  
हे महाराज, यदि आप पृथ्वीरूप गोवीं दूदा चाहते है तो अब वत्सकी तरह  
इस लोक ( प्रजाजग ) का पोषण कोलिय ।

चित्तिधनम् कमधारय मयाम है । दस ३१ प्रकारोति हो सङ्कता है—

१ चित्तिरय धनु चित्तिधनुषाम् अथवा २ चित्तिधनुषाम् चित्तिधनुषाम् । प्रथम विप्रदहं धनु प्रधान है और यह रथका अक्षर है । द्वितीय विप्रदह चित्ति प्रधान है और अक्षर उदगा है । यत्प्रमज तावम् है, नाकमेज प्रहम् नदी है, हर्षनिय उदगा अक्षर है । अत एव चित्तिधनुषाम् का चित्तिधनरिज चित्तिधनुषाम् यथा विप्रद है ।

त्रिंश मन्दायते ततो दक्षिणस्या रथरवि—चित्तिनिशानं सूर्यका भी तल मन्दा होता है ।

चित्ति उर पुं, पर अथा, अपर, अथर एव 'समीप' अथनाम है । प्रथमाया अ य र्थं पञ्चमी तथा सप्तमीते ए य र्थे इत्येव त्रिकल्पस अथनाम का समान रूप प्राप्त है । २१६ त पृथुनें टिप्पणी देखो ।

ततोभी रथिरिव नाञ्जन्यमानोऽय नव —यद् रान्त अपने तेजोवि मूयका समात् अन्त्यत्व समक रथा है ।

मेरुपायक या मिजना दर्शक साधारण नियम परिसे त्रिपे गये हैं । कुछ अनियत रूप नीचे लिख जात है —

रा—रापयति—त, छा—छापयति—त, र्पो—रूपयति—ते ।

वृ—वृषयति, ही—हीषयति—त ।

रु—रुहयति—त—रुपयति—ते, हवृ—घातयति—ते ।

लभ—लभयति—ते, रभ—रभयति—त ।

नम्—नमयति—ते, नामयति—त, उद्गम् उद्गमयति—ते ।

इस पाठनें आशीर्वाङ्, इच्छापद, अतिशयायक, तथा नामधातुशीला यथा किया गया है ।

सू—पर ।

कृ—पारम ।

म पु	म्पाव	भूयात्ताम्	भूयात्	कृषे ष	कृषीयास्ताम्	कृषीरन्
भ पु	भूया	भूयास्ताम्	भूयास्त	कृषीष्ठा	कृषीयास्ताम्	कृषीष्टम्
उ पु	भूयासम्	भूयास्त	भूयास्त	कृषीय	कृषीवदि	कृषीमदि

जि—जीयात्—जिषीष्ट, खृ—खूयात्—खोषीष्ट, यञ्—इव्यात्—यसीष्ट, वच्—उव्यात्, श्—शेषात्—शीष्ट चा—पेषात्, म्हा—रपेयात् ।

नियम :—

१ । परस्मैपद प्रत्यय याम् याम्, यास्, यास्, इत्यादि अविकारक हैं । ये आगे रहनेपर दाहिनेवाले परिवर्तन प्राय वे ही हैं जो कर्मणि तथा भावे प्रयोगका प्रत्यय य आगे रहनेपर हुआ करते हैं ।

२ । लोपीष्ट स्तोषीष्ट, कृषीष्ट—आत्मनेपद प्रत्यय विकारक हैं । गुण, तथा षीष्टम् का षीष्टम् में परिवर्तन इत्यादि के नियम वे ही हैं जो आत्मनेपद प्रयोग प्रकारके अशतनभूतके हैं ।

सदन्त ( इच्छायक ) :

भू—बुभूषति ( भविषुमिच्छति )  
 पा—पिपासति ( पातुमिच्छति )  
 जि—जिगीषति  
 दन्—निघांसति

कृ—चिकीषति  
 गृह्—जिघृषति  
 ण—दिस्मति  
 धा—धिस्मति  
 श्राप—इप्सति  
 रभ्—रिप्सते  
 म्—मुमुषति ( पर )  
 तृ—तितरीषति, तितरिषति,  
 तितरीषति  
 लभ्—लिप्सते

ज्ञा—जिज्ञासते  
 शु—शुश्रूषते  
 दृश्—निदृक्षते  
 म्—मुम्सूषते  
 मुच्—मुमुक्षति

} आत्म प्रत्यय  
 लगते हैं ।

पिपासु —पीनेकी इच्छा करनेवाला, पिपासा—प्यास

नियम —इच्छायक प्रकृति धातुओं को म जोड़नेसे बनती है । यह म आगे रहनेपर धातुओंको द्वित्व होता है और अभ्यासके अ को प्राय इ होता है । कहीं म को छ आगम होता है कहीं नहीं ।



इच्छायाक मृतञ्च प्रकृति है । इमलिय घेर क ममान इधके भी भव  
नकारासे एव दात है ।

क -कारय ( क )—कारयति कारयन् अकारयत्, कारयेत्, कारयाञ्च  
कार—अभुञ्च—आच, कारयिता कारयिष्यति अकारयिष्यत्, अचीरत्,  
कायन् ।

कृ—विक्रीय ( कृ )—विक्रीयति विक्रीयते, अविक्रीयत्,  
विक्रीयते, विक्रीयाञ्चकार—अभुञ्च—आच, विक्रीयिता, विक्रीयिष्यति,  
अविक्रीयन् अविक्रीयते विक्रीयात् ।

यङ्ङन्त ( अतिशयायक ) ।

भू—योभुयत ( यो भुञ्जन् भग या भयति )—इमनि क्रियाका दा  
२ वा अयन्त दाता यतात दाता है ।

भोव - हेभोवणे ल्यन—आभून्व्या, नत्—भरीनृत्यत्, अर्—  
अटाटयत् ।

नियम —

धातुओं को य लगापर यङ्ङन्त बनाये जात है । इनको आरम्भणकों  
प्रत्यय लगत है । य आने रहनेपर धातुओंको द्वित्व दाता है और  
अध्यासको गुण होता है, अल् नृत्, तथा अर् क रूप अनियत है ।

यङ्ङनुगन्त ( अतिशयायक जिसमें य का लोप होता है ) ।

भू—योभुयति, रहु—रारहाति

इत रूपमें य का लोप होता है ।

यङ्ङन्त तथा यङ्ङनुगन्त दोनोंमें सञ् लकारका एव लोप है ।

नामधातु ।

गातनायत—गातनविधाचरति ( आचाराय कञ् ), तदथायत ।

सदस्मि—सप आचरति, तमस्मि—तमस्कर करति ।

सत्रमिन् सुखमनुभयन्नपि न प्रयोजितम् । यद्वा प्रकृतिरियमभ्युदयानाम् ।  
द्वारका राद्विणोक्तानिर्द्धानु नेयेष ।

न वा अरे सवश कामाय सत्र प्रिय भवति । आत्मनस्तु कामाय सर्वं  
प्रिय भवति । आत्मा वा अरे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निश्चिन्धासितव्यो  
मैत्रेय्यात्मनो वा अरे अशनेन अवशेन मत्या विज्ञानेन च सर्वं विदितम् ।

समेतमोर्षानपद पुनश्च वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति ।

तस्मादेव विच्छान्तो दान्त उपरतस्वितिक्षु समाहितो भूत्वात्मप्येवात्मान  
पश्येत् ।

एष अथ साधु कम कारयति त यमभ्यो लोकेभ्य उनिनीयते । एष  
अथैवासाधु कम कारयति त यमघो निनीयते ।

एक शब्द मभ्यगृह्यात् सुप्रयुक्त स्वर्ग लोके च कामधुग भवति ।

रामरावणयोयुद्ध रामरावणयोरिव ।—अनुपममित्यर्थ । अनवया  
लङ्कारोऽयम् ।

वन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरतनुकृतबन्धनमयत् ।

मन्दाप्रान्ताऽम्बुधिरधनगोर्मा भनी ता मधुगमम् ।

कक्ष्यात्यन्त सुखमुपनत तु खमेकान्ततो वा

नोचैगच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

एक एव यगमण्डिर लौक्यु चातक ।

पिपासया वा म्रियते याचते वा पुरन्दरम् ॥

सविषोऽपरसृतायते भवान् शयमुष्णामरखोऽपि पावन ।

भद्र एव भवान्तक सतां समष्टिविषमेक्षणोऽपि सन् ॥

विलुठाम्यवनो किमाकुल किमुरो हृदि शिरस्त्रिनदि वा ।

किमु रोर्निमि रारटौमि कि कृपण मां न यदीक्षसे प्रभो ॥

रथे चट्टैस्त्रिधा यमनसभला ग शिखरिणी ।

गुरु यत्र शोभा सञ्जनयाम् दुःखनमुद्रे  
 गुरुता शोभायत्त किमिति उगता विभक्तयम् ।  
 यथा शोभायत्त सञ्जनयाम् शोभायत्त मयुरं  
 कठौ योऽथा सौर यमति गरज ह्युदतरम् ॥  
 गुणायित्त कुता विद्या नालि विद्यायित्त सुखम् ।  
 सुखार्थं वा व्यभिदिद्यां विद्यार्थं वा व्यभिदु सुखम् ॥  
 यिना मीता-का किमिय न हि दुःख रमुपग  
 विद्यानाय कृत्य किञ्च जगत्तरय हि मयति ।  
 म च स ह्युदतानयमपि विद्याया निरयधि  
 किमित्येव पृच्छन्निविगतगमायय इय ॥

—इति कुशस्थोक्तिनय प्रति ।

शरत्त सदर्श दुःखयत्त शरत्त मे तिरिात्रकन्यका ।  
 शरत्त पुनरेय तायुमो शरत्त नाम्यदुपेमि देयतम् ॥

बेरो शक्ति तथा सा काम मैन उठाया है इन शोनोंमें ब्रह्मा अन्तर है ।  
 मे एक छाटीची नोकास समुद्र पार किया चाहता हूँ ।

इस खोखलोकमें सुखक वाद दुःख और दुःखर मान् सुख जाता  
 रहता है । कोई भी सज्जया सुखी वा दुःखी नहीं है ।

एक शब्द भी यदि यद अस्ती तरह जाना जाय, हम खोशाके मनोरथ  
 को पूण करता है । विद्याकी ऐसी शक्ति है ।

उन लामाका, जो गाथि-को प्रथाम करत हैं, कोई भय नहीं ।

हे समुद्र ! हमसे कहो कि मुढार्षी पाखडवीन हमारे लड़कोंको क्या  
 किया ।

जो दुःखको सञ्जन बनाना चाहता है, यद चायोधे, समुद्रको पार  
 करना चाहता है ।

यह मनुष्यको धिक्कार है ! हमसे लड़के भी हमसे शत्रुओंके समान  
 व्यवहार करते हैं ।

सनागष्ट ।

अनग्रय (अनग्रय) पु — यह एक	द्वेषत ( ईधतम् ) न — देवता
अनह्वार है, जिसमें उपमान	नग (नग) पु — इससे सात सख्याका
और उपमेय एक ही होते हैं ।	बोध होता है ।
अनुधवन (अनुधवनम्) १ —	नेमि ( पु ) — पहिलेकी हाल
उच्चारण करना	पुरन्दर (पुरन्दर) पु — इन्द्र
अनुधि— ( पु ) — इससे चार	पुरुष ( पुरुष ) पु — आत्मा
सख्याका बोध होता है, क्योंकि	भय ( भय ) पु — १ जो उत्पन्न
समुद्र चार हैं ।	हुआ, २ शिष्य
अवधि ( पु ) — सीमा	मन्नाकाला—(स्त्री) — एक हृन्दका
अवनि ( स्त्री ) — पृथ्वी	नाम
काम—( काम ) पु — प्रेम	मुण्ड ( मुण्ड ) पु — सिर
खगमणि—( पु , तत्पु०, धम पु	मैत्रेयी—( स्त्री ) — याज्ञवल्क्य को
आकाशमें चलनेवाला पत्नी +	स्त्री
मणि पु रत्न) — अतिथीमें उत्तम	रम (रम) पु — इससे ६ सख्याका
मरत—( मरतम् ) न — यिष	बोध होता है, क्योंकि रम छ
चातक—( चातक ) पु — एक पत्नी	है ।
सौमूत (सौमूत) पु — मेघ	रुद्र (रुद्र) पु — इससे ११का बोध
सखी*दुखेखर पु ( बहु०, तरुण	होता है क्योंकि रुद्र ११ हैं ।
विशे० होंटा + इ*दु—पु चन्द्र	गरण (गरणम्) न — रक्षाका स्थान
+ शेखर—पु सिरपेच) निषका	शुभ ( शुभ ) पु — सुन शरीर
चन्द्रमा सिरपेच है, शिघ्र	शिखरिणी ( स्त्री ) — एक हृन्द

विशेषण ।

अनुपम ( बहु०, अद् + उपमा—	अर्थिन्—चाहनेवाला
सा*अ) —अमदृश, अममान	
	उपरत ( उप + रत् + त ) — विरक्त

ओपनिषद्—निषका ज्ञान उपनिषद्  
में ही संकता है

कामदुष्ट—मनोरथ पूरा करनेवाला  
खड्गवधघर—तलवार और डाल  
लिपि हुए

कृष्ण ( कृ + ण )—कटा हुआ  
तिसित्तु—जा घना गरमी घुस  
हुं म इत्यादि अविज्ञात रहता  
है

ज्ञान ( ज्ञ + त )—जिम्हने हृदिपीका  
मन किया है

दु मन्तर—अत्यन्त असह्य

द्रष्टव्य ( दृश् + तव्य )—देखन योग्य

निदिध्यासितव्य ( नि + द्यौ + म  
वृत्त + तव्य )—एक म चित्तसे  
विचार करन योग्य

पात्रन—पवित्तु

भवान्तक—संसारका नाशक

मन्तव्य ( मन् + तव्य )—विचार करने  
योग्य

रोहिणीजाति ( बहु०, राहिती  
नापा यद्य च )—बृह निषका  
स्त्री राहिणी है, बलराम

सव्य—चार, निमक

विषमेक्षण ( बहु० विषम १ असम,  
२ अनुपम, पक्षपाती + इक्ष  
न नेतु ) १ निषको विषम  
अप्यया तीन नेत्र हैं, २ जा  
पक्षपातसे देखता है

ज्ञान ( ज्ञ + त )—ज्ञान, जिम्हने  
हृदिपीका विषयोसे हटाया है

यातव्य ( यु + तव्य )—मुनसेवी योग्य

शुद्धाग्नि—शुद्धावान्

समाहित ( सम + आ + धा + त )—  
जिसन निद्रा, आलस्य इत्यादि  
का दूर किया है और चित्तको

विचार करनेमें एकाम किया है

शुभ्रयुक्त—( सु + य + युश् + त )—

विषका प्रयोग अशुद्धी तरह  
किया गया

धातु ।

उत् + नी ( उवृथति ते—धा उभ )  
—ऊपर उठाना

पति + इ ( पथेति—ध पर )—  
विशवास करना, पतिथाना

वि + लुठ् ( विलुठति—धा पर, )—  
छोड़ना

रट्—( रटति ध्या पर )—रटना,  
पुकारना

अव्यय ।

अव्यक्तम्—अहुत

नीचे—नीचे

अध—नीचे

यद्वा—अथवा ( पक्षान्तर का  
बाध कराता है । )

एकान्तत—नियमसे, सवन्त

पाठ ४० ।

स्त्रीप्रत्यय तथा पतुलेखनका प्रकार ।

पहिले स्त्रीप्रत्ययोंका खणन किया गया है । इस पाठमें उनका विस्तारसे खणन किया जाता है ।

आ—अजा ( बकरी ) कोकिला चटका ( विड़िया ) अश्या, मूषिका ( मूषकसे ), बाला, यत्सा शूद्रा ( जातो अथात् खणसे अधमें ), जेष्टा, कनिष्ठा, मध्यमा, वृद्धा, अत्रिता ।

इं—गौरी, नतकी, दरिणी, मानुषी ( मनुष्यसे ), मत्सी ( मत्स्यसे ), वयसि ( वयम् के अधर्म )—कुमारो, किशारो ( पतु वृद्धा, अत्रिता ) ।  
पुयोगे ( उमकी स्त्री )—शूद्रो गणकी

नियम —

१ । अकारान्ता—अकारान्त शब्दोंके स्त्रीलिङ्गके एर था या इं लगानेसे बनता है ।

बाधक—

( य ) इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी, वरुण—वरुणानी, भव—भवानी, रुद्र—रुद्राणी, अथ—अथाणी, सृष्ट—सृष्टानी, मूषस्य स्त्री मूषा, मनो स्त्री मनावी मनावी भनुवा, मानुस—मानुसानी—मानुसी ।

( व ) कहीं २ अथ\_व\_स जाता है ।

सर्वाङ्गम हिमना, सहस्राक्षमालयनी, लघुा यथा यत्रादी, यत्रादी  
निपियथाना ।

(क) कृत् प्रतीकं वा दृग् भिन् २ अथा मेषागं ।

उपाधाप—उपाधापस्य स्त्री उपाधापाना उपाधापार्थी ता—सुदकी स्त्री  
उपाधापार्थाविका—उपाधापार्थी—या—स्यथं पट्टमित्यादी ।

आधाप—आधापस्य स्त्री आधापानी स्यथं व्याधापु—आधापार्थी ।

सर्ज्य—सर्ज्यस्य स्त्री सर्ज्यी ( सुदाग ) । सर्ज्य्यास्त्री—सर्ज्य्याया  
—सर्ज्य्याया स्त्री ।

खन—खनो ( अकृत्तुमा खन )—खनामधिकं भूमि स्यता ( कृत्तुमा )  
—कृत्तुम भूमि ।

( ङ ) आ तथा सं नामि—

ख द्रुमुखी—खा, सुकेगी—खा, तुङ्गनामिकी—का कुगीदरी—ग,  
त्रिम्वागु—ग्रा खङ्गी—ङ्गा, गुगागु—गु कम्पुकरणी—का ।

( ए ) कृता कतया, करखीया काया, कृतयती कतयती लघुतरा ।  
लघुतमा, खडिगु । भूत तथा विधि कृदन्त, तथा तर, तम, इगु, र्भ अन्त होने  
वाले शब्दोंका स्त्रीलिङ्ग का रूप आ लमानसे बनता है । पर भूत कतरि  
कन्त का स्त्रीलिङ्गका रूप ए लमानसे बनता है ।

२ । इकारान्ता—अ) कृति, मति तति, सुट्टि, नीति इत्यादि ।

( व ) रक्षनि—नी, रानि—गु अथनि नी, कोटि—टी,  
भूमि—मी, अथि—यी ।

( अ ) ति में अन्त हो होनेवाले कृति, मति, तति, इत्यादि शब्द  
स्त्रीलिङ्ग हैं ।

( इ ) अन्य क्रूर इकारान्त का ए तथा सं शोभो लगत है । पट्टति को  
अन्त में ति रहने पर भी पट्टति—ती शो रूप होते है ।

पति का पत्नी, समान पतियथा या पत्नी ।

३। उकारान्ता —पट—पटु वा पटी, लघु—लघु वा लघुषी, पर पाण्डु ( पीला ) का केषन पाण्डु, शर पङ्गु ( लगड़ा ) का पङ्गु वा पङ्गुषी होता है ।

उकारान्त विशेषणक स्त्रीलिङ्गमें विकल्पसे इ लगाकर रूप बनते हैं ।

वामो ऊरु यथा मा वामोः, रम्भाः ( रम्भा स्त्री केलका पंड ), करभोः ( करभ—कलाईमें कनिष्ठिका तकका हाथका पिछला भाग, अथवा हाथीकी सूड़ ) ।

बहु० के अन्त या ऊरु का स्त्रीलिङ्ग में ऊरु होता है ।

४। ऋकारान्ता नकारान्ताश्च—कृ कर्तुः, द्रष्टृ दृष्टी, कृत्स्नि कृत्स्नी, राजन—राज्ञी ।

ऋकारान्त तथा नकारान्त ऋणो स्त्रीलिङ्गक रूप ईं लगानसे बनते हैं ।

वाचक—

(अ) पञ्चन्, सप्तन् इत्यादि नकारान्त सख्यावाचक तथा तिष्ठ और चतष्ट ( त्रि और चतुर् के शादश ) ।

(ब) स्वष्ट, ननाष्ट, दुष्टित्, यात्, मात् ।

(क) मन् में अन्त हीनवाल ऋ—ऋमन्, सीमन् ।

(अ) मतुप् (मत) —बुद्धिमत् बुद्धिमती, भगवत् भगवती ।

(ब) लृप्तु (घत्—कनेरि मूत कृन्त प्रत्यय) —कृतघत्-कृतघती ।

(क) कृषु ( वष्—परोक्षमत कृन्त प्रत्यय )—विद्वष्—विद्वुषी, लसिमवष्—लसुषी तस्विवष्—तस्वुषी ( ईं प्रत्यय भ अङ्गको लगता है ) ।

(ङ) ईंपमुन ( आदेशिक प्रत्यय इयष् )—लघीपष् लघीपुषी ।

(ए) घतुप ( वत्, परिभाषवाचक )—साधत् साधती, यावत् यावती,



एतावत एतावती, इयत्-इयती, क्रियत्-क्रियती ।

(फ) शतृ ( अतृ पर यत्मान कृन्त प्रत्यय )—गच्छन्ती, पुष्यन्ती, चेरयन्ती, कारयन्ती, तुन्ती न्ती याती न्ती, करिष्यती न्ती, चिकीर्षती न्ती, परन्तु द्विपत्तो, न्ती, चिन्वती, सन्धती, कुश्रती, स्त्रीणती । इनमें ट्वा, िं वु, तथा प्रेरणाद्यकमें न् नित्य होता है, और तु और अन्ति आकारान्त धातु पर भविष्यत् तथा पर सन्त में विकल्पसे न् होता है ।

५। उगिदन्ता —उन शब्दोंके स्त्रीलिङ्गके रूप, जिनके अन्तमें ऐसे प्रत्यय हों जिनके व द्यत् तथा क् द्यत् का लोप होता हो, ई लगानेसे बनते हैं । इस प्रकारके प्रत्यय ऊपर िये हुए मतुप, क्तवतु, इत्यादि हैं ।

सहती, भजती—सहत् और भवत् ( सवना ) के स्त्रीलिङ्ग रूप भी ई लगाकर बनाये जाते हैं ।

तय—पञ्चतयी, द्वितयी

इयत्—ऊहइयमी

दत्—उहदमी

मातृ—ऊहमातृी

इक—वार्षिकी, मासिकी प्रामाणिकी ।

तृश—तातृशी, मातृशी इत्यादि ।

६। तय, इयत्, मातृ, इक में अन्त होनेवाले शब्द, तथा तातृशके समान शब्दोंमें ई लगाकर स्त्रीलिङ्गके रूप बनाये जाते हैं ।

अधोलिखित पत्र कालिकाशके भालयिकाग्रिमितु में मिला है —

ध्वलि । यद्यशरणात्-धेनापति पुश्रमितु यैश्रिय पुत्रुमायामन्तमग्रि  
मितु स्नेहात् परिप्लव्य अनुश्रयति । विन्तिसप्तु । योऽसौ शत्रुभूयस्य  
नेहितेन सया राजपुत्रसपरिहर्तं यमुमिन्न गौमात्मानिश्च सदासतोपायर्त

नीयो निरगलक्षुरगो विरहः स मिधो<sup>१</sup>चिणरोधधि चरन्नयानीषेन यवनानां प्रायित । तत उभयो धेनयोमहानादीत् संम<sup>२</sup> ।

तत परान् पराजित्य धमुमिनेण धिघिना ।

प्रमद्य द्विप्रमाणो न वाञ्छिराजा निवर्तित

मोऽहमिशनोभशुमतय सगर पत्रेण प्रत्याहृताश्वो यत्तः । तन्निनी-  
मजालक्षीन जिगतरोपवेतसा भयता यधूनन सष्ट यक्षसेधनायागन्तश्च  
मिति ॥

( अनुश्रयति—दिखाता है, अधालिखित प्रकारसे जनाता है ।  
जिज्ञापयति छोटा बड़ेको, या बराबरवाला बराबरको विनयसे लिखता  
है । हमका अर्थ 'प्रार्थना करना', 'भार निवेदन करना' है । आज्ञापयति  
बड़ा छोटेको लिखता है । अनुश्रयति—निवेत्तयति । राजसूय नामक एक  
यज्ञ है, जो राज्याभिषेकक समयपर सावधान राजासे किया जाता है ।  
नीक्षित = निश्चको यज्ञकी दीक्षा हुई । सद्यःस० = जो एक वष वा लौटाया  
जानेको है । निरगल —निगता अगला यथात् स, स्वतन्त्र । रोधध  
—न तट । अनोक न सेना, अयवानोक न घोड़ोंकी सेना । प्रायितः  
—रोका गया, आक्रान्त । वाञ्छिराज —अरजोंमें उत्तम । अकालक्षीनम्—  
कालनेप न करण ।

श्री ।

स्वस्ति । श्रीमद्रामायणचरणकमलनिरन्तरपरिचरणप्राप्तनिजिलपुष्पा  
यौत् राजश्रिया विराजितान् राजमान्यान देवत्तशर्मण आशौर्भिर-  
भिनश्च ( अथवा अनुकशम यो नमस्कारतती कृत्वा ) जिज्ञापनमि<sup>३</sup> यद्  
भवद्विखित पुष्पक समुपगभ्य प्रेषयामि । स्नेह सरस्य सवध्यमेति  
जिज्ञापयति

मयत् १९७३ माघ कृष्णतृयोदश्याम् ।

यज्ञदत्तशर्मा ॥

श्री ।

सूयपुरम्, २१ १ १० ।

श्रीमन् प्रियमुद्युक्तम्

गतमासस्य पञ्चविंशतितमेऽदि ३ वर्तुष्यित पत्र प्राप्त यथाकालं ज्ञातव्यं  
 सुमहात्मानम् । अखण्डितं पूजायाः प्रार्थयितुमित्येतत् श्रुत्वा मम  
 समोहात्प्रायः फलं शङ्कतीति भूयः प्रिष्टीत्वा मित्त्रभूयोऽप्यन्तोऽवेषामि  
 निरवधिष्यामि च तद्वाता यानि तत्सुभयः शमन्तु । तद्ब्रूमधतो निन्नाये पौन  
 पुनिकाद्गवर्षे प्राप्तायाश्च च सुदुमहेऽस्मान् ।

भवश्रीय

नारायणशास्त्री ॥

सकलमेव पत्रं लिखन्तः तदा ममभनके तिथे य दो प्राग्गद्यु घष द्वै ।

-----

एवमुपाख्यायते—भवश्रीयो ज्ञातव्यो श्रुतविरुक्तो ज्ञातव्यो भवशास्त्र  
 मुद्राश्च श्रावणकुले मन्त्रवर्षेण ध्यातुमित्यामि किं गीतुं ममेति । शौचाच्च  
 बह्वक्षरनी परिचारिणी योश्चने त्वामलमे नान्दमेतद्देव यद्गोतुस्तर्हिमिति,  
 सत्यज्ञातो नाम रश्मिधि, जात्राया नृ नामाहमस्मि । अतः सत्यज्ञातो  
 ज्ञातव्य इत्येव श्रवणाऽऽप्यायपूर्येन वक्तव्यमिति । स गीतम प्रथमं ब्रह्म-  
 चय्य भगवति य स्थायीति भगवन्तमुवत्वा गीतमेव किं गीतुमित्यमिति पृष्टो  
 मातुः यथोक्तं तदेव मयमुक्तवान् । तन्नाम्तर गीतमस्य वचनं—नैत-  
 द्ब्राह्मणो विवक्तुमिति । अस्मिन् शौचादरोप-शा नेव्यं न सत्याग्ना  
 इति तदुपनीय कृशाना गवा चतुःशतसंख्यानां रक्षणाय नियोजयामास ।  
 स ता श्रावण यावत् सद्यस्य्या न भवित्यन्ति ताश्च नित्यत इति प्रति-  
 श्रावणाऽऽप्येव तृणजलसमस्तु प्रापयामास । यत्र ता सद्यस्य सम्पन्ना अथ  
 तमासीमकुरु प्रापयितुमथम उवाच—प्राप्ता शौच्य सद्यस्य इति प्रापय

न आचायकुलम् । इत्युक्त्वा च श्रुवभस्तास्य मन्वकामाय षाडशकलस्य  
चतुष्पत्ते ब्रह्मण्य एक पाठमुत्तजान । ततोऽप्रशिष्टांस्तौन् पाठानप्रिष्टस्य  
भमद्रव कचु । तथाभूत आचाय्यकुल प्राग्भावाय वडाच—सत्यकाम  
ब्रह्मचिन्त्रि भासि, कस्त्यामनुजशाच । अन्यो समुध्यस्य इति सत्यकाम  
उवाच । परन्तु न तावता मम मन्तोष । यत् आचाय्यद्विषे त्रिशा विन्त्रिता  
साधुतमस्य प्रापन्ति भगवत्समृष्टिभ्य श्रुतमसि । अतस्त्वत्त एव श्रोतु  
मिच्छामीति । तमाचाय्यश्रापभासिभियत्क ब्रह्म तस्य पुनरप्युनस्यानिति ।

भरतसदमणमहिता रघुपतिश्च घञहृत्पतिपाठेन दशमीघञ्श्रीऽघञ्  
मिव विमानमध्यास्य ।

स किमखा साधु न गच्छि योऽधिप

जिताद् य स एतु म किममु ।

सत्पुत्रकलेषु हि कुजत गति

नपरजसाख्येषु च सयमप्य ॥

मया खनी यत् त्रिविजता त्या सष्ट मया त्रुपुरमेकदुःशाम् ।

श्रुत्य तावत्परिणारयिष्यद्विश्लेषदुःप्रान्ति बद्धमोनम् ॥

यूय यय यय यूयसियामोमतिराययो ।

किनातमधुना मितु यूय यूय यय ययम् ॥

जाघीय तितृति वरा पतित्रपली

रंगाद्य श्रुत्य इत्र पररन्ति भृहम् ।

श्रापु परिणयति भिन्वयन्निन्त्रामो

साकल्पयाप्यदिनयाश्रुतीनि त्रितुम् ॥

म धन न च राजसप्य म हि त्रिन्त्रामिन्त्रकमपयं ।

अनि येदि मनागवि म । कल्पामोदूतरद्विना इमम् ॥

शुभिरसप्यदुमिं त्रिन्त्रामवापर ( सप्तदशमधिकेकोनत्रिन्त्रिन्त्रामस्य

इति पाठः । अङ्कानां वागना नग ) पुन्यकलास्य प्रथमा श्रुतिनिश्चिता ।

अभी सेनापति अपने उपाध्यक्ष का लोकोपयोग भी न करने पाया था ( अन्वयितव्यचन एव सेनापती ), कि सिपाहियों का दर कभी और बढ़ाने लिये तयार हो गया ।

मान लिये कि ( कामसु ) कर्म काय अक्षय करना चाहिये, पर म यह श्रुतान्त राज्यादि नहीं कह सकता ।

जो २ तुम अपने कष्टका विचार कराने लो २ तुम्हारा शोक अधिक होगा ( यथा यथा—तथा तथा ) ।

“इन्द्रो मितुं लाग उच्ये शत्रुर्भोका जीत यद् ( हति का प्रयोग करी ) शत्रु उच्येका प्रभाय है ” यथा राजान मातलिसे कहा ।

यनका आशय सेना अक्षय, पर अभिमानियोंकी सेवा करना अक्षय नहीं ( वरम—न तु ) ।

रोगक उत्पन्न जात ही ( जातमात्र रोगसु ) उसके दूर करनेका ध्येय करना चाहिये ।

रथका रोक जितने ( यावत् ) से उत्तरता है ।

यह आशय है कि भेरे वार २ उपजेज करनेपर भी ( अनादरप्रथो वा अनादरप्रथमौका प्रयोग करा ) तुम सम्भाषण भठके ।

संज्ञाशब्द ।

शङ्क ( शङ्क ) पु —सखा

अथ ( अथसु ) न—मघ

इन्द्र ( इन्द्र )—१ चन्द्र, २ इन्द्र  
१ सध्याका बोध होता है ।

उर्वी ( उर्वी )—पृथ्वी

शुभ ( शुभ ) पु—वैश, यापु  
सेवता, विषय लेने शरीरमें  
प्रवेश किया था

किमधु ( पु )—कुचितशाची

प्रभुध ( पु )—दुष्ट राजा

गति ( स्त्री )—त्याग

सातम ( सातम ) पु—एक + फलित

ग्रह ( ग्रह ) पु—१ ग्रह, २ इन्द्र  
२ का बोध होता है ।

जावाल ( जावाल ) पु—रथ मुनि

जावाला ( स्त्री )—किसी स्त्रीका नाम

दृष्ट ( स्त्री )—दृष्टि  
 दृष्ट ( दृष्टम् ) न—पायनेव  
 भङ्ग ( स्त्री )—तरङ्ग  
 मुनि ( पु )—१ ऋषि २ इक्ष्वाकु  
 ३ का बोध होता है ।  
 मोन ( मोनम् ) न—बुध रक्षना

प्रिखलप ( विस्फोप ) पु—प्रियोम  
 वृन्द ( वृन्दम् ) न—समूह ।  
 व्याघ्रौ ( स्त्री )—जेरिन  
 सत्यकाम ( सत्यकाम ) पु—एक  
 मुनिका नाम  
 एष ( एष ) पु—सूर्य ।

विशेषण ।

अथशिशु ( अथ + शिशु—क पर  
 + त )—बच्चा हुआ  
 कृश—दुबला  
 चतुष्पाद् ( चतुर् + पाद् पु—चौपादं  
 द्विस्रा, चत्वार पात्वा यश्च स  
 चतुष्पाद् )—चार चरणका  
 ( पाद् चतुर्धा श, चार शिवा  
 योसे ब्रह्मका १ पाद् श्रीर ४  
 कलाये होती है )  
 तरङ्गित ( स्त्री ०ता )—जिसमें तरङ्ग  
 बने हुए हैं  
 साधत्—उतना  
 परिचारक—सेवक  
 ब्रह्मविद्—ब्रह्म या परमात्माको  
 जाननेवाला

मित—( मा—लु आ + त )—  
 नपा हुआ  
 षोडशकल—जिससे १६ भाग है  
 ( ४ शिवायें, पृथिवी, अम्बरिच,  
 मिथु, समुद्र, अग्नि, सूर्य, चन्द्र,  
 विदुग्ध माण, चतु, श्रोत्र,  
 तथा मन, ये ब्रह्मको १६  
 कलाये है । )

समद्वगु ( मद्गु पु एक जलधर पत्नी,  
 यहाँ इसका अर्थ प्राय है )—  
 प्रायसहित  
 समद्व ( भम् + क्वाप्—दि, छा पर  
 + त )—पूर  
 सम्यग् ( म + पद्—दि आ + त )—  
 हुआ

धातु ।

अनु + श्नाम् ( अनुशक्ति, अ पर )—  
 पढ़ाना  
 अथ ( अथयति ते च्चु चभ )—मागना  
 अथ + था + था ( उपायाति, अ

पर )—बलन करना, क्रिया कहना	परि + प्रु (परिसूचति म्वा पर) — टपकना ; बहना
नि + पुञ् (नियोजयति मे) — लगाना	वि + वव् (विवक्ति श्र पर) — विशेषत कहना, साक २ श्रोर
परि + तच् (परितपति-जयति त, म्वा पर च उभ) — धमकाना	निष्पत्तयात कहना म + शु (सशुणुते—स्वा श्रा) — किसीकी बात सुनना

## शब्द ।

हति यावत्—दुमरे शब्दोंमें, अथात्, यनाक्—याड़ा  
 चित्तम्—आशय धामत —रलटे क्रमसे  
 तन्मन्तरम्—उभयो वा

१ । चटकदम्पत्यो ।

अस्ति कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे चटकदम्पती तमानतरुहृतनिलयी प्रतिवसत स्म । अथ तयोर्गच्छता कालेन सततिरभवत् । अन्य स्मिन्नहनि प्रमत्तो वनगज कश्चित् तमानवृक्ष घर्मातंश्चायार्थी समाश्रित । ततो मदीत्कर्पात्ता तस्य शाखा चटकाश्रिता पुष्कराश्रेणाकृष्य बभञ्ज । तस्या मङ्गेन चटकाण्डानि सर्वाणि विशीर्णानि । आयु शेषतया च चटकौ कथमपि प्राणैर्न वियुक्तौ । अथ चटका स्वाण्डभङ्गाभिभूता प्रलापान् युवाणां न किञ्चिन्मुखमास साद । अत्रान्तरे तस्यास्तान् प्रलापान् श्रुत्वा काष्ठकूटो नाम पक्षी तस्या परमसुहृत्तद्दुःखदुःखितोऽभ्येत्य तामुवाच । भगवति किं वृथा प्रलापिन । उक्त च ।

नष्ट स्रुतमतिक्रान्तं तानुशीचन्ति पण्डिता ।

पण्डितानां च सूखाणां विशेषोऽयं यतः स्मृतः ॥

तथा च ।

अशीच्यानीह भूतानि यो मूढस्तानि शोचति ।

स दुःखे नभते दुःखं दावनया निपेयते ॥

अन्यत्र

श्रेष्ठाथु बान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः ।

तस्मात्तस्य रोदितव्यं हि क्रिया कार्याश्च शक्तिः ॥

चटका प्राह । अस्त्वितव । परं दृष्टगजेन मदान्मम मतान् चयं कृत । तद्यदि मम त्वं सुहृत्कत्वस्तदम्यं गजापसदम्यं कोऽपि वधोपायश्चिन्तयतां यस्यानुष्ठानेन मे सततिनाशदुःखमपमरति । उक्तं च ।

आपदि येनापकृतं येन च हसितं दशासु विपमासु

अपकृत्य तयोर्बभूवो पुनरपि जातं नरं मन्ये ॥

काष्ठकूटं प्राह । भगवति मत्स्यमभिहितं भवत्या ।



स सुहृद् व्यमने य धादन्यजातुगद्वोऽपि मन् ।  
 हृदो सयोऽपि मित्र स्यात् सवेषामेव देहिनाम् ॥  
 स सुहृद् व्यमने य स्यात् म पुत्रो यस्तु भक्तिमान् ।  
 म भृत्यो या विषेयन् मा भाषो यत्त निर्हति ।

तत् पश्य मे बुद्धिमभावम् । पर ममापि सुहृद्भूता वीणारवा  
 ताम मच्चिकास्तु । तत्तामाभ्यागच्छामि येन म दुरात्मा दुष्टगजो  
 वध्यते । अथासौ चटकया सह मन्त्रिकामासाद्य प्रायाच । भद्रे  
 ममष्टेय चटका कोचिद् दुष्टगजेन पराभूताण्डस्फोटनेन । तत्तस्य  
 वधोपायमनुतिष्ठतो मे साहाय्य कर्तुमर्हसि । मच्चिकाप्याह ।  
 भद्रे किमुच्यतेऽत्र विषये । उक्त च ।

पुन प्रतुष्टकाराय मित्राणा क्रियते प्रियम् ।

यत् पुनर्मित्रमित्त्रस्य कार्यं मित्रैर्न किं कृतम् ॥

मत्यमेतत् । पर ममापि भेको भेषनादो नाम मित्र तिष्ठति ।  
 तमप्याह्वय यथोचित जुम । उक्त च ।

हितै साधुसमाचारै शान्त्रैर्मतिमान्निभि ।

कथंचिन्न विकल्पन्ते विद्वद्द्विचितिता नया ॥

अथ ते त्रयोऽपि गत्वा भेषनादस्याग्रे समस्तमपि वृत्तान्त निवेद्य  
 तस्य । अथ स प्रोवाच । कियन्साखोऽसौ वराकी गजो महा  
 जनस्य कुपितस्याये । तन्मद्वीथी सन्त्र कर्तव्य । मच्चिके त्व  
 गत्वा मध्याह्नसमये तस्य मदीवनस्य गजस्य कणे वीणारवसदृश  
 शब्द कुरु येन श्रवणसुखलान्तसो िन्मीनितनयनो भवति । ततश्च  
 काष्ठकूटचञ्चवा स्फोटितनयनाऽन्वोभूतस्नृपातो मम गर्ततटाश्रितस्य  
 सपरिकरस्य शब्द श्रुत्वा जनाशय मत्वा ममभ्येति । ततो गर्त  
 मासाद्य पतित्यति पञ्चत्व यास्यति चेति । एव समवाय कर्तव्यो  
 यथा धैरसाधन भवति । अथ तथानुष्ठिते स मत्तगजो मच्चिकारीय  
 सुखाग्निमीनितनेत्र काष्ठकूटहृतचक्षुर्मध्याह्नसमये भ्राभ्यन् मण्डू

कश्यपानुसारी गच्छन् महतीं गतामासाद्य पतितो मृतश्च । अतोऽहं ब्रवीमि—

चटकाकाष्ठकृटेन मक्षिकाददरेस्तथा ।  
महाजनविरोधेन कुञ्जर प्रलय गत ॥

२ । वामदेवशिष्यकथिता कुमारवार्ता ।

कदाचिद्वामदेवशिष्य सोमदेशगर्मानाम कचिदेक बालक राज्ञः पुरो निक्षिप्याभाषत । देव रामतोथे स्नात्वा प्रत्यागच्छता मया कानना वनौ वनितया कयापि धार्यमाणमेनसुञ्जनाकारं कुमारं विलोक्य सादरमभाषि । स्वविरे का लम् । एतस्मिन्नवटवृक्षमध्ये बालकमुद्वहन्ती किमर्थमायासेन भ्रमसीति । ब्रह्मयाप्यभाषि । मुनिवर काश्यपन नाम्नि द्वीपे कालगुप्तो नाम धनाढ्यो वैश्वदेव कश्चिदस्ति । तत्रन्दिनीं नयनानन्दकारिणीं सुवृत्तां नामेतस्माद् द्वीपाटागतो मगधनाथमन्त्रिसभवो रत्नोद्भवो नाम रमणीयगुणालयो व्यवहार्युपयेमे । कालक्रमेण नताङ्गी गभिणी जाता । ततः सोटरविनोक्तनकुतृहलेन रत्नोद्भवस्तया सह प्रवहणमारुह्य पुष्यपुरमभिप्रतस्थे । कङ्कोलमालिकाभिहतं पोतं समुद्राम्बुमयमज्जत् । तां लम्पना धात्रीभावेन कल्पिता हं कराभ्यामुद्वहन्ती फलकर्मकमधिरुह्य दैवगत्या तीरभूमिमगमम् । सुहृज्जनपरिहृतो रत्नोद्भवस्तत्र निमग्नो वा केनोपायेन तीरमगमह्यं न जानामि । क्लेशस्य परां काष्ठामधिगतां सुवृत्तास्मिन्नवटवृक्षमध्येऽद्य सुतममृतं । प्रसववेदनया विचेतना सा प्रच्छायशीतले तरुतले निवसति । विजने वने स्थातुमशक्ततया जनपदगामिनं मार्गमन्वेष्टुं, सुदुःकृत्या मया विदग्धायास्तास्या समीपे बालकं निक्षिप्य गन्तुमनुचितमिति कुमारोऽप्यानायीति । तस्मिन्नेव क्षणे वयो धारणं कश्चिददृश्यत । तं विलोक्य भीता सा बालकं निपात्य प्राद्ववत् । अहं समीपलतागुल्मके प्रविश्य परीक्षमाणोऽनिष्ठम् । निपतितं बालकं माददति गजपती कण्ठीरवी भीमरयो महायज्ञेण यपतत् । भयाङ्गमेन

दस्तायनेन भटिति यियति समुत्पात्तमानो ज्ञानको न्यपतत् । स चोच  
 ततश्चाप्यामसासौनेन धानरग कनचित् पक्ष्मण्डया परिगृह्य फले  
 तरतया विततान्कन्धभूमि निक्षिप्तोऽभूत् । सोऽपि मकटं क्षिपद्गाम् ।  
 केसरिणा करिण निहत्य कुवक्षिदगामि । अतामृष्टाशिर्गतोऽहर्माप  
 यालक शनैर्यमोर्कृष्टादयताय यनास्तरं यनितामग्निप्याविभोक्तान  
 मानीय गुरवे निवद्य तत्रिदेशेन भवन्निकटमानीतवानग्नीति ।

### ३ । सिद्धशकयो ।

कष्मिदिहने भासुरका नाम सिद्ध प्रतियसति च । अथासौ  
 धीर्यातिरकाशित्यमयानेकान् सृगगगकाटान् व्यापादयतीपरराम ।  
 अथान्येद्यद्गहनजा सय सारङ्गवराहमहिषगगकाटया मिलित्वा  
 तमभुपेत्य प्रोचु । स्वामिन् किमनेन मकससृगवधेन नित्यमेव  
 यतस्त्वैकेनापि मृगेण दृष्टिभर्षति । तत् क्रियतामघ्राभि सृष्ट  
 समयधम । अद्य प्रभृति तयावीपविष्टस्य जातिक्रमेण प्रतिदिन  
 मेको मृगो भक्षणाय मनेष्यति । एव कृते तव तापत् प्राणयात्रा  
 क्लेश विनापि भविष्यत्यस्माक पुन सयाच्छेदन न स्यात् । तदेव  
 राजधमोऽनुष्ठोयताम् । उक्तं च ।

शनैः शनैश्च यो राज्यमुपभुङ्क्त यथावन्नम् ।

रमायनमिव प्राज्ञ स पुष्टिं परमा व्रजेत् ॥

अथ तेषां तद्वचनमाकर्ण्य भासुरक आह । अहो मत्त्वमभिहितं  
 भवति । पर यदि ममोपविष्टस्याव नित्यमव नैक श्लाघद समा  
 गमिष्यति तद्वन मवानपि भक्षयिष्यामि । अथ ते तथैव प्रतिज्वाय  
 निवतिभाजस्तत्रैव धने निभया पयन्ति । एकस्य प्रतिदिनं तेषां  
 मध्यात् तस्य भोजनाय मध्याह्नसमये क्रमेणोपतिष्ठते । अथ  
 कटाक्षिजातिक्रमाच्छकम्यावमर समायात । स समस्तमृगै  
 प्रेरितोऽनिच्छन्नपि मन्द मन्द गत्वा तस्य वधोपाय चिन्तयन्  
 वेनातिक्रमं कृत्वा व्याकुलितहृदयो यावद्वच्छति तावन्मार्गं गच्छता

कूप सदृष्ट । यावत् कपोपरि याति तावत् कूपमध्य आत्मन प्रति-  
 बिम्ब ददर्श । दृष्ट्वा च तेन हृदये चिन्तित यद्भव्य उपायोऽस्ति ।  
 अह भासुरक प्रकीप्य स्वबुद्ध्याग्निन् कूपे पातयिष्यामि । अथासौ  
 दिनशेषे भासुरकमभीप प्राप्त । सिंहोऽपि वेलातिक्रमेण लुत्चाम  
 कण्ठ कोपाविष्ट सृक्षणी परिलेनिह्यमानो व्यचिन्तयत् । अहो  
 प्रातराहाराय नि सत्त्व वन मया कतेष्यम् । एव चिन्तयतस्तुष्य  
 शशको मन्द मन्द गत्वा प्रणम्य तस्याग्रे स्थित । अथ त प्रज्वलिता  
 त्वा भासुरको भर्तृर्मथन्नाह । रे शशकाधम एकतस्तावत् त्व लघु  
 प्राप्सोऽपरतो वेलातिक्रमेण । तदन्मादपराधात् त्वा निपात्य प्रात  
 मकलान्यपि मृगकुलान्युच्छेदयिष्यामि । अथ शशक भविनयप्रोवाच ।  
 स्वामिन् नापराधो मम न च सत्त्वाना तच्छ्रयता कारणम् ।  
 सिंह आह । सत्वर निवेदय यावन्मम दृष्टान्तगतो न भविष्यसीति ।  
 शशक आह । समस्तमृगैरव्य जातिक्रमेण मम लघुतरस्य प्रस्ताव  
 विज्ञाय पञ्चभि शशकै सहाह प्रेषित । ततश्चाहमागच्छन्तराले  
 महता केनचिदपरेण सिंहेन विवरान्निगत्याभिहित । रे क्व प्रस्थिता  
 युयम् । अभीष्टदेवता स्मरत । ततो मयाभिहितम् । वय स्वामिनो  
 भासुरकसिंहस्य सकाश आहारार्थं समयधमेण गच्छाम । ततस्ते  
 नाभिहितम् । यद्येव तर्हि मदीयमेतद्धन मया सह समयधमेण  
 समस्तैरपि श्वापदैर्जितव्यम् । शौररूपी स भासुरक । अथ यदि  
 सोऽत्र राजा ततो विश्वासस्थाने चतुर शशकानत्र धृत्वा तमाह्वय  
 द्रुततरमागच्छ येन य कश्चिदावयोर्मेध्यात् पराक्रमेण राजा भविष्यति  
 स स्वानेतान् भक्षयिष्यतीति । ततोऽह तेनादिष्ट स्वामिसकाशमभ्या  
 गत । एतद्देलाव्यतिक्रमकारणम् । तदत्र ध्यामो प्रमाणम् । तच्छ्रुत्वा  
 भासुरक आह । यद्येव तत् सत्वर दशय मे त शौरसिंह वेनाह  
 मृगकीप तस्योपरि चिह्ना स्वस्थो भवामि । शशक  
 तर्ह्यागच्छतु स्वामी । एवमुक्त्वापि व्यवस्थित ।

य कृपो दृष्टोऽभूत्तमेव कृपसासाद्य भासुरकमाह । स्वामिन् कर्म  
 प्रताप सोढ ममथ । त्वा दृष्ट्वा दूरतोऽपि चौरमिह प्रविष्ट स्व दुग्  
 तदागच्छ येन दगयामीति । भासुरक आह । दर्शय मे दुर्गम् । तदनु  
 दशितस्तेन कृप । सोऽपि मूर्ख मिह कृपमध्ये आत्मप्रतिबिम्ब  
 जलमध्यगत दृष्ट्वा मिहनाद सुमोच । तत प्रतिशब्दन कृपमध्याद्  
 द्विगुणतरो नाद समुत्पित । अथ तेन त शत्रु मत्वात्मान तस्यो  
 परि प्रक्षिप्य प्राणा परित्वक्ता । शशकोऽपि हृष्टमना मयच्छगाना  
 नन्द्य तै सह प्रगम्यमानो यथासुख तत्र वने निवसति स्म । अतो  
 ऽह ब्रवीमि—

यस्य बुद्धिबल तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।  
 वने सिद्धो मदीन्मत्त शशकेन निपातित ॥

### ४ । सपेमण्डूकयो ।

कम्मिच्चित् कूपे गङ्गदत्तो नाम मण्डूकराज प्रतिवसति स्म । स  
 कदाचिद्दायादैरुद्धेजिताऽरघदृष्टमाकुर्यात् निष्कान्त । अथ तेन चिन्ति  
 त दायदाना मया प्रत्यपकार कर्तव्य इति । एवं चिन्तयन्  
 बिले प्रविशन्त कृष्णमर्षमपश्यत् । त दृष्ट्वा भूयोऽप्यचिन्तयद्यदेन  
 तत्र कूपे नीत्वा सकलदायादानामुच्छेदं करोमि । उक्त व ।

शत्रुमुन्मूलयेत् प्राञ्जस्तीक्ष्ण तीक्ष्णेन शत्रुणा ।  
 व्यथाकर सुखार्घाय कण्टकेव काण्टकम् ॥

एव विभाव्य त्रिलहार गत्वा तमाहृतवान् । एहि एहि प्रियदर्शन  
 एहि । तच्छ्रुत्वा सपश्चिन्तयामास । य एष मामाह्वयति स स्वजातीयो  
 न भवति यतो नेपा मगवाणी । तदत्रैव दगे स्थितस्तापहेद्भि  
 कोऽयं भविष्यतीति । आह च । भो को भवान् । स आह । अह  
 गङ्गदत्तो नाम मण्डूकाधिपतिस्त्वत्प्राणे मैत्रार्थमागत । तच्छ्रुत्वा  
 मर्ष आह । भो । अथहेयमेतद्यत्तुणाना वज्रिना सह सगम ।

गङ्गदत्त आह । मत्प्रमेतत् स्वभावैरी त्वमस्माकम् । परं परपरि  
 भवात् प्राप्तीऽह ते सकाशम् । सर्प आह । कथय कस्मात् परिभव ।  
 स आह । दायादेभ्य । सोऽप्याह । क ते आश्रयो वाप्या कृपे तडागी  
 द्दे वा । तत् कथय स्वाश्रयम् । तेनोक्त पायाणचयनिबद्धे कृपे ।  
 सर्प आह । अहो अपदा वय तन्नास्ति तत्र मे प्रवेश प्रविष्टस्य च  
 स्थान नास्ति यत्र स्थितस्तव दायादान व्यापादयामि । तद्व्यताम् ।  
 गङ्गदत्त आह । भो ममागच्छ त्वम् । अह सुखोपायेन तत्र  
 तव प्रवेश कारयिष्यामि । तथा तस्य मध्ये जनीपान्ते रम्यतर  
 कोटरमस्ति तत्र स्थितस्त्व लीनया दायादान् व्यापादयिष्यमि ।  
 तच्छ्रुत्वा सपो व्यचिन्तयत् । अह तावत् परिणतवया कदाचित्  
 कथञ्चिन्मूपकमेक प्राप्तीमि । तत् सुखायहो जीवनोपायोऽयमनेन  
 कुलाङ्गारेण मे दग्धत । तद्वत्वा तान् मण्डूकान् भक्षयामीति ।  
 एव विचिन्तय तमाह । भो गङ्गदत्त यदेवं तदग्रे भव येन तत्र  
 गच्छाव । गङ्गदत्त आह । भो प्रियदर्शन अह त्वा सुखोपायेन तत्र  
 नेष्यामि स्थान च दर्शयिष्यामि । पर त्वयाक्षत्परिजनो रक्षणीय ।  
 केवल यानह तत्र दर्शयिष्यामि त एव भक्षणीया इति । सर्प आह  
 माप्रत त्व मे मित्र जातम् । तत्र भेतव्य तव धचनेन भक्षणीयास्ते  
 दायादा । एयमुक्त्वा विन्नाविष्कमर तमान्निद्राव्य च तेनैव सह  
 प्रस्थित । अथ कृपमामाधारघट्टवटिकामार्गेण सर्पस्तेन स्वालय  
 नीत । ततश्च गङ्गदत्तेन ह्यणसर्प कोटरे धृत्वा दर्शितास्ते दायादा ।  
 ते च तेन शने शनैर्भक्षिता । अथ मण्डूकाभावे सपेणाभिहितम् ।  
 भद्र नि शेषितास्ते रिपवस्तत् प्रयच्छान्यग्ने किञ्चिद्भोजन यतोऽह  
 त्वयात्तानीत । गङ्गदत्त आह । भद्र कृत त्वया मित्रकृत्य तस्मात्प्रत  
 मनेनैव घटिकायन्त्रमार्गेण गम्यतामिति । सर्प आह । भो गङ्गदत्त  
 न समरगभिहित त्वया । कथमह तत्र गच्छामि । मते ~~मते~~  
 मन्येन रुह भविष्यति । तस्मादत्रस्वस्य मे

प्रयच्छ । नो चेत् सर्वानपि भक्षयिष्यामीति । तच्छ्रुत्वा गङ्गदत्तो  
व्याकुलमना नित्यमैकैक तस्यादिशति । सोऽपि त भक्षयित्वा तमा  
परोत्तेऽन्यानपि भक्षयति । अथान्येदुःस्तेनापरान् मण्डकान् भक्ष  
यित्वा गङ्गदत्तसुतो यमुनादत्तो भक्षित । त भक्षित मत्वा गङ्ग  
दत्तस्तारस्वरेण धिक् धिक् प्रलापपर कथञ्चिदपि न विरराम । तत  
स्वपत्न्याभिहित —

किं क्रन्दसि दुराक्रन्द स्वपक्षक्षयकारक ।

स्वपक्षस्य क्षये जाते को नस्ताता भविष्यति ॥

तदद्यापि यिच्चिन्वतामात्मनो निष्कृमणस्य वधोपायश्च । अथ  
गच्छता कालेन सकलमपि कथन्त मण्डककुक्षम् । केवलमेको गङ्ग-  
दत्तस्तिष्ठति । तत प्रियदर्शनेन भणितम् । भो गङ्गदत्त बुभुक्षितोऽह  
नि शेषिता सर्वमण्डका । तद्दीयता मे किञ्चिज्जीवन यतोऽह त्वयात्रा  
नीत । स आह । भो मित्र न त्वयात्र विषये मयावस्थितेन कापि  
विन्ता कार्या । तद्यदि मा प्रेषयिष्यसि ततोऽन्यकुपस्यानपि मण्डकान  
विश्वास्यावानयामि । स आह । मम तावत्त्वमभक्ष्यो भ्राष्टस्थाने ।  
तद्यदेव करोषि तत् साम्प्रत पिष्टम्याने भवामि तदेव क्रियतामिति ।  
सोऽपि तदाकर्णारघट्टिकाभाश्रित्य तस्मात् कृपान्निष्क्रान्त ।  
प्रियदर्शनीऽपि तदाकाङ्क्षया तत्रम्य प्रतोक्षमाणस्तिष्ठति । अथ  
चिरादनागते गङ्गदत्ते प्रियदर्शनोऽयकोटरिवाग्निनी गोधामुवाच ।  
भद्रे क्रियता स्तोक साहाय्य यतश्चिरपरिचितस्तौ गङ्गदत्त । तद्भत्वा  
तत्सकाश कुञ्चिज्जलाशयेऽन्विष्य सम सदेश कथय । यदागमा  
तामिकाक्रिनापि भवता । त्वया विना नात्र वन्तु गङ्गोमि । यदि तव  
विरुद्धमाचरामि तत् सुकृतमन्तरं मया विष्टमिति । गोधापि  
तद्बधनाद्गङ्गदत्त द्रवन्तरमन्विष्य प्रियदर्शनसदेश कथयामास ।  
तदाक्षण्य गङ्गदत्त आह—

बुभुक्षित किं न करोति पाप  
 चीणा उरा निष्कारणा भयन्ति ।  
 आप्याहि भर्तुं प्रियदशनस्य  
 न गङ्गादत्त पुनरेति कृपम् ॥

५ । माभ्यात्वृत्तान्त ।

पुरा किनेच्चाक्षुव शप्रभवो युवनाश्वो नाम महीपतिवभूव । धम  
 भृतां वर स एधिवीपानो बहुभिर्भूरिदक्षिणे क्रतुभिरीजे । अनपत्य  
 त्वात् स राजर्षिर्मन्त्रिषु स्वराज्यमाधाय वानित्यो बभूव । तत  
 शास्त्रदृष्टेन त्रिधिनात्मानं संयोज्य यादाचिदुपवासेन दुःखित  
 पिपामाशुष्कहृदयो भृगोराश्रमं प्रविशेत् । तामिव रात्रिं महात्मा  
 भृगुनन्दो युवनाश्वस्य पुत्रकारणादिष्टिं चकार । मन्त्रपूर्तेन वारिणा  
 सहान् कलशस्तत्र पूर्वमेव समाहितोऽतिष्ठद्यत् प्राश्य तस्य पत्नी  
 शप्रममं सुतं प्रसुवीत् । यस्मिन् कनशे तत् सुमस्कृतं वारि  
 निहितमासीत् तं कलशं वेद्या यस्य महर्षयः सुपुत्रुः । रात्रि-  
 जागरणाच्छान्तास्तानृषीन् समतीत्य शुष्ककण्ठं पिपासार्तं पानी  
 यात्री तमाश्रमं प्रविश्य स राजा भृशं पानीयमभ्ययाचत । किं तु  
 श्रान्तस्य शुष्केण कण्ठेन क्रोगतस्तस्य याचना न कोऽपि शुश्राव ।  
 ततः स पार्थिवस्त कलशं जनपुणं दृष्ट्वा वेगेनाभ्यद्रवदभ्रं पीत्वा  
 व्यवासृजत् । शीतलं तीर्थं पीत्वा पिपासार्तं स नृप सुसुखी  
 बभूव । ततस्ते मुनयो निस्तौय कलशं दृष्ट्वा कस्येदं कमेति  
 प्रयच्छन् । तदाकण्य युवनाश्वो ममेदं कमेति सत्यं प्रत्यवदत् ।  
 न युक्तं ह्यतस्त्वयिति भगवान् भार्गवस्तमाह । मया ह्यत्र दारुण  
 तप आस्थाय तव पुत्रार्थं ब्रह्माहितं ततस्त्वया यदम्भक्षणे ह्यत  
 तन्न युक्तं किन्त्वेतद्दिव्यतममन्यथाकर्तुं न शक्यम् । यतो भक्तपोषीर्यं  
 संभृता आपस्त्वया पीता अतस्त्वमात्मना शक्रममं पुत्रं जनयिष्यसि ।



वय परमाद्भुतामिष्टि स्वतकृते विधाप्यासो धीः गर्भधारणञ्च श्रेष्ठं  
 न समवाच्यमि । ततो यपगते पुणे तस्य राशौ यामं पार्श्वं  
 त्रिनिभिद्य मङ्गलैः सुभी नियक्राम न च गुवनात् नरपतिं  
 नृतुराविगत् । त पुत्र दिदृशुः शक्रमन्वोपागमस्य देवा अपृष्टन्  
 किं धाम्यत्यय पुत्र इति । ततः शक्रमन्वाय प्रदेगिनी समभिसदधे  
 मामय धाम्यतीतुराशयां ।

मामय धाम्यतीत्यथ भाषितं यप यपुगा ।

मान्धातिति च तामाभ्य चक्रुः केन्द्रा दियोक्तस ॥

भोऽय मान्धातातिर्तजस्यो वृषोऽप्रतिहतचक्र राव्य सुभुजे ॥

६ । कुमारं चन्द्रार्षोऽहं प्रति महाराजाज्ञा ॥

कुमार महाराज समाज्ञापयति । पूर्णानो मनोरथा । अर्धातानि  
 शास्त्राणि । शिञ्जिता सकला कला । गता सर्वास्वानुधविद्यासु परां  
 प्रतिष्ठाम् । अमुमतोऽग्निं धिनिर्गमाय विद्यागृहात् सदाचार्य्ये । उप  
 गृहीतगित्तं गन्धगजकुमारकमिव वारिकन्यादिभिः तमवगतमकल  
 कलाकलाप पौणमासीगगिनमिव तयोद्गतं यगतु स्वा जन । यजन्तु  
 सफरतरामतिचिरदर्शनोत्कण्ठितानि श्लोकलोचनानि । दगन प्रति ते  
 समुत्सुकान्यतीव सवाप्यस्त पुराणि । अयमेव भवतो दगम सयत्सरो  
 विद्यागृहमधिवसत । प्रविष्टोऽसि यष्टमनुभयन् यपम् । एव सं  
 पिण्डितेनामुना षोडशेन प्रवर्धसे । तदव्यप्रभृतिं विगत्य दर्शनोत्सु  
 काभ्यो दत्त्वा दगनमखिलमाद्यभ्योऽभिवाद्य च युद्धनपगतनि  
 यन्वणो यथासुखमनुभय रात्र्यसुखानि तवयौवाल्मिनितानि च । स  
 मानय राजलोकम् । पुत्रय द्विजातीन् । परिपालय प्रजा । ज्ञानन्दय  
 बन्धुवर्गम् । अथ च त्रिभुवनैकरत्नमनिलगरुडसमजव इन्द्रायुध  
 नामा तुरङ्गम प्रेषितो महाराजेन हारि तिष्ठति । एष वाम् देवस्य  
 पारमीकाधिपतिना त्रिभुवावाचयामिति कृत्वा “जन्मधितनादत्यन्तम

योनिजमिदमखरत्नमामादित मया महाराजाधिरोहणयोग्यम्” इति सदिश्य प्रहित । दृष्ट्वा च निवेदित लक्षणविद्धि । “देव यान्युच्चैः श्रवसं श्रूयन्ते लक्षणानि तैरयमुपेत । नैव विधो भतो भावी वा तुरङ्गम इति । तदयमनुगृह्यतामधिरोहणेन । इदं च मूर्धाभिपिक्त-पार्थिवकुलप्रसूतानां विनयोपपन्नात् शूराणामभिरूपानां कलावता च कुलक्रमागतानां राजपुत्राणां महस्य परिचारार्थमनुप्रेषित तुरङ्गमारूढ द्वारि प्रणामलालस्य प्रतिपालयति । इत्यभिधाय विरत वचसि यलाहके चन्द्रापीड पितुराज्ञां शिरसि कृत्वा नवजलधरध्वान-गम्भीरया गिरा “प्रवेश्यतामिन्द्रायुध इति निर्जिगमिपुरादिदेश ॥

### ७ । चन्द्रापीड प्रति शुक्रनासोपदेश ।

समुपस्थितयौवराज्याभिषेक चन्द्रापीड कटाचिह्नार्थमागतमारूढविनयमपि विनीततरमिच्छन्शुक्रनासोऽस्मात् सविस्तर-मुवाच । तात चन्द्रापीड विदितवेदितव्यम्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते नान्यमप्युपदेष्टव्यमस्ति । केवलं च निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्ना लोकेच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनतमो यौवनप्रभवम् । अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मणमद । विषमो विषयविपास्वादमोह । नित्यमस्त्रानशौचवध्नी रागमलावलेप । घोरा च राज्यसुखनिद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे । गभस्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वमभानुपशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरपरा सर्वा । अधिजयानामकैकमप्येषामायतन किमुत समवाय । यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः । भवा दृशा एव भवन्ति भाजनानुरूपदेशानाम् । अपगतमस्ते हि मनसि स्फटिकमणायिव रजानकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणा । अयमेव चानास्त्रादितविषयसम्यक्ते काल उपदेशस्य । गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षाननक्षममजल स्नानम् । विशेषेण राज्ञाम् । विरला हि तेपामुपदेष्टार । आलोकयतु तावत् कल्याणा

भेनिवेशी लक्ष्मीमय प्रथमम् । इय हि लक्ष्मी क्षीरसागरात् पारि-  
जातपङ्कवेभ्यो रागमिन्दुशकलादेकान्तवक्रतामुच्चै यवसद्यश्चनता  
कालकृटाशोचनशक्ति मदिराया मद कौमुभमणेनहुर्यमित्येतानि  
सङ्घासपरिचययगाद्विरहविनोदचिह्नानि गृह्येत्वैवोक्तता । इयमनार्या  
लब्धापि खलु दु खेन परिपान्थते । परिपान्थितापि प्रपलायते । न  
परिचय रक्षति । ताभिजनमौचते । न रूपमाश्लोकयते । न कुल  
क्रममनुवर्तते । न शील पश्यति । न वैदग्ध्य गणयति । न श्रुतमा  
कर्णयति । न धममनुरुध्यते । न त्यागमार्द्रयते । न विशेषज्ञता  
विचारयति । नाचार पालयति । तदस्मिन् महामोक्षकारिणि यौवने  
कुमार तथा प्रयतेथा यथा तोपहस्यमे जनैः निन्द्यसे माधुमिन धिक्  
क्रियसे गुरुभिर्नोपालभ्यसे सुहृद्भिर्न शौच्यसे विद्वद्भिः । काम भवान्  
प्रकृत्यैव धीर पित्रा च समारापितमस्कार । तरलहृदयमप्रतिबुद्ध  
च मदयन्ति धनानि तथापि भवद्गुणसतोपो मामेवं सुखरीकृतवान् ।  
इदमेव च पुन पुनरभिधीयसे जिदासमपि मचेतनमपि महासत्त्व  
मप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमिय दुर्विनीता खलौ  
करोति लक्ष्मीरिति । सर्वथा कल्याणै पित्रा प्रियमाणमनुभवतु  
भवाश्रययीवराज्याभिषेकमङ्गलम् । कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरुक्ता  
धुरम् । अजनमय द्विपता शिरांसि । उन्नमय स्वबन्धुवर्गम् । यमि  
पेक्षान्तर च प्रारब्धादिग्विजय परिभ्रमन् विजितामपि तव पित्रा  
सप्तद्वीपभ्रुवणां पुनर्विजयस्त वसुन्धराम् । अय च ते कान प्रतापमा  
रोपयितुम । आरूढप्रतापो राजा त्वेनोक्त्वदर्शोव सिद्धादेशो भवति ।  
इत्येतावदभिधायोपगशाम ॥

८ । ब्रह्मज्ञानविषयक गुरुशिष्यसंवाद ।

श्रुतिस्मृतिभिर्गृहीतपरमात्मनश्चण शिष्य समारसागरादुत्तितीर्षु  
पृच्छेत्—कस्त्वममि सोम्येति ।

स यदि ब्रूयात्—ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वयो ब्रह्मचार्यास गृहस्थो वा ।  
इदानीमग्नि परमहसपरिव्राट् समारमागराज्जन्ममृत्युमहायाहादृत्ति  
तीर्पूरिति ।

आचार्यो ब्रूयात्—इदं तव सोम्य मृतस्य शरीर वयोभिरद्यते  
मृदायं वापद्यते । तत कथं समारादुद्धर्तुमिच्छस्यति । न हि नद्या  
षयरे कृते भस्मीभूते नद्या पार तरिषामोति ।

स यदि ब्रूयात्—अन्योऽहं शरीरात् । शरीर तु जायते म्रियते  
वयोभिरद्यते मृत्नावमापद्यते शम्याग्न्यादिभिश्च विनाश्रते व्याध्यादि  
भिश्च प्रयुज्यते । तस्मिन्नहं स्वकृतधर्माधर्मवशात् पक्षी नीडमिव  
प्रविष्ट पुन पुन शरीरविनाशे धर्माधर्मवशात् शरीरान्तरं यास्यामि  
पूर्वनीडविनाशे पक्षीव नीडान्तरम् । तस्माद्विल्य एवाहं शरीरा  
दन्य । शरीराप्लावगच्छन्तापगच्छन्ति च वासासौव पुरुषस्येति ।

आचार्यो ब्रूयात्—साध्ववादी । ममरक् पश्यसि कथं नृपा  
वादीब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वयो ब्रह्मचार्यास गृहस्थो वा इदानीमग्नि परम  
हसपरिव्राडिति ।

स यदि ब्रूयात्—भगवन् कथमहं नृपावादिपमिति ।

त प्रति ब्रूयादाचार्य—यतस्त्वं भिन्नजात्यन्वयसंस्कार शरीर जात्य  
न्वयवर्जितस्यात्मनः प्रत्यभ्यज्ञासोर्ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वय इत्यादिना  
वाक्येनेति ।

स यदि पृच्छेत्—कथं भिन्नजात्यन्वयसंस्कार शरीर कथं वाहं  
जात्यन्वयसंस्कारवर्जित इति ।

आचार्यो ब्रूयात्—शृणु सोम्य यथेदं शरीरं त्वत्तो भिन्नं भिन्न  
जात्यन्वयसंस्कारं त्वं च जात्यन्वयसंस्कारवर्जित इत्युक्त्वा तं स्मारयेत्  
परमात्मलक्षणं श्रुतिष्मृत्युक्तमिति ॥

## ८ । नीति ।

मूर्खं करोति वाचान् पद्मं नृपयते गिरिम् ।  
 यत्कृपा तमन् वन्दे परमानन्माधयम् ॥ १ ॥  
 माता शत्रुः पिता धैरी धनं धाना न पाठित ।  
 न गोमते मभामधो संमये वकी यथा ॥ २ ॥  
 नान्येत् पद्मं यथाणि तद्गं यथाणि ताडयेत् ।  
 प्राप्ते तु पीडये यथे पृथुः सिद्धमियात्रेण् ॥ ३ ॥  
 नान्ये यद्यपी दोषास्ताडने यद्यथो गुणाः ।  
 तन्मात् पृथुः च शिष्यः च ताडयेत् तु नान्येण् ॥ ४ ॥  
 एकेनापि सुष्ठुनेण पुष्यिनेन सुगन्धिना ।  
 वासितं तद्दः मयं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥ ५ ॥  
 एकेनापि कुष्ठुनेण कीटस्थेन यच्छिना ।  
 टद्दते तद्दः मयं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥ ६ ॥  
 उत्सवे व्यमने चैव दुर्मिने शत्रुः सिद्धे ।  
 राजहारे शगाने च यस्तिष्ठति म वाभ्यव ७ ॥  
 परोक्षे कायहन्तारं प्रत्यने प्रिययादिनाम् ।  
 वर्जयेत् ताडय मित्कं विपक्षेण पयोमुखम् ॥ ८ ॥  
 दुर्जनं प्रिययादी च नैतद्विष्वामकारणम् ।  
 मधु तिष्ठति जिह्वाये हृदये तु हृन्नाह्वयम् ॥ ९ ॥  
 दुर्जनं परिहर्तव्यो विद्यायाल्लुतोऽपि सन् ।  
 मणिना भूयित सप किमसौ न भयकर ॥ १० ॥  
 सप शूर खनं शूरं सपान् कुरुतर खल ।  
 भन्वीपधिवग्नं सर्पं खलं केन निवायते ॥ ११ ॥  
 अधनागं मनस्तापं शृङ्गे दुश्चरितानि च ।  
 वञ्चनं चापमानं च मतिमान् न प्रकाशयेत् ॥ १२ ॥

यस्मिन् देशे न सम्मान न प्रीतिन च बान्धवा ।  
 न च विद्यागम कथित् त देग परिवर्जयेत् ॥ १३ ॥  
 मनसा चिन्तित कम वचसा न प्रकाशयेत् ।  
 अन्धन्चितकायस्य यत सिद्धिन जायते ॥ १४ ॥  
 ऋणशेषोऽग्निशपद्य व्याधिगोपस्तथैव च ।  
 पुनश्च वधते यस्मात् तस्माच्छप न कारयेत् ॥ १५ ॥  
 यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुव परिषेवते ।  
 ध्रुवाणि तस्य मश्यन्ति अध्रुव नष्टमेव तु ॥ १६ ॥  
 आपदा कथित पन्था इन्द्रियाणामसयम ।  
 तज्जय मपदा सागो येनेष्ट तेन गमरताम् ॥ १७ ॥  
 पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगत धनम् ।  
 कार्यकाले मसुत्पन्ने न सा विद्या न तद्वनम् ॥ १८ ॥  
 अनेकमशयोच्छेदि परोक्षाशस्य दर्शकम् ।  
 सवस्य नीचन शास्त्र यस्य नास्त्यन्य एव स ॥ १९ ॥  
 किं तस्य मानुपत्वेऽ बुद्धियस्य न निमन्ता ।  
 बुधरापि किं फल तस्य येन विद्या न सचिता ॥ २० ॥  
 यदि नित्यमतिव्येन निर्मल मलबाहिना ।  
 यश कायेन लभेत किं तु लभ्यमत परम् ॥ २१ ॥  
 दधि मधुर मधु मधुराद्राचा मधुरा मितापि मधुरैव ।  
 तस्य तदेव हि मधुर यस्य मनो यच्च मन्मन् ॥ २२ ॥

### १० । राजभक्ति ।

मीमाम्बकानिनेन्द्राणा विनाप्यत्वोयमस्य च ।

अष्टानां लोकपालाना वपुधारयते नृप ॥ १ ॥

इन्द्रात् प्रभुत्व तपनात् प्रताप

क्रोधं हराहं शयणाथ विस्रम् ।

आशाङ्कना च निराधिमादा

दादाय राज क्रान्तिं शरीरम् ॥ २ ॥

सुखद्वयमयो राजा मन्त्रा संप्रकीर्तितः ।

तस्मान्न ज्ञानव्यपदेशं व्यनीकृतं चक्षिणित् ॥ ३ ॥

सुखद्वयमयमार्गिषि विद्यया ज्ञानव्यपदेशम् ।

गुरुः शिष्यकर्म मत्स्या ज्ञानव्यपदेशमात्म ॥ ४ ॥

अपि अन्धमन्त्रा यो ज्ञानो यदापि भूभुजाम् ।

दृष्टानो च विनश्येत् स ह्येव तुमहात्मवि ॥ ५ ॥

अराजके हि लोकाः पिबन् मर्षतो विद्वेषे भयात् ।

रक्षायमममं सर्वमस्य राजानमस्यत् प्रभु ॥ ६ ॥

वार्त्तोऽपि तावमराज्यो मत्पुत्र इति भूमिषु ।

महती देवता कृपा नश्येत्पि तिष्ठति ॥ ७ ॥

एकमेव दृष्ट्वाग्निनरं दुःखमपि यत् ।

कुलं दृष्ट्वा राजान्नि मघशुद्धमघयम् ॥ ८ ॥

११ । अराजक राष्ट्रम् ।

( रामायण—अयोध्याकाण्ड—सर्ग ६० )

एतन्नाकणामिहादरय क्रयिद्रापा विधीयताम् ।

अराजकं हि नो राष्ट्रं दिनाश ममवाप्नुयात् ॥ १ ॥

नाराजके जनपदे धीजमृष्टिं प्रकाशयेत् ।

नाराजके पितुः पुत्रो भार्या या यतते यत्रे ॥ २ ॥

अराजके धनं नास्ति नाग्निं भार्याप्यराजके ।

इदमत्याश्रितं चायत् कुत सतमराजके ॥ ३ ॥

नाराजके जनपदे धामस्तं सुरक्षिता ।

शेरते विहृतद्वारा कृपिमोरघजीविन ॥ ४ ॥

नाराजके जनपदे बह्वघण्टा विषाणिन ।

अटन्नि राजमार्गेषु कुञ्जरा पट्टिहायना ॥ ५ ॥

नाराजके जनपदे घण्टी दूरगामिन ।  
 गच्छन्ति क्षेममध्वान बहुपथसमाचिता ॥ ६ ॥  
 यथा ह्यनुदका नद्यो यथा वाप्यलणं वनम् ।  
 अगोपाला यथा गावस्तथा राद्रमराजकम् ॥ ७ ॥  
 नाराजके जापदे स्वक भजति कस्यचित् ।  
 मत्स्या इव जना नितर भक्षयन्ति परस्परम् ॥ ८ ॥  
 राजा सततं च धर्मश्च राजा कुलवता कुलम् ।  
 राजा माता पिता चैव राजा हितकरी नृणाम् ॥ ९ ॥  
 यमो वैश्वण शक्रो वरुणश्च महाबल ।  
 विश्विपान्ते नरेन्द्रेण हृत्तेन महता तत ॥ १० ॥  
 अहो तम इवेद स्यान् प्रज्ञार्थित किञ्चन ।  
 राधा चेन्न भवेत्कीर्ति विभजन् साध्वसाधुनी ॥ ११ ॥

## १२ । पञ्चवटी ।

( रामायण—अरण्यकाण्ड—सर्ग १५ )

तत पञ्चवटी गत्वा नानाध्यानमृगायुताम् ।  
 उवाच लक्ष्मणं रामो भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥ १ ॥  
 आगता ध्व यद्योद्दिष्ट य दग्ग सुनिरप्रवीत् ।  
 अयं पञ्चवटीदेश सौम्य पुष्पितकानन ॥ २ ॥  
 सर्वतधार्यता दृष्टि कानने निपुणो ह्यसि ।  
 आश्रम कतरस्मिन्ने देगे भवति समत ॥ ३ ॥  
 रमते यत्र वैदेही त्वमत्र चैव लक्ष्मण ।  
 तादृशो दृश्यता देश सनिकृष्टजन्माशय ॥ ४ ॥  
 एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मण सद्यताञ्जलि ।  
 सीताममत्र काङ्क्षत्सामिद वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥



परवानग्निस काकुत्स्थस्य त्वयि पथेगत िरते ।  
 मय तु रुचिर देगे क्रियतामिति सां घद ॥ ६ ॥  
 भूर्मीतमोम पाथो न नम्रगव्य सहाद्युति ।  
 विरगन् रोधयामास देग सर्वगुणास्थितम् ॥ ७ ॥  
 स त रुचिरमाकस्य देगमाथमकमेणि ।  
 दस्त गृहीत्वा ण्मोम राम सौमविगप्रवीत् ॥ ८ ॥  
 पथ देग भम श्रीभाम् पुण्यितस्तुरुभिष्टुत ।  
 इहायमपदं रम्य यथावत् कर्तुमर्धेमि ॥ ९ ॥  
 इयमादितरसकागे पशै सुरभिगन्धिभि ।  
 चदुरे दृष्टते रम्या पद्मिभौ पद्मशोभिता ॥ १० ॥  
 यथाप्यातमगन्धेभि मुनिना भानिताकाना ।  
 इयं मोदावरी रम्या पुण्यितस्तुरुभिष्टुता ॥ ११ ॥  
 ण्मकारण्डवाक्रीणा दक्रवाकोपशाभिता ।  
 नातिदूर न चामथे मृगयुयनिर्पोडिता ॥ १२ ॥  
 मयरनादिता रम्या प्राशयो बहुकन्दरा ।  
 दृष्टन्ते गिरय सौम्या फुधैम्भरभिराहता ॥ १३ ॥  
 इदं पुण्यमिद रमामिदं बहुमृगद्विजम् ।  
 ण्म वत्स्याम सौमिते साधमेतेन पक्षिणा ॥ १४ ॥  
 एषमुक्तस्तु रामेण नक्ष्मण परवोरहा ।  
 अचिरेणाथम भ्रातृशकार सुमहाबल ॥ १५ ॥

### १३ । श्रीनिवासस्थानानि ।

( महाभारत—अनुगामनपर्व—३२ अध्याय )

युधिष्ठिर उवाच ।

क्रीडणे पुरुषे तात स्त्रीषु वा भरतपथ ।

श्री पद्मा वसते पितर तयो ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

भीष्म उवाच ।

अत्र ते वर्णयिष्यामि यथावृत्तं यथान्युतम् ।

रुक्मिणो देवकीपुत्रमन्निधीं पर्यगृच्छत ॥ २ ॥

नारायणस्याङ्गता ज्वलन्तीं दृष्ट्वा श्रियं पद्मममानयन्ताम् ।

कौतूहलाद्द्विस्मितचारुनेत्रा पप्रच्छ माता मकरध्वजस्य ॥ ३ ॥

कानोह भृगान्युपसेवसे त्वं मतिष्ठसे कानि च सेवसे त्वम् ।

तानि त्रिलोकेश्वरभृतकान्ते तत्त्वेन मे ब्रूहि महर्षिकन्ये ॥ ४ ॥

एष तदा श्रीरभिभाष्यमाणा देव्या ममत्तं गरुडध्वजस्य ।

उवाच वाक्यं मधुराभिधानं मतीहरं चन्द्रमुखी प्रसजा ॥ ५ ॥

श्रीरुवाच ।

वसामि नित्यं सुभगे प्रगभे दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने ।

अक्रोधने देवपरे कृतघ्ने जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्त्वे ॥ ६ ॥

नाकमशीले पुरुषे वसामि न नास्तिके साकारिके कृतघ्ने ।

न भिन्नहृत्ते न नृगसहृत्ते न चाविनीते न गुरुष्वसृयके ॥ ७ ॥

य चाल्पतेजोबलमत्त्वमाना क्लिश्यन्ति कुप्यन्ति च यत्र तत्र ।

न चैव तिष्ठामि तथाविधेषु तरेषु सगुप्तमनीरयेषु ॥ ८ ॥

स्वधर्मशीलेषु च धर्मवित्सु ब्रह्मोपसेवानिरते च दान्ते ।

कृतात्मनि दान्तिपरे ममर्थे दान्तासु दान्तासु तथाबलासु ॥ ९ ॥

स्वाध्यायनितेषु सदा द्विजेषु क्षत्रे च धर्माभिरते सदैव ।

वैश्ये च क्षत्र्याभिरते वसामि शूद्रे च शूत्रं पणनित्ययुक्ते ॥ १० ॥

१४ । दम्पतीस्त्रीह ।

( महाभारत—शान्तिपर्व—अध्याय १४४ )

भीष्म उवाच ।

अथ वृक्षस्य शाखाया विहङ्गं ससुहृज्जन ।

दौर्घकालोपितो राजंस्तत्र चित्रतनुरुह ॥ १ ॥

तस्य कल्पयता भाया धर्मितु ताभ्यवतत ।  
 प्राप्तां च रजनीं हृष्टा म धनो पयतप्यत ॥ २ ॥  
 यातपय सद्विद्याया चाम्भुशि मे प्रिया ।  
 जिं नू तन्कारणं यत्र मायापि न निवर्तते ॥ ३ ॥  
 अपि चास्ति भवेत्तस्या प्रियाया मम कान्ति ।  
 तथा विरहितं हीं गुण्णमाद्य गच्छ मम ॥ ४ ॥  
 पुत्रपावपुभूतौ राकीणमपि मजत ।  
 भार्याहीनं गृह्णन्मय शून्यमय गच्छ भवेत् ॥ ५ ॥  
 न गच्छ गृह्णन्मियाद्गृह्णन्मिया गच्छमृच्छते ।  
 गच्छ तु गृह्णन्मियाद्गृह्णन्मिया गच्छमृच्छते ॥ ६ ॥  
 यदि सा रजनीयान्ता निवादा मधुरम्बरा ।  
 पथ्य माभ्येति मे कान्ता न काय जायितेन म ॥ ७ ॥  
 न भुङ्क्ते मद्यभुक्ते या ताव्याते च्याति सुप्रता ।  
 नातिठतुमपतिन त गेत्त च गयिते मयि ॥ ८ ॥  
 हृष्टे भवति सा हृष्टा दू पित मयि दु प्रिता ।  
 प्रीयिते दीनवत्ता क्रुते च प्रियजादिनी ॥ ९ ॥  
 पतिधमव्रता मार्घ्यां प्राणैभ्योऽपि गर्हीयसौ ।  
 यस्य स्यात्तादृगा भाया धन्य म पुरुषो भुवि ॥ १० ॥  
 सा हि स्यान्त सुधात प जानीते सां तर्पास्विनी ।  
 अनुरग्ता स्थिरा चैव भक्ता स्त्रियथा यशस्विनी ॥ ११ ॥  
 हृष्टमूनेऽपि दयिता यस्य तिष्ठति तद् गृहम् ।  
 प्रासादोऽपि तथा हीन कान्तार इति निश्चितम् ॥ १२ ॥  
 धर्मार्थकामकान्तेषु भाया पु स सहायिनी ।  
 विदेशगमने चास्य नव निरासकारिका ॥ १३ ॥  
 भाया हि परसो ह्यर्थं पुरुषस्येह पश्यते ।  
 असहायस्य भोकेऽस्मिन्नोकयात्रासहायिनी ॥ १४ ॥

तथा रोगाभिभूतस्य नित्यं कृच्छ्रगतस्य च ।  
 नास्ति भार्यासमं मित्रं नरस्यातस्य भेषजम् ॥ १५ ॥  
 नास्ति भार्यासमो बन्धुर्नास्ति भायासमा गति ।  
 नास्ति भार्यासमो लोके महायो धर्मसयज्ञे ॥ १६ ॥  
 यत्र भाया गृहे नास्ति साध्वी च प्रियवादिनी ।  
 अरथ्यं तत्र गन्तव्यं यद्यारण्यं तथा गृहम् ॥ १७ ॥

भीष्म उवाच ।

एव विलपतस्तस्य द्विजस्यार्तस्य वै सदा ।  
 गृहीता शकुनिघ्नेन भार्या श्रुत्वाव भारतीम् ॥ १८ ॥

कपोल्युवाच ।

अहोऽतीव सुभाग्याह यस्या मे दयितं पति ।  
 अमती वा सती वापि गुणातिव प्रभापते ॥ १९ ॥  
 सा हि स्त्रीत्ववगन्तव्या यस्या भर्ता तु तुष्यति ।  
 तुष्टे भर्तरि नारीणां तुष्टा भ्यु सर्वदेवता ।  
 अग्निसाक्षिकमप्येतन् भर्ता हि देवत परम् ॥ २० ॥  
 दाषाग्निनेव निर्दग्धा सपुष्परत्नवक्त्रा लता ।  
 भष्मीभवति सा नारी यस्या भर्ता न तुष्यति ॥ २१ ॥

१५ । सयमः ।

( महाभारत—शान्तिपर्व—अध्याय ३११ )

भीष्म उवाच ।

न हायनेर्न पलितेर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः ।  
 श्रेष्ठपथैश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचात् स नो महान् ॥ १ ॥  
 तपोमूलमिदं सूर्यं यस्मात्पृच्छसि पाण्डव ।  
 तदिन्द्रियाणि संयम्य तपो भवति नाश्रया ॥ २ ॥

१८ । आत्मज्ञानम्—कर्त्तव्यज्ञानम् ।

( महाभारत—शान्तिपर्व—अध्याय ३२८ )

के तं धनेन किं बन्धुभिस्ते किं ते पुत्रे पुत्रक यो मरिष्यसि ।  
 आत्मानमविच्छेत् गुहा प्रविष्ट पितामहास्ते क्व गताय सवे ॥ १ ॥  
 श्व कायमद्य क्षुधीत पुर्वो ह्ये चापरान्निकम् ।  
 न हि प्रतीक्षते मृतुर क्तत वास्य न वा क्ततम् ॥ २ ॥  
 अनुगम्य विनाशान्ते निवतन्ती हि वाम्भया ।  
 अग्नीं प्रक्षिप्य पुरुषं ज्ञातय सुहृदस्तथा ॥ ३ ॥  
 एवमभ्याहते लोके काले गोपनिपीडिते ।  
 सुमहद् धेयमानस्वयं धम मवात्मना कुरु ॥ ४ ॥  
 अथेम दशनोपाय समग्र्यो वेत्ति मानव ।  
 ममाक् स्वधम कृत्विह परत्र सुखमश्रुते ॥ ५ ॥  
 न देहभेदे मरण विजानतां न च प्रणाशं मनुपालिते पथि ।  
 धमं हि यो वर्धयते स पण्डितो य एव धर्माश्चावते स दृश्यते ॥ ६ ॥  
 यस्तु भोगान् परित्यज्य शरीरेण तपसरेत् ।  
 न तेन किञ्चिद् प्राप्तं तन्मे बहुमत फलम् ॥ ७ ॥  
 मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।  
 अनागतान्यतीतानि कस्य ते कस्य वा वयम् ॥ ८ ॥  
 अहमेकी न मे कश्चिदाहमन्यस्य कस्यचित् ।  
 न तं पश्यामि यस्याह तं न पश्यामि यो मम ॥ ९ ॥  
 न तेषां भवता कायं न कायं तव तेरपि ।  
 स्वकृतेस्तानि जातानि भवाथैव गमिष्यति ॥ १० ॥  
 इह लोके हि धनिना परोऽपि स्वजनायते ।  
 भ्रजनस्तु दरिद्राणां जीवतामपि नश्यति ॥ ११ ॥  
 सचिनोत्तराशुभं काम कलत्रादेक्षया नर ।  
 ततः क्लेशमवाप्नोति परत्रेह तद्येव च ॥ १२ ॥

पश्यति चिह्नभूतं हि जीवलोकं स्वकामणा ।  
 तत् कुशञ्च तथा पुत्रं हतुं यत् समुदाहृतम् ॥ १३ ॥  
 तदेतत् सप्रहृष्यैव कामभूमिं प्रपश्यत ।  
 शुभान्याचरितव्यानि परलोकमभोषता ॥ १४ ॥  
 धीनं किं यन्न ददाति नाश्रुते  
 बलेन किं येन रिपुं न बाधते ।  
 श्रुतेन किं येन न धममाचरेत्  
 किमात्मना यो न जितेन्द्रियो वशो ॥ १५ ॥

१६ । अजविलापः ।

विशलापं स बाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम् ।  
 अभितापमयोऽपि मादव भजते कौव कथां शरीरिणु ॥ १ ॥  
 कुसुमान्यपि गात्रसगमात् प्रभवन्तः प्रायुर्गपोहितुं यदि ।  
 न भविष्यति हन्त साधनं किमिन्नान्यत् प्रहरिष्यतो विधे ॥ २ ॥  
 अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तक ।  
 हिंससेकविपत्तिरत्र मे रक्षिनी पृथग्निदर्शनं भता ॥ ३ ॥  
 अगिद्यं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।  
 विषमप्यन्तं काचिद् भवेदमृतं वा विषमोश्चरेच्छया ॥ ४ ॥  
 अथवा मम भाग्यविप्लवाद्गतिं क्वचित् एष विधसा ।  
 यदनेन तरुणं पातितं क्षपिता तद्विदुषाश्रिता लता ॥ ५ ॥  
 मनसापि न विप्रियं मया कृतपूर्वं तथ किं जहामि माम् ।  
 ननु शब्दपतिं चितेरहं त्वयि मे भाग्यनिबन्धना रति ॥ ६ ॥  
 अग्निं पुनरिति शयरो दयिता हृन्धचरं पतविणम् ।  
 इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमतान्तगता न मा दहे ॥ ७ ॥  
 वनपक्षवधस्तरेऽपि ते मृदु दूयितं यदङ्गमपितम् ।  
 तदिदं विषद्विषयते कथं घटं वामीरु चिताधिरोहणम् ॥ ८ ॥

कलमन्यभृतासु भाषित कलहसोपु मदानस गतम् ।  
 एपतीपु विशोममीक्षित पञ्चाधृतभृतासु विश्वमा ॥ ८ ॥  
 त्रिदिवोऽनुकयाध्येष्य मां निदिता मत्प्रममो गुणाभ्यया ।  
 विरष्टे तव म गुरुपथं हृत्य न त्वत्नमितु घमा ॥ १० ॥  
 धृतिरन्तमिता रतियुता विरते गयमृनिद्वय ।  
 गतमाभरणप्रयोजन परिगृह्य शयनोयमद्य मे ॥ ११ ॥  
 गृहिणी भविष्य मयी मिथ प्रियागियरा ललिते कलाविधौ ।  
 करुणाविसुप्तेन मृत्युना ह्यरता त्वां यद कि न भ हृतम् ॥ १२ ॥

२० । प्रकौणानि मुभाषितपद्यानि ।

येषां ऽ विद्या न तपो न ज्ञान  
 ज्ञान न शीलं न गुणो ऽ धर्म ।  
 ते मर्त्य लोके भुवि भारभृता  
 मनुष्यरूपेण मृगायरन्ति ॥ १ ॥  
 यस्याग्निं वित्तं स नर कुलीन ।  
 स धण्डित स श्रुतिमान् गुणध्र ।  
 स एव वता स च दर्शनोय  
 मये गुणा काञ्चनमाश्रयन्ते ॥ २ ॥  
 धनैर्निष्कुलीना कुलीना भवन्ति  
 धनैरापद मानवा निस्तरन्ति ।  
 धनेभ्य परो बान्धवो नास्ति लोके  
 धनान्यर्जयध्व धनान्यर्जयध्वम् ॥ ३ ॥  
 वर धन व्याघ्रगजेन्द्रसेवित  
 द्रुमानय पत्रफलाभुभोजनम् ।  
 लक्ष्णानि शयरा वसन च वल्कल  
 न बन्धुमधेय धगङ्गीजीवनम् ॥ ४ ॥

तानीन्द्रियाणि सक्रान्तिनि तदेव कर्म  
 सा बुद्धिरप्रतिष्ठता वचन तदेव ।  
 अयोपणा विरहित पुरप स एव  
 अन्य क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥ ५ ॥  
 निन्दन्तु नोतिनिपुणा यदि वा स्तुयन्तु  
 लक्ष्मो समाविगतु गच्छतु वा यद्येष्टम् ।  
 अद्वैत वा मरणमस्तु युगान्तरे वा  
 न्याय्यात् पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा ॥ ६ ॥  
 दानाय लक्ष्मी सुकृताय विद्या  
 चिन्ता परब्रह्मविचारयाय ।  
 परोपकाराय वचांसि यमत्र  
 बन्धुस्त्रिभोकीतिलक स एव ॥ ७ ॥  
 तापं हन्ति सुखं सूते जीवयत्युज्ज्वल यश ।  
 अमृतस्य प्रकारोऽयं दुर्गम साधुसगम ॥ ८ ॥  
 रमायणमयो शीता परमाद्ददायिनी ।  
 नानन्दयति क नाम साधुसङ्गतिचन्द्रिका ॥ ९ ॥  
 य स्नात शीतमितया साधुसगतिगङ्गाया ।  
 किं तत्र दानै किं तीर्थे किं तपोभि किमध्वरै ॥ १० ॥  
 पात्रं पवित्रयति नैव गुणान् क्षिणोति  
 खेदं न भङ्गरति नापि मन्त्रं प्रसूते ।  
 दीपावसानरुचिरसन्तता न धत्ते  
 सत्सगम सुकृतसङ्गनि कोऽपि दीप ॥ ११ ॥  
 उपकृतं प्रियं वक्तुं कतुं खेदमकृत्रिमम् ।  
 सज्जनानो म्प्रभायोऽयं केनेन्दु गिशिरीकृत ॥ १२ ॥  
 प्रथमवयसि पीत तौदमन्थ स्मरन्त  
 शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम् ।



उदकममृतकल्पं ते ददुर्जीवितान्त

न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥ १३ ॥

उदयति यदि भानुं पश्चिमे दिग्धिभागे

विकसति यदि पद्मं पथतानां शिखाये ।

प्रचलति यदि मेघं शीततां याति वङ्गि—

न चलति खलु वाक्यं सज्जनानां कदाचित् ॥ १४ ॥

परीक्षका यत्र न मन्ति देशे

नाघ्नन्ति रत्नानि समुद्रजानि

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकाश

स तं मदा निन्दति नात्र चित्रम् ॥ १५ ॥

अतिपरिचयादवज्ञा मन्ततगमपादनादरो भवति ।

मलयं भिन्नपुरम्भू चन्दनतरुकाष्ठमिन्धनं कुसुते ॥ १६ ॥

गच्छत रक्षन्त क्वापि भवत्येव प्रमादत ।

हसन्ति दर्जनास्त्रात् समादधति परिण्डता ॥ १७ ॥

विनयेन विना का शी का निशा शशिना विना ।

रक्षिता सत्कवित्वेन कोदृशी वाग्निदग्धता ॥ १८ ॥

गुरुपदेशादधेयं शास्त्रं जडविद्योऽप्यनम् ।

काव्यं तु जायते जातु कस्यचित् प्रतिभावात् ॥ १९ ॥

नाकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा ।

कुक्कवित्त्वं पुन साक्षात्कृतिमाहूर्मनीषिण ॥ २० ॥

काव्यान्वपि यदीमानि<sup>१</sup> व्याग्यागम्यानि शास्त्रवत् ।

उत्सव सुधियामिव हन्त दुर्मेधसो हता ॥ २१ ॥

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं

विद्या भोगकरी यत्र सुखकरी विद्या गुरुणा गुरु ।

विद्या बधुजनो विदेशगमने विद्या पर दैवत  
 विद्या राजसु प्रजिता न तु धन विद्याविहीन पशु ॥ २२ ॥  
 केयूरा न विभूषयन्ति पुरुष हारा न चन्द्रोज्वला  
 न स्रान न विनेपन न कुसुम नालङ्कता मूर्धजा ।  
 वाख्येका समलकरोति पुरुष या सस्कृता धार्यते  
 क्षीयन्ते खलु भूषणानि सतत वाग्भूषण भूषणम् ॥ २३ ॥  
 साहित्यसगीतकलाविहीन  
 साक्षात् पशु पुच्छविषाणहीन ।  
 दृण न खादन्नपि जीवमान—  
 स्तद भागधेय परम पशुनाम् ॥ २४ ॥  
 इतरतापशतानि यथेच्छया  
 वितर तानि सहे चतुरानन ।  
 अरसिकेषु रमाभिनयेदन  
 शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख ॥ २५ ॥  
 अस्या भस्त्रे बधिरलोकनियामभूमो  
 कि कृजितेन स्रु फोकिल कोमलेन ।  
 एते हि हिवहतकास्तदभिन्नवण  
 त्वां काक्षतेव कलयति कलानभिज्ञा ॥ २६ ॥  
 मयदि जिनयमेतु राज्य नक्ष्त्री—  
 रूपरि पतन्वद्यथा क्षपाणधारा ।  
 अपहरतुतर्ग शिर क्षतान्तो  
 मम तु मनो न मतागपैतु धमात् ॥ २७ ॥  
 भवन्ति नस्वास्तरव फलोद्गमे  
 नैराशुभिर्भूरिषिनस्त्रिनी घणा ।  
 गनुदता सत्पुरुषा सस्तदिति  
 सभाव एवै प पनीपकारिणाम् ॥ २८ ॥

आरभ्यगुर्वी क्षयिणी क्रमम्

लघो पुरा हृदिमती च पातात् ।

दिनस्य ध्रुवाधपमार्धभिजा

ह्यथैव नवी खलसञ्जनानाम् ॥ २८ ॥

पापान्निवारयति योजयते हिताय

गुह्यं च गृह्णति गुणान् प्रकटोक्तरोति ।

आपहतं च ऽ जहाति ददाति कास्त्रे

सन्निवृत्तचणमिदं प्रवदान्त तज्जा ॥ २९ ॥

दृशां क्षिप्रि भज क्षमा जहि मद पापे रति मा कृथा

सत्यं ब्रूह्यजुयाहि माधुपदयोः सैत्रस्व विद्वज्जानान् ।

सान्यान् सान्धय विद्विपाऽप्युत्थय प्रच्छादय स्वान् गुणान्

कीर्तिं पालय ऽ रिते क्षुर दयामेतात् सता लक्षणम् ॥ ३१ ॥

लोभघेदानेन किं पिशुनता यद्यस्ति हि पातयै

सत्यं चेत् तपसा च न्ति गुणि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।

सोजय यदि जि निनी शुभद्विजा यद्यस्ति किं सत्तु नै

सद्विद्या यदि किं धरेरप्यशो यद्यस्ति हि सृत्तुना ॥ ३२ ॥

वाञ्छा मज्जामगमे परगुणे प्रीतिगुरो नम्रता

विद्याया व्यषा स्यादौपिति रतिर्लोकापनादाश्रयम् ।

भक्तिं शूलिनि शक्तिरात्तदमने ससगमुनि खली—

ध्वंते येषु यसन्ति तिमलगुणान्तेभ्यो नरभ्यो नम ॥ ३३ ॥

प्रिया न्याय्या हृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यमुकर—

ममन्तो नाभ्यर्था सुहृदपि न याच्ये क्षणधन ।

विपद्युञ्जे स्वयं पदमनुविधेयं च भद्रता

सता केनोद्दिष्ट विपगमसिधाराव्रतमिदम् ॥ ३४ ॥

प्रदानं प्रच्छेन्नं शृङ्गसुपगते सन्नमपि वि

प्रियं कृत्वा मौनं नदसि याद्यनं चाप्युपकृते ।

अनुत्मेको लक्ष्म्या निरभिभवसारा परकया  
 सता केनोद्दिष्ट विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥ ३५ ॥  
 यावत् स्रस्वमिदं कलेवरगृह यावच्च दूरे जरा  
 यावचेन्द्रियशक्तिरप्रतिष्ठता यावत् ज्यो नायुष ।  
 आत्मश्रेयसि तावदेव पुरुषै कार्यं प्रयत्नो महान्  
 प्रोद्दीप्तो भवति तु कृपस्वनन प्रतुरद्यम कीदृश ॥ ३६ ॥  
 गात्रं सकुचितं गतिविगमिता भ्रष्टा च दन्तावलि  
 दृष्टिनश्यति वर्धते वधिरता वक्त्रं च लालायते ।  
 वाक्च नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शत्रूपते  
 हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णपयसं पुत्रोऽप्यभित्वायते ॥ ३७ ॥  
 चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूला  
 सद्वान्धवा प्रणयगर्भगिरय भृतया ।  
 धन्यति दन्तिनिवहास्तूरलास्तुरङ्गा  
 ममीलने नयनयोर्न हि किंचिदस्ति ॥ ३८ ॥  
 भ्रूटिति प्रविश गेहं मा यच्चिस्तिष्ठ कान्ते  
 गृहणसमयवेला वर्तते शोतरश्मे ।  
 अयि सुविमलवान्ति प्रेक्ष्य नूनं स राहु-  
 र्यसति तत्र मुखेन्दु पूर्णचन्द्र विहाय ॥ ३९ ॥  
 पुरा कथीना गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठकाधिष्ठितकालिदासा ।  
 अद्यापि तत्सुन्दरकवेरभावादनानामिका मार्यतरा बभूव ॥ ४० ॥  
 काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्यं शकुन्तला ।  
 तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम् ॥ ४१ ॥  
 याम्यतएव शकुन्तलेति हृदयं ससृष्टमुत्कण्ठया  
 कए स्तश्चित्तत्राप्यवृत्तिकलुपयिन्ताजड दर्शनम् ।  
 वक्तव्यं मम तावदौद्दिगमपि स्नेहादरख्यौकस  
 पीडन्ते गृह्णिणं यय १ तनयाविद्येपद्दु खैर्नवै ॥ ४२ ॥

गृयुष्य गुरुन् कुरु प्रियमर्षाहसि मपद्मोजने  
 भर्तुषिप्रकृतापि रोषणतया मा म् प्रतीपं मम ।  
 भूयिष्ठ भय दक्षिणा परिजनं भाग्येध्वनत्मेकिनी  
 यास्त्वेषं गृह्णिणीपदं युवतयो वामा कुम्भसाधय ॥ ४३ ॥  
 पातु न प्रयम व्यवस्रति जनं गुप्तास्त्वपीतेषु या  
 नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां खे ह्येन या पत्नवम् ।  
 आये व कुसुमप्रवृत्तिममये यस्या भवतुःशय  
 सेय याति गकुम्भना पतिगृहे सधरनुज्ञायताम् ॥ ४४ ॥  
 अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरिय वनवासवन्धुभि ।  
 परभृतदिरुत वानं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ॥ ४५ ॥  
 अभिजनवतो भर्तुं स्नाप्ये स्थिता गृह्णिणीपदे  
 विभवंगुरुभि ह्यतैरमर प्रतिक्षणमाकुला ।  
 तनयमचिरात् प्राचीवाक प्रभुय च पावन  
 मम विरहजां न त्व यत्ने शुच गगयिष्यसि ॥ ४६ ॥  
 अथो हि कन्या परकीय पय  
 तामद्य मप्रेष्य परिपहीतु ।  
 जातो मयाय विगद प्रकाम  
 प्रतरपितन्याम इवान्तरात्मा ॥ ४७ ॥  
 विरन्विरन्ता ध्वन्नास्तारा ध्वन्तायिव सञ्जता  
 मन इव मुने सर्वत्रैव प्रमदमभूवम ।  
 व्यपसरति च ध्वान्त चित्तात् मतामिव दुजन  
 व्रजति च निशा चिद्र लक्ष्मीर्निरुदमनादिय ॥ ४८ ॥  
 अभूत् पिङ्गा प्राची रमपतिरिव प्राश्य काकं  
 गतच्छाययन्ती बुधजन इव याम्यसदसि ।  
 अशात् श्रीणास्तारा नृपतय इवानुदमपरा  
 न दीपा राजन्ते विायरहितानामिव गुणा ॥ ४९ ॥

ज्ञानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि  
 सतर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि ।  
 एतानि ते सुवचनानि मरोरुद्वाञ्छि  
 कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ॥ ५० ॥  
 दीपाकरोऽपि कुटिलोऽपि कलद्वितोऽपि  
 मित्रावमानसमये विद्वितोदयोऽपि ।  
 चन्द्रस्तथापि हरवन्नभतासुपैति  
 नैवाश्रितेषु गुणदोषविचारणा सयात् ॥ ५१ ॥  
 नन्वात्मानं बहु विगणयनात्मनैवावलम्ब्ये  
 तत् कल्याणि त्वमपि सुतरा मा गम कातरत्वम् ।  
 कसयातयन्त सुखमुपनत दुःखमेकान्ततो वा  
 नीचैर्गच्छतुरपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ ५२ ॥  
 श्यामास्त्रङ्ग चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपात  
 वक्त्रच्छाया शशिनि शिखिना बहु भारेषु केशान् ।  
 उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविनासान्  
 हर्तुं कस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि मादृश्यमस्ति ॥ ५३ ॥  
 घृष्ट घृष्ट पुनरपि पुनश्चन्दन चारुगन्ध  
 छिन्न छिन्न पुनरपि पुन स्वादु चैवेत्तुकाण्डम् ।  
 दग्ध दग्ध पुनरपि पुन काञ्चन कान्तवण  
 न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम् ॥ ५४ ॥  
 घटो जन्मस्थान मृगपरिजनो भूर्जवसन  
 वने वास कन्दैरशनमपि दुःस्य वपुरिदम् ।  
 अगस्त्य पाथीधि यदक्षत कराभोजकुहरे  
 क्रियासिद्धि सत्त्वे भवति महता नोपकरणे ॥ ५५ ॥  
 दूरादर्थं घटयति नव दरतद्यापशब्द  
 त्ववत्वा भूयो भवति निरत सत्समारङ्गनेषु ।

मन्द मन्द रचयति पद लीकचित्तानुसूत्रा

काम मन्त्री कविरिव सदा खेदभारैरसुह ॥ ५६ ॥

उत्तिष्ठ क्षणमेवामुद्दह गुरु दारिद्र्यभार सप्ते

यान्तस्तावदह चिर मरणज सेवे त्वदीय सुखम् ।

इतरक्तो धनवर्जितो सहसा गत्वा श्मशाने शयो

दारिद्र्याभरण वर वरमिति ज्ञात्वैव तृणी म्वित ॥ ५७ ॥

क्षण बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरमिक

क्षण वित्तैर्हीन क्षणमपि च संपूण विभय ।

जराजीर्ण रङ्ग नट इव वनोमण्डिततनु—

नर ससारान्ते विगति यमधानीजयनिकाम् ॥ ५८ ॥

यत्र नास्ति दधिमन्यनघोपो यत्र नो लघुलघूनि शिगूनि ।

यत्र नास्ति गुरुगौरवपूजा तानि कि वत गृहाणि यनानि ॥ ५९ ॥

राम —सौमित्रे ननु सेव्यतां तरुतल चण्डांगुरुज्जुम्भते

लक्षण —चण्डाशोर्निशि का कथा रघुपते चन्द्रोऽयमुन्मीलति ।

राम — वत्मेतद्विदित कथ नु भवता

लक्षण —

धत्ते कुरङ्ग यत

राम —कासि प्रेयसि हा कुरङ्गनयने चन्द्रानने जानकि ॥ ६० ॥

हिमाशुष्यगडाशुर्नवजलधरो दावदहन

सरिहीचीवात क्लृपितफणिनिष्वासपवन ।

नया मल्ली भलो कुवलयवन कुन्तागहनं

मम त्वद्विशेषात् समुखि विपरीत जगदिदम् ॥ ६१ ॥

कस्याध्याय व्यतिकरमिम मुक्तदु खो भवेय

को जानोते निभृतसुभयोरावयो श्रे हसारम् ।

जानात्येक शशधरसुम्भि प्रेमतत्त्व मतो मे

त्वामिवैतच्चिरमनुगत तत् प्रिये कि करोगि ॥ ६२ ॥

षाहारी मग्मरग्रभ्ता प्रभय मयद्रूपिता ।  
 षषोषीपहताग्रान्धे जाणमङ्गे सुभाषितम् ॥ ६३ ॥  
 एहागच्छ समाश्रयामनसिद कग्माशिराद् हृग्रसे  
 का यती अतिदुवकीऽमि कुगर्भं प्रीतोऽग्निं ते दग्नात् ।  
 एष धे ममुशगतान् प्रणयिन प्रह्लादयन्तशदरात्  
 तेषो यत्कमगाङ्गितेन मनमा हृर्म्याणि गन्तु सदा ॥ ६४ ॥  
 गा गा इतापमङ्गल प्रप्र पुन स्त्रेह्येन हीन वच  
 तिष्ठति प्रभुता यथारुचि कुरु ह्योपापुदाभीनता ।  
 नां जोषामि त्वया विनेति यचनं मंभाव्यते या न वा  
 तन्मा शिचय मित्र यत् ममुचितं वाषथ त्वयि प्रम्विते ॥ ६५ ॥  
 मा भूत् मञ्जनमङ्गो यदि मङ्गो मा पुन स्त्रेह ।  
 स्त्रेहो यदि मा विरहो यदि विरहो मा पुनय जीवित्वम् ॥ ६६ ॥  
 यानि नाथ यिमुञ्च मानिनि रूपं रोषान्मया किं हृत  
 श्वेदोऽग्नासु न मेऽपराध्यति भवान् सर्वेऽपराधा मयि ।  
 तत्किं रीटिपि गद्गदेन यचमा फम्याप्रतो रुद्यते  
 मर्येतन्मम का तथाग्निं दयिता नाग्नीतरतो रुद्यते ॥ ६७ ॥  
 षष्या क्षुप्यति तात भूधि विष्टता गङ्गेयमृष्टज्यतां  
 विह्वन् पण्मुत्र मततं मयि रता तसरा गति का वद ।  
 कोपाटोपवशाद्द्विहृदवदन प्रतुरत्तर दत्तवान्  
 षषोधिजलधि पयोधिरुदधिवारांनिधिर्वारिधि ॥ ६८ ॥  
 साहादग्निर्जायते मय्यमानाद्भूमिस्तोर्यं खन्यमाना ददाति ।  
 मोत्साहानो नास्तरसाध्य नराणां मार्गारथ्या सर्वयत्रा फलन्ति ॥ ६९ ॥  
 गुणानां वा विमानाता मत्काराणा च नित्यग ।  
 कर्तार सुखभा लोके विज्ञातारन्तु दुर्लभा ॥ ७० ॥  
 यसरा न प्रियमण्डनापि महिषी देवसरा मन्दोदरी  
 स्त्रेहासु स्पति पप्रवान् न च पुत्रवीजन्ति यसरां भयात् ।



योजन्तो मनयानिला अपि करैरभ्युष्टवान्दुमा  
 मेघं शक्ररिपोरशोकवनिका भङ्गति विभाष्यताम् ॥ ७१ ॥  
 ई ई चातक सावधानमनमा मित्र क्षण श्रुयता—  
 मन्मोदा बहवो हि सन्ति गगने सवेऽपि नैतादृशा ।  
 केचिद्दृष्टिभिराद्र यन्ति धरणी गजम्नि केचिद्दृष्ट्या  
 य य पश्यसि तमा तमा पुरतो मा ब्रूहि दीर्घ वच ॥ ७२ ॥  
 यदृक्क मुहुरोक्षसे न धनिनां ब्रूषे न चाटून् मृषा  
 नैषां गर्वगिर शृणोपि न पुन प्रत्याशया धावसि ।  
 कान्ते बालदृशानि खादसि सुख निद्रासि निद्रागमे  
 तस्मै ब्रूहि कुरङ्ग कुच भवता फि नाम तप्त तप ॥ ७३ ॥  
 नाय ते ममयो रङ्गममधुना निद्राति नाथो यदि  
 स्थित्वा द्रव्यति कुप्यति प्रभुरिति हारिषु येषां वच ।  
 चेतस्तापहाय याहि भवन देवमा विखेगितु—  
 निर्द्वारिकनिद्रयोत्तयपरुष नि सौमगमप्रदम ॥ ७४ ॥  
 श नो मित्र श वरुण श नो भवत्वयमा ।  
 श न इन्द्रो दृष्टसति श नो विष्णुरुक्तम ॥ ७५ ॥

### २१ । स्तुतिपद्यानि ।

करवटरमदृशमखिल भुङ्गतन यत्प्रमादत कवय ।  
 पश्यन्ति सूत्रमतप सा जयति सरस्वती देवी ॥ १ ॥  
 नामन्नेषा जयस्तेषा कुतस्तेषां पराजय ।  
 हृदयस्यो जनादिन ॥ २ ॥

शान्त पद्मानसस्य शशधरमुकुट पञ्चवक्त्र त्रिनेत्र  
 शूल वज्र च खड्ग परशुमपि वर दक्षिणाङ्गे वहन्तम् ।  
 नाग पाश च घण्टा डमरुकसहित चाङ्गुश वामभागे  
 नानालकारदौम स्फटिकमणिनिभ पावतीश भजामि ॥ ४ ॥  
 रत्नै कल्पितमासन हिमजलै स्नान च दिव्याम्बर  
 नानारत्नविभूषित मृगमदामीदाङ्कित चन्दनम् ।  
 जातीचम्पकबिल्वपत्ररचित पुष्प च धूप तथा  
 दोष देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पित गृह्यताम् ॥ ५ ॥  
 अमितगिरिसम भयात्कञ्जल मिन्धुपात्रे  
 सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।  
 लिखति यदि गृह्णीत्वा शारदा सर्वकाल  
 तदपि तव गुणानामीश पार न याति ॥ ६ ॥  
 महेश्वरं वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि ।  
 तयोर्न भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे तथापि भक्तिस्वरूपेन्दुशेखरे ॥ ७ ॥  
 य ब्रह्मा धरुणन्द्ररुद्रमरुत स्तुन्वन्ति दिव्यै स्तुतै—  
 वेदै साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगा ।  
 ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति य योगिनो  
 यम्यान्तु न विदु सुरासुरगणा देवाय तस्मै नम ॥ ८ ॥  
 रामो राजमणि सदा विजयते राम रमेश भजे  
 रामेणाभिहता निशाचरज्वमू रामाय तस्मै नम ।  
 रामाश्रान्ति परायण परतर रामस्य दासोऽस्मिह  
 रामे चित्तलय सदा भवतु मे भौ राम मामुद्धर ॥ ९ ॥  
 इतो न किञ्चित् परतो न किञ्चिद्  
 यतो यतो यामि ततो न किञ्चित् ।  
 विचाय पश्यामि जगन्न किञ्चित्  
 स्वात्मावबोधादधिक न किञ्चित् ॥ १० ॥



## उद्धृत गद्यपद्योपर टिप्पणी ।

१ ।—वन वृषे ( वृषेण = ख्यात )—वनमूमिमें । घटकम्पती—  
 ( घटक — एक पद्यी + सम्पती, इन्द्र ४०, जाया च पतिश्च जायापती जम्पती  
 सम्पती वा )—घटक पतिर्घोषा जौटा । मिनय — ख्यात । गच्छता कालेन—  
 समयके वीतनेपर । घमात ( घर्मेण प्रात, घ्रात = आ + श्रुत, श्रु का  
 भत कृन्त आ + श्रु = श्रात् ६७ पृष्ठमें टिप्पणी देखो )—गर्मीसे पीड़ित ।  
 मन्त्रेन्द्रर्षात् ( उत्कृष्ट = आधिक्यम् आधिकता )—गर्वकी अधिकतासे ।  
 पुष्करम् मृड । विशीलाणि ( वि + ष्टु—ज्ञादि पर का भूतकृदन्त )—टोढ़े ।  
 आयु शेषतया = आयु शेषों यथास्ता आयु शेषों तयोर्भाव आयु शेषता  
 तथा—कार्त्तिक आयु समाप्त न हुई थी, आयुके अवशेष होनेसे । घटकी  
 = घटकश्च घटकी च—एकशेष समास । पितरो तथा शत्रुरो ये वृषरे  
 एतौच समासके उदाहरण है । मातापितरो तथा शत्रुश्च शत्रुरो ये  
 पितरो तथा शत्रुरो को द्वैकत्विक रूप है । कदमदि—किसी प्रकार ।  
 विशेष—भेद । श्लेषाश्रु ( श्लेषश्च पु कप )—कुकमिश्रित श्रासू ।  
 ( मध्यमपञ्चलोको समा० श्लेषाया मिश्रितमपु श्लेषाश्रु ) । राजापञ्च  
 ( अपञ्च पु नीच, समासके अन्तर्म इसका अर्थ 'अधम' 'निन्दित'  
 होता है । )—नीच राजका । अनाजायुञ्जव वृषरी जातिमें उत्पन्न ।  
 विधेयत्वं ( उपपञ्चसमास विधेय जानातीति विधेयत्वं )—जो यह जानता  
 है कि क्या करना चाहिये । मुष्टङ्गता—मित्रकी तरफ । उत्तरपञ्च्य भूतशब्द  
 समास । कभी इसका अर्थ स्वरूप होता है । स्वर्षार्थोऽपि भूतशब्द  
 उत्तरपञ्च्य—इह जगत् तमोभतमासीत्—तमोऽपमियय । स्फोटनम्  
 फोड़ना । मतिशालिभि—मत्वा शालन्ते शाभते त मतिशालिनस्ते । उन  
 लोगोंसे जो बहिर्से समझते हैं । १ विकल्पार्थ—सदिग्ध नहीं होते,  
 चक्रे होते हैं । नया—नोतिमाग । कियन्तात् ( कियती माता यत्न च )  
 —किस गिनतीका । दराक श्रेचारा । मध्याह्नसमये—मध्यमह्न मध्याह्न ।



मालिका—समूह । धात्रीभायेन कटिपताहम्—मै जा उसकी धाड़ बनाई  
 गयी थी । फलकम्—पटिया । परां काष्ठामधिगता—जो सीमातक पहुची  
 थी । विचेतना—विगतता चेतना यथा सा । प्रक्षायशीतले—प्रकृष्टा  
 ह्याया यद्य तत् प्रक्षाय प्रक्षाय च तत् शीतल च प्रक्षायशीतल  
 तस्मिन् ( विशेषणसमाप्त, कर्म० ष० ) । अनपन्गामिनम् ( अनपन्  
 गच्छतीति अनपन्गामी तम )—गांयकी पार जानेवाला । वारण —  
 गण । प्राद्वत्—भागा । गुल्मक —कम्—समूह । कच्छीरव—मिष्ट  
 ( कच्छीरौ गला ) । आन्ति—आन्त की समीका एकजवन ।  
 आन्त = आ + अन्—जु० पर का वतमान कृन्त । शास्, ऊत्, चकास्,  
 जाय, तथा जुष्टोत्यान् गणक धातुओंके वतमान कृदन्तमें—जिनके प्रथम  
 पुंस्यके बहुवचनमें अनुनासिक नहीं लगता—पुल्लिङ्गके मध्यनामस्थानमें  
 अनुनासिक नहीं लगता, तथा नपुंसकलिङ्गके प्र, द्वि, तथा सस्वोधनके  
 बहुवचनमें विकल्पसे अनुनासिक लगता है—दन्त, दन्तो, दन्त दन्तम्  
 दन्तो । न० प्र० दन्त, दन्ती, दन्ति दन्ति । दन्तावत —गण । ( वल  
 = मस्वर्यीय प्रत्यय । अन्तिम स्वरको दीर्घ होता है—जैसे कृषीवत —  
 खेतिहर ) । समाधीन ( समाधीन—सम् + आसका वतमान कृदन्त है । यह  
 अनियत है )—बैठे हुए । निकट —ठम—सामीप्य निकटम अव्यय पाठ ।

३।—क्रियता समयधम ( समय = एकरार ) एकरार क्रिया जाय ।  
 सुत्तामकच्छ —जिसका गला सूखसे सूख गया था । ताम से धातु स्या  
 पर का भूत कृन्त है । ( तायो म ८।१।६३। से को आन्त को म होता है ) ।  
 सक्किणी प्ररिलिच्छमान —प्रान्ताद्याष्टस्य सक्किणी इत्यमर —सक्किन् न  
 छोठोंके किनारे । परिलिच्छमान —जारे चाटता हुआ । यहङन्त  
 लिच्छ धातुका वतमान कृन्त । भस्मयन्—भस्म् ( भस्मयते ) । यह प्रायः  
 आत्मनेप० है । विग्रामस्थाने—जामिनके समान ।

४।—दायां दायमान्तं इति ऋयां —उत्तराधिकारी । अरघट्ट  
 घटीम्—घर चक्रके हड्डे, अरघट्टसे रच्यत इत्यरघट्ट —कुएमें पानी

निकाननका पत्रु गराहो : आहृतवान् आ + छि (श्वा उभ ) का कर्त्तरि  
 भुतकृत् । परासभूतमे छे को समसाराय होता है । जुहाय—जुहुव,  
 हूयात्—हाधीष्ट ( आशीनिङ् ), अदत्—अदात् ( लुङ् ) । अग्रहं यम्—  
 अग्रिणाञ्च । अद्वा ( अत्—अद्वय—धा लु० उभ० ) । परिशतप्रथा —  
 परिशत प्रथा यश्च स , परिशे यस्मि यतम न , वृष्ट हति यावत् । प्रसाप  
 पर —प्रसाप पर प्रधान यश्च स । रोत्रमें लगा हुआ , खो रोता जाता  
 था । कर्त्तवितम्—कवलोरश्च कृत्यात् इति दयन बनाया गया । वृमुक्षित  
 —भूषा । सन्तल भुक्ता भूत कृत्वा । गाथा—गी०—मगर । सुकृतमन्तरे  
 मया शिष्यतम्—एक प्रश्नरकी कसम । मैं अपने पुण्योकी कसम खाता हूँ ।  
 यदि मैं भूट हूँ तो मेरा सब पुण्य नष्ट हो जाय ।

३ ।—भूरि बहुत । घननिच्य —निच्य = आसक्त , वार२ घनमें रहता  
 हुआ । इष्टि—याम । सोत्र—ऋग्—श्वा पर—चिह्नाना । ब्रह्मा-  
 दितम्—ब्रह्म = ब्रह्मोत्र । धास्यते = दूषेगा । काधय —शिशु । आश्वे—  
 सुखमें । प्रशिक्षिता—अद्भुती । त्रिवीकष —ती शोक येषां ते  
 त्रिवीकष । पृषान्तरात्रिणात् साधु —यद्य गुणु है कोकि यद्य पणोन्नात्रि-  
 गणमें है । त्रिवीकष की वजहसे त्रिवीकष होता है ।

४ ।—मकला —( बहु०, कानामि अत्रे मरिचता )—सत्र । मन्थगण-  
 कुमारकम—मन्थप्रदानो मन्थ मन्थगण ( मधामपत्तौ पौ म० )—उत्तम  
 गण । युवावस्थामि गलोक गण्डध्वजसे एक गुमन्थ रस बहता है निचको  
 मन्थ वा दान कहते हैं । कुमारक मन्थक यद्य गहित प्रथम वातधत्वका बोध  
 कराता है । वारिवन्धात्—उस लगहसे -टा मन्थ दाधे जाते हैं । वारि-  
 री—मन्थोके बांधाकी लगह । अन्वयतस्य नकल कनापम्—१ जिसने  
 सब कलाए प्राप्त की , २ दन्त नियमें सब कलाए प्राप्त हुई हैं , पूरा  
 सब । कलाप पु सगुणाय । सकलताम्—कलन मरिचतानि सकलानि तथा  
 भावकता ताम् । एव सन्विष्टितानामुना प्रवक्षे = आप मारहवें वक्षे बड़  
 रह हैं जा कहें यथां को बखटा होनेपर आया है । अयात् मैं आपकी सोल

इया वष प्राप्त होनेपर बधाइ देता हूँ, जो इस प्रकार कई वर्षोंके इकट्ठा होनेपर आया है । नियन्तुणम्—प्रतिबन्ध । ललितम् क्रीडा । लल्—भवा वा लु उभय का भाजकान्त ( भाव क्त ) । ललना प्रवृत्त, जिसका अर्थ स्त्री है, इसीसे बना हुआ है । त्रिभुवनाख्यमिति कृत्वा—यद्य सोचकर कि यह तीनों लोकोंमें एक अद्भुत वस्तु है । सर्वे अत्रम्पु इन्द्रका अत्र । एवविध—बहु० एव विधा प्रकारो सख्य स । परिचारायम्—परिचाराय इदं यथा ध्यात्तया ( धनु० तत्पु०, क्रियावि ) अभिरूप—सुन्दर । कुलकमागतः—अशपरम्परासे चला आया हुआ । शिरसि कृत्वा—शिरोधाय कर । इत्रनि—शब्द ।

७ ।—अनायम्—अनाय इ- यथा ध्यात्तया । यह चतु० तत्पु० है और आगतम् का क्रियाविशेषण है । यह नित्य समास है । यह समास जिसका विग्रह नहीं हो सकता वा जिससे पदोंको अलग कर लिखाया जा नहीं सकता, नित्यसमास है । ( 'अविग्रहोऽखण्डविग्रहो वा नित्यसमास' ) । इस प्रकार खटारुड नित्यसमास है, जिसका अर्थ जाह्नव वा नीच है । विश्वार्थीका समीपपर सेना चर्चाये । यत्र यद्य खटियापर सोच तो वह खटारुड कहाता है, जिसका अर्थ नीच है । इस शब्दसे प्राचीन समयकी विश्वार्थीदेशाका परिचय मिलता है । ( अर्थर सह नित्यसमासो विशेष्य लिङ्ग च ) । अमात्य—अमा मह ( राजा ) भय अमात्य अमा प्रथम । अमात्राया—अमा रुद्र यद्यत सूर्यावद्द्रमसो यस्या त्रियो वा । क्षेत्र च क्षेत्रः । यह इति विस्तरेणाभिधीयसे को भाव अश्रित है । इति = इति द्वितो, इस निये । अनेक कारण हैं निषेधे मुमको विस्तारसे बचा जाता है । अभानुभेदायम्—मानुना भेदा भानुभेदायम् न भानुभेदायमानुभेदायम् । नप्तत्पु०—( तमसु ) को मूयसे नष्ट नहीं किया जा सकता । यौवन प्रथमम्—यौवन प्रथम उत्पत्तिस्थान यद्य तत्—यौवनसे उत्पन्न हुआ अज्ञान । साधारण अन्धकारसे यह अन्धकार भिन्न है । साधारण अन्धकार मूयसे नष्ट किया जा सकता है, रत्नोंको कालिये दूर हो सकता है ।



नीपीक प्रकाशसें घटाया जा सकता है, और बहुत गहिरा नहीं होता ।  
 धोवनप्रभय तम उपमेय है, और 'साधारण तम' उपमान है । यहाँ उप  
 मयाधिकपद्यप्रसायी व्यतिरेक अलंकार है । रागमलायलेप = विषयमेककी  
 श्रुद्धिसे उत्पन्न होनाला गद्य । अस्नानशौचवध्य = जो स्नानकी  
 श्रुद्धिसे नष्ट नहीं हो सकता । गर्मेश्वरत्वम्—जन्मविदुः सावभोमता ।  
 अविनयाना समवाय = एषामेकैकमण्यविनयानामाद्यतनं समवाय ( इनका  
 समूह ) अविनयानामाद्यतनमिति किमुत ( कि वक्तव्यम् )—जब इनमें प्रत्येक  
 अविनयका ध्यान है, तब इनके समुदायकी क्या बात है । इसको कैमुतिक  
 न्याय कहत हैं । अभिनय धोवन यद्य स अभिनयधोवन तद्य भाव  
 अभिनयधोवनत्वम् । इसी प्रकार अतिमरूपत्वम् तथा अमानुषशक्तित्वम्  
 का विग्रह करना चाहिये । कालुष्यम्—मालिन्य, क्रुप भटमीला । भयाङ्ग  
 —भयाङ्ग म ये तीन रूप है । ऐसे २ और शब्दोंके भी तीन रूप होती  
 हैं, जैसे—साङ्ग म च । अयगतमल मल —मलम् घूल, मालिन्य, अय  
 शत्रु विधार । गर्मस्त्रिपु स्त्री—किरण । गर्मस्त्रिमत्—सूय । कल्याण  
 भिनिवेशो—कल्याण भिनिवेश कल्याणभिनिवेश, सोऽप्यासीति कल्याण  
 भिनिवेशी, तत्पु० सं० का इत् प्रत्यय लगाया गया है ।—सो अपने हितकी  
 ओर लगा हुआ है । ( अभिनिवेश—भक्ति, मादमेम ) । राग = १ राग,  
 २ प्रेम । एकान्तव्रता = १ अत्यन्त टेटापन, २ अत्यन्त टेटे मागसे  
 चलना । चञ्चलता = १ कुर्ती, २ अस्थिरता । मोहनशक्ति = १ मोहित  
 करनेकी शक्ति, २ धत्रीकरण । सम् = १ मग्ना, २ मद्य । नैष्ठयम्—१  
 कडापन, २ क्रांता । इस प्रकार इन शब्दोंके भी २ अर्थ हैं, और यहाँ  
 अलङ्कार सँघ है । दो अर्थोंमें एक परिजातपक्षय इन्द्रशकल इत्यादि  
 तरफ लगता है और दूसरा अर्थ लक्ष्मीके तरफ । शकलः—टुकड़ा ।  
 कालकृष्णम्—त्रिष । विरहविना—विहानि—विद्योगके दूर करनेके लक्ष्य ।  
 पलायने—नय अर्थ—म्या आत्म को पूव परा होता है तब परा को रूकी  
 लूँता है । अयुषो परासभूतम अयाजको—अयुष—आय रूप दारो है ।

अभिलषन—उद्धृत यश । कामसु—मान तिया, चाहे एसा हो । समारोपि—जिसको उपनयन इत्यादि मस्कार पिताको द्वारा किये गये हैं । तरल—सज्जल । अमतिबुद्धु—जिसको प्रकाश अथवा ज्ञान नहीं हुआ । मुपरीकृतयान्—मुझसे बुलवाया । कृत मयेऽसु—कृतवानहमिदम । धातुको अकमक हानपर अयमें भेद नहीं होता । गतोऽह ग्रामसु और गतवानह ग्रामसु का अर्थ एक ही है—मैं गांव गया । इन्मेऽ= पुनर्वसिय द्विनीता लक्ष्मी यत्नीकरातीति । विजयस्व—वि तथा परा पूयक जि धातु आत्मनेपन् है । उपराभ्या लं १३।१८ ॥ सिद्धादेश—वह जिसको आज्ञा अथवा सफल हो ।

८ :—श्रुतिस्मृतिनिष्ठ हीतपरमात्मलक्षणसु—जिसने वेद तथा धर्मशास्त्र से आत्माका अनुभव किया है । परमहसपरिव्राट्—सन्नासियोंके चार भेद हैं—कुटीबक, बहूक, घस तथा परमघस । इनमें उत्तरोत्तर अधिक श्रेष्ठता खिजाता है । इस प्रकार परमघस सबसे श्रेष्ठ है । न हि—निश्चय । जव नतीका ममीपकः तठ टलकर खाय हो जाता है तो कोई नहीं पार करना नहीं चाहता । इसी प्रकार जव यह शरीर पहियोंसे खया जाता वा पाय हो जाता है तो कोई इस ममारसे मुक्त होना नहीं चाहता । तो तुम का मुक्त होना चाहते हो ? पार और अवर ( ममीप तथा दूरका तट ) से पारावार जल बना हुआ है जिसका अर्थ समुद्र है । ग्राह —घड़ियाल । वपस्—न पत्नी । साध्ववाणी —अत्र तुम ठीक कहत हो । पहिले तुमने कह कथो कहा—‘मैं एक विशिष्ट कुलमें ब्राह्मण और ब्रह्मचारी था, और अद्य मैं परमघस हूँ । श्रुयोऽ—अमत्य । अन्त्याऽश्रय —असौ अश्रय यद्य च = इस यगका । प्रत्यभ्यवाप्त ०—तुमने शरीरको पहिचाना, जिसको कह जातिर्या यश तथा मस्कार है, जिस प्रकार आत्माको पहिचाना, जिसको न जाति है, न यश और न मस्कार ।

९ —परमानन्माधत्सु—विष्णु जो परम आनन्का आत्मा है । मा = लक्ष्मी + धय = पति । सत्—सत्ता वा स्थिति, वित्—पान, और

१) २) ३) ४) ५) ६) ७) ८) ९) १०) ११) १२) १३) १४) १५) १६) १७) १८) १९) २०) २१) २२) २३) २४) २५) २६) २७) २८) २९) ३०) ३१) ३२) ३३) ३४) ३५) ३६) ३७) ३८) ३९) ४०) ४१) ४२) ४३) ४४) ४५) ४६) ४७) ४८) ४९) ५०) ५१) ५२) ५३) ५४) ५५) ५६) ५७) ५८) ५९) ६०) ६१) ६२) ६३) ६४) ६५) ६६) ६७) ६८) ६९) ७०) ७१) ७२) ७३) ७४) ७५) ७६) ७७) ७८) ७९) ८०) ८१) ८२) ८३) ८४) ८५) ८६) ८७) ८८) ८९) ९०) ९१) ९२) ९३) ९४) ९५) ९६) ९७) ९८) ९९) १००)

१) २) ३) ४) ५) ६) ७) ८) ९) १०) ११) १२) १३) १४) १५) १६) १७) १८) १९) २०) २१) २२) २३) २४) २५) २६) २७) २८) २९) ३०) ३१) ३२) ३३) ३४) ३५) ३६) ३७) ३८) ३९) ४०) ४१) ४२) ४३) ४४) ४५) ४६) ४७) ४८) ४९) ५०) ५१) ५२) ५३) ५४) ५५) ५६) ५७) ५८) ५९) ६०) ६१) ६२) ६३) ६४) ६५) ६६) ६७) ६८) ६९) ७०) ७१) ७२) ७३) ७४) ७५) ७६) ७७) ७८) ७९) ८०) ८१) ८२) ८३) ८४) ८५) ८६) ८७) ८८) ८९) ९०) ९१) ९२) ९३) ९४) ९५) ९६) ९७) ९८) ९९) १००)



आनन्द ( सुख ) ये तीन परमात्माज्ञ स्वस्व है । वक्र — अगुला । अज्यसु  
— ठगना । कायपाल = उनका उपयोगना समय । विसा — स्त्री — मिथरी ।

१० । — अक्ष — मूय । लोकपाल — लोकके पालक । तपन — मूय ।  
वैश्वस्य — कुबेर । विसापत्यो — विसतपति — धनपति — कुबेर, और अयति  
— अयति — यक्ष । इन्द्रान्ते श्रुपसाण पर प्रत्येक सम्बन्धत—  
पतिशब्द को विसाप हृ हृसे अन्तमें है, विस तया अय शोनोंके साथ  
अयित दाता है । अयति इस शब्दका अर्थ है— विसतपति तया अयति ।  
अलीकेन— कलसे । द्रुतम्— शीघ्र । विद्रुन— भारा हुआ । मनुष्य  
इति— उषका मनुष्य जानकर । दुःखपरिणामम्— जो उससे पास कठिनतासे  
पहुच सकता है ।

११ । — इन्द्राकु— इन्द्राकु राजाके यशका । औजसुष्टि प्रकीर्णते =  
मुहोभर औज नहीं हौट जाते, औज नहीं औपे जात ( क्योंकि कर्मिलके  
समय चौरोंका डर रहता है— फलकासे लुप्टाकशङ्कया ) पितृ पुत्रो— धर्म  
पुत्र पिताकी आज्ञा नहीं मानता, और न स्त्री पतिकी आज्ञा मानती है ।  
कौंकि आज्ञाओंको उल्लङ्घन करनेवालेका शब्द देनेवाला कोई नहीं ।  
अव्याहितम्— बड़ा भय । 'अव्याहित महाभीति' इत्यमर । विपायिन—  
अच्छे दातयाले । दायन — नमू यक्ष । तिम— कुशल । पर्यम्— क्रोध वरा ।  
विभक्तम्— विभाग करता हुआ । ध्यकम्— औजस । अथ च धर्मश्च— अथ  
तथा धर्मश्च प्रवक्तव्य । महता वृत्तन— यमकी देवल पापियोंका दण्ड करने  
की शक्ति है, कुबेरको वाजल धन देनेकी, हनुको देवल मनुष्योंके रक्षक  
करने की, और यक्षको देवल उनको अस्मात्पर ले जानेकी शक्ति है ।  
परन्तु राजामें इन चारों शक्तियाँ रहनेसे यह अपन बड़े चरितुसे उन  
बयसे अंगु है ।

१२ । — नाना— अय्य भिन्न । व्यान — मन, अथ । मनिक्पु— समीप ।  
मयतावृत्ति — जो प्रणामक लिये हाथ जोड़े हुए है । पर्यामक्ति— अजिते =  
अथ अथ मर साथ है तो मैं चाहे १०० उय तक आपका अधीन हूँ ,

अर्थात् मैकभी स्वतन्त्र नहीं । यथावत्—यथायोग्य । सङ्काश—तुल्य । सुरभि—सुन्दर । भाजित—पवित्र । अश्रवाक—यद्यपि रातको अपनी प्रियासे विमुक्त होता है । पक्षिया=जटाघुषा । कन्ना—गुहा । आमन्न—समीप ।

१३।—भरतपथ—भरतेषु अथमस्तरसम्बद्धो भरतपथ—भरत वशीयो-  
में श्रेष्ठ । अथम, शादूल, सिद्ध, पुद्गल इत्यादि समासके उत्तरपदके तरह  
प्रयुक्त होते हैं और इनका अर्थ 'श्रेष्ठ' होता है । 'सुदन्तरपद व्याघ्रपुद्गल  
पथमकुञ्जरा । सिद्धशादूलनागाद्या पुषि श्रेष्ठ्याद्यगाचरा ॥ उपमित  
व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे—उपमित अर्थात् उपमेयका व्याघ्र इत्यादिको  
साथ समास होता है, सब साधारण धर्मका वाचक कोई पद न हो । पुस्य  
व्याघ्र इत्युपस्यव्याघ्र, पर पुस्यो व्याघ्र इत्यशूर । यद्य 'शूर' यद्य  
साधारण धर्मवाचक पद है, इत्थलिये समास नहीं होता । नसोम—ना  
सोम इत्य । शी—सोम्य, श्रोत्राय, इत्यादिकी शोभा । पद्मा—लक्ष्मी ।  
मकरध्वजस्य—मदुरमका । प्रगल्भ—ढीठ आदमीमें । द्यपरे=देव पर  
प्रधान वस्तु यद्य स द्यपर तस्मिन् देजपरे । उनीरा—उत्तर प्रकृतिका ।  
(उद् + इर्—अ आत्म का भूतङ् ) । साङ्करिके=जिसमें वणसङ्कर है ।  
असूयक—अपहृष्टि करनेवाला । कृतात्मन्—जितेन्द्रिय, पयित् ।  
स्वाध्यायनिय—अध्यासमें लगा हुआ, नियम=निमग्न । सगुहमनोरथेषु  
—उन लोगोंमें जिनको अभिप्राय गुह्य है, निमके मनमें एक और चचनमें  
दृमरो वात है ।

१४।—तनरुप—देश । कल्पगता—करय मातररुष्व वा—मात  
काय । आकीर्णम् ( आ-+ कृ (किरति) तु पर का भूत कृन्त )—व्यासम्—  
भगवतुषा । तपस्विनी—उचारी ( नीनता लिखता है ) । कृच्छ्रम्—कष्ट ।  
मेघजम्—शौषध । शकुनिज्ञेन—शकुनि हन्तीति शकुनिज्ञेन—दष्टे-  
नियसे । अग्निमात्तिकम्—अग्नि साक्षी यस्मिन्नात् । एतत्—मर्ता हि  
उरर परमियेतत् । कर्कश—गुच्छा ।

१५।—शृङ्खलति—शृ ( शृङ्खल ) श्या पर दत्त प्र पु ए व ।

११।—विद्युद्गुण—विद्युत् विद्युत् अधोपगत विद्युत् वा नैविद्युत् विद्युत् गुणानाम् । यैः कोमं वृद्ध । पराधारात्—एतच्च कथं च पराधारेण च धारणीति—भूततया यत्तमानको धारणशक्तिः । एवं प्रयुक्त—शरीरस्य परं प्रयुक्तं मकरं मनोज्ञं यथाऽपनीयं शरीरात् प्रयुक्तं—दृष्टीशुद्धिद्वयम् ।

१०।—भैषज्यगतम्—विनायकम्—यदन्तरं (द्वारा) मानुषिनायकानाम् । अत्रानुचिन्तनमित्यर्थः । इत्यस्य भैषज्यम् । दुःखका विनाशकं कामादीं लभका दूरकरकं दया है । यथा—लोभकरः । विनाशक—अग्निः—अज्ञानयज्ञ विषयिका प्रथमं एव आपत्ति है और पराधका कारण है । यथा मच्छत्रं निवृत्ति—यथा जाता दुःखा दूरना नहीं । समाप्तार एता है जाता है । यत्र—'यथाऽमच्छत्रं निवृत्ति' पाठ हा तो लभका अर्थ—यत्र विना चले नहीं ठहर सकता । अथात्मरति—आत्मन्यधिकृत्याधारणम्, अथात्म रतियोग म । निरामिय—सांसारिक विषयोंके प्रेमही मुक्त ।

१२।—पुनरुक्त—मिथुपुत्र । पुनरं प्रविष्टम्—दुःखको भीतर बैठे हुआ । न हि मतीक्षत—कृतम्—एषु यद् देखनको प्रतीक्षा नहीं करता कि दुःखसे जीवन्तका कार्य समाप्त हुआ या नहीं । न यद्दमेने विज्ञानताम्—यद् न समझना कि शरीरका परिवर्तन मरणा है । ज्ञान अनुष्य मरता है ता लभका आत्मा दूसरे शरीरमें जानना लिये प्रथम शरीरको छोड़ता है । न मन किञ्चिद्गम प्राप्तम्—तेन किञ्चिन्म प्राप्तमिति न अपि तु प्राप्तमेव । नो नर्जा प्रकृत्याय दृढीकृतम्—नो न प्रकृत आत्माको दृढ़ करत है ।

१३।—दापमद्गामम्—याम् गद्गद् विशीलात्तर यथा आत्मा आत्मशक्ति मला अधनेके कारण लक्ष्मणात् अक्षराम् । अयं—लोहा । केव कथा शरीरिणु—चेतन जीवों की बात ही क्या है ? लक्ष लोहेके समान अचेतन पदार्थ भी शरीरमें मुनापम हो जाता है तो चेतन जीवों के शोके सत्ता तथा सुदुःखानमें आशय क्या है । इत्—हाय ! परिचितः—मारनेका चाहेवाले । अथवा—दूर परलमें—पदान्तरं हलथ । हिम—शक्तिवपत्ति—जो शोषके गिरनेमें नष्ट होती है । पूर्वनिश्चयम्—पहिला

उदाहरण । अशनि कल्पित रूप उच्यते—इस मालाको ईयन वच अनाया  
 है । अशनि विधेय है । याज्ञमें दो भाग दात हैं—उद्विग्न और विधेय ।  
 इनमें विधेय प्रधान रहता है । निश्चायक स्यनामका लिङ्ग विधेयको  
 अनुसरता है । विधेयमाधापादप इति पुल्लिङ्गता । इसी प्रकार—  
 श्रेयं हि यस्या प्रकृतिफलम् । कृतपूजम्—पूज कृत कृतपूजम् । सुपुप  
 समास । शब्दपति—शब्देन पति न स्वर्पेन—नामका राधा । भावनिब  
 न्धना—( भाव स्वभाव )—स्वाभाविक । अयरी—स्त्री—रान्ति । द्वन्द्वर—  
 जोड़ोसे चलनेवाले । चक्रवा मद्रा अपती प्रियाको साथ चलता तथा रात  
 को विपुक्त होता है । पतन्निखम्—चक्रवाकको । पतन्तु हैना । वामोर—  
 वामो सुन्दरो उरु जहु यथा सा वामोर तत्सम्बुद्धो वामोर । ( समासमें  
 स्त्रीलिङ्गमें ऊरु का ऊरु होता है—यदि समासका पृथक् उपमानवाचक  
 वा महित, वाम, इनमें कोई दो । जैसे—रमार, करमोर ) । 'उत्तरपन्नादो  
 पथ' ४।१।६८॥ 'महितशफलक्षणवामादेश' ४।१।७०॥ ) । कलम्—'पव्यक्त  
 और मधुर । अन्वयतासु—काकिलाश्रोमें । परभता अन्वयता ( वृसरसे  
 पोषित ) का अर्थ कोयल है । क्योंकि इनको अडे कोड़ोंसे बढ़ाये जात है ।  
 अत एव परभत् ( पर विभर्त्सति, जा वृसरका पोषण करता है ) का अर्थ  
 काया है । पृथगीप—सृष्टिधोमें । प्रभ्रमा—प्रिलास । कलाविधो—  
 कलाश्रोके करनमें कदवाविमुखन—विगत मुख यद्य स विमुख,  
 कदवाया विमुख कदवाविमुखस्तन ।

२० ।—अर्थान्धरा—धनकी गरमीसे । त्रिलोकीतिलक—तुयाणां  
 लाकाना समाहारस्त्रिलोकी ( समाहारद्विगु । इसी प्रकार अष्टाधायी,  
 चतु मूर्ती, पञ्चवटी ) त्रिलोकास्त्रिलक मूषण त्रिलोकीतिलक तीनों नोकरा  
 भूषण । शीतसितया—शीता चासो सितया च शीतसिता तथा । शीतल  
 और शीत ( गङ्गा ), दृश्यको आनन्द देनेवाली और निष्कलङ्क ।

पातु पवित्रयति—दीवक पातुको मलिन करता है, परन्तु स  
 साथ सेत्री पुन्यको पवित्र, तथा



गुण ( वृत्ति ) को नष्ट करता है, पर सञ्जनोंकी मितृता गुणोंकी नष्ट नहीं करती, उनको बढाती है । श्लेषक रनेष्ट ( गल ) को नष्ट करता है सञ्जनोंकी मित्रता रनेष्ट ( विस ) को नष्ट नहीं करती । श्लेषक घरा ( काडल ) को उत्पन्न करता है, सञ्जनोंकी मित्रता गल अथवा दुःख विचारोंके उत्पन्न नहीं करती । श्लेषक वाघा ( रात्रि ) के अन्तमें शोभा नहीं नेता सञ्जनोंकी मितृता श्लेषोंके नष्ट होनेसे शोभा वती है । श्लेषक चञ्च है, सञ्जनोंकी सेतु शञ्चन नहीं । इन प्रकार सञ्चरित् पुस्तकोंने यह मतसमाप्तम एक अग्रवर्णनीय श्लेषक है । यद्वापर सञ्चरित्की मितृता साधार और श्लेषकोंके अष्टु कही गयी है । इस प्रकार उपर्युक्त उपमानसे अज्ञानके कारण व्यतिरेक अलङ्कारकी ध्वनि विकलती है । पवित्रुपति- ( नामधातु, पत्रित् कराति ) ।

नाशान्ति—अर्थात् मूल्यमघशक्ति १ भवतोपय ( नामधातु ) ।

प्रतिभाशक्त—असकी कल्पनाशक्ति है । प्रतिभा—“प्रभा नानवो अशेषशक्तिने प्रतिभा मता”—नवीनर कल्पनाशक्तोंसे समझनेवाली बुद्धि । प्रतिभाके बिना उत्तम काव्य नहीं बन सकता । कल्पित्—कल्पित् शब्द न सञ्च ।

राकवित्त्व—कविता न ज्ञानसे कव्यकी दानि रंग वा दृश्य नहीं होता सञ्चन कहन है कि दृष्टकाव्य बनाना साक्षात् भरण ( कौतिका नाश ) अर्थात् पूर्य अनात्र है ।

व्याख्यामन्थानि—यन्नि रेषी ( कृत्तिस मोन्दर्यपूर ) कविताओंका अथ शास्त्रोंके समान कथल टीकाओंके सहारे खग सकता है, ती रिख्य यह तीर्य बुद्धि खोगाके लिये सुन्न है, परन्तु दाय । मन्दबुद्धिवालोंकी दुःशा है । इसका अर्थ यह है कि कविता अष्ट और सुबोध होनेी चाहिये । इसका समझनेके लिये शास्त्रोंके समान टीकाओंकी आवश्यकता १ दानों चाहिये । दुर्मैथस—‘निचमसिच प्रनामेधयो’ शशावशश ३३ वा पाठ देखो । प्रजा तदा नधान्त वदुर्वौषिसे अविच समाधान

प्रत्यय होता है। अर्थात् प्रजा तथा मेधाका प्रजस् तथा मधस् होता है, यदि उसको पृथक् नक् ( अ वा अन् ), हुस्, और सु हो। ( अमजा सुमजा, अमेधा इत्यादि ) ।

मूधजा —मूर्ध्नि जायन्ते इति मूधना केशा ।

क्षीयमान —क्षीयमान पर है, पर यहा ताच्छील्यको अयमें आस है। क्षीयमान का अर्थ है जिसको क्षीयकौ श्रान्त है। 'ताच्छील्यवयो-  
यचनशक्तिषु चानश' ।३।२।१२९॥—आनश ( आन, आत्म का वर्त-  
मान कृन्त प्रत्यय ) ताच्छील्य अयमें धातुश्रान्तको लगाया जाता है। यह  
इन अर्थोंमें भी लगाया जाता है जहा वयसका बोध हो या शक्ति  
मान्य हो। भाग सुन्नान —जिसको मुख उपभोग करनेकी शक्ति है।  
कवच मिथाय —जो कवच धारण करने योग्य वयस् को पहुँचा। शत्रु  
विघ्नान —जिसको शत्रुओंको मारनेकी शक्ति है।

भागधेयम्—भाग एव भागधर्मम्—धर्म स्थायवाचक प्रत्यय है, अर्थात्  
इसको लगानेसे प्रकृतिके अयमें कोई भेद नहीं होता। नाम एव नामधेयम्,  
बाल एव बालक ( क स्थायवाचक है ), सुखमेव सुखम् ।

इतरतापशतानि—अरसिकोंको सामने रसपूरुष वचन कहनासे कष्टको छोड़  
इतर भेकड़ों कष्ट ।

अर्थात् सखे०—यह अत्योक्ति वा अपस्तुतप्रशसा का उदाहरण है।  
जब अपस्तुत ( अथर्वनीय ) की प्रशसा अर्थात् कथनसे मस्तुत ( वचनीय )  
की प्रतीति होती है तब अपस्तुतप्रशसा अलङ्कार होता है। अरसिकोंका  
सामने रसपूरुष वचन कहना वैसा है जैसे बहिरसि बसे हुए ध्यानपर  
काकिलकी बोली। कविका अभिप्राय विद्वान्को उपदेश देनेमें है कि वह  
अरसिकोंके सामने अपनी श्रेष्ठता न दिखावे।

द्वैतदत्तका—द्वैत दत्त निम्न वेदांति । यहा निष्ठा वा भूतकृन्त  
उत्तरपत्तको समान प्रयुक्त हुआ है। आदितापि वा अग्रगहित ( जिसने  
अपिका आधान किया है ) दोनों एव होते हैं। कलानभिज्ञा —

१ श्री गुरु वा जन्मकारणं कुरुते स्वयं जन्तुः । २ श्री कृष्णार्जुनसंवादे ।

जन्तुः कुरुते । जन्म ( कर्म )—कर्म ।

सामय १०- लोभ-द्वेष-मद-मात्सर्य-आदि-विषय-वाच्य-कर्म-करणात्-सम-स-हे-द्वयम् ।

द्विष्टानां शत्रुत्वम्-कर्म-शान्तिः ।

मन्त्रित मया० परिहृतं तेषां प्राणीनां विविधं दातुं कर्तव्यं ।  
जिनका मन्त्रणं शत्रुत्वं दातुं सामान्यं किया जाता है । इस प्रकार का सामान्य प्रियङ्गु, या द्विष्टानां सामान्यता मन्त्रणं किया जाता है तो शत्रुत्वान्तरात् शत्रुत्वं होता है ।

स्य चापान्तरात्प्रायाः शत्रुत्वम्-कर्म-शान्तिः ।

सामान्यमन्त्रणं दातुं शत्रुत्वम्-कर्म-शान्तिः ॥

अपान्तरात्प्रायाः शत्रुत्वम्-कर्म-शान्तिः । अतः एतत् एवम्-सामान्यमन्त्रणं दातुं शत्रुत्वम्-कर्म-शान्तिः ।

पुत्राधिकारविधिः—निम्नो पुत्रकारणं दातुं कर्तव्यं । दातुं शत्रुत्वम्-कर्म-शान्तिः । अतः एतत् एवम्-सामान्यमन्त्रणं दातुं शत्रुत्वम्-कर्म-शान्तिः ।

सत्त्वता—सत्त्वतः सत्त्वतः सत्त्वतः । अतः एतत् एवम्-सामान्यमन्त्रणं दातुं शत्रुत्वम्-कर्म-शान्तिः । अतः एतत् एवम्-सामान्यमन्त्रणं दातुं शत्रुत्वम्-कर्म-शान्तिः । अतः एतत् एवम्-सामान्यमन्त्रणं दातुं शत्रुत्वम्-कर्म-शान्तिः ।

सम्पत्तिविधिः—सम्पत्तिविधिः सत्त्वतः सत्त्वतः । अतः एतत् एवम्-सामान्यमन्त्रणं दातुं शत्रुत्वम्-कर्म-शान्तिः । अतः एतत् एवम्-सामान्यमन्त्रणं दातुं शत्रुत्वम्-कर्म-शान्तिः । अतः एतत् एवम्-सामान्यमन्त्रणं दातुं शत्रुत्वम्-कर्म-शान्तिः ।

अप्रमान इव सारा यामा ता — दूसरा जो विषयकी बात निम्नासे शून्य होनी चाहिये ।

लासायते—लार टपकाता है । अमित्तायते अमित्नु इव आचरति—इन शब्दों में क्क ( य ) प्रत्यय लगाकर सन्धाश्लेषे धातु बनाये गए हैं ।

प्रथमगमगिर — प्रथम गर्भ यामा ता प्रथमगर्भा, प्रथमगर्भा गिर गेपां ते प्रथमगमगिर ( बहुव्रीहिसर्मा बहुव्रीहि ) । ये लोग जिनकी प्राणों में संपूर्ण है । वरगन्ति—शोभते हैं । समीजन० यह लोक भोज प्रबन्धमें है । पहिले तीन चरणोंमें राजा भोज अपने मुखका वचन करता है और चाहता है कि चतुर्थ चरण बनाये कि इतनेमें एक चोर जो महलमें घुमा या चतुर्थचरणको पूछ करता है, जो प्रथम तीन चरणोंकी साथ पूछ मिल खाता है और इसका तात्पर्य यह है कि आंसू सूझनेपर ( मरणको ब्रह्म ) इनमेंसे कोई चीज नहीं रहती ।

भटिति—श्रीघ्नः प्रिये । चन्द्रप्रदय समीप है । तुन्दारा मुखचन्द्र निष्कलङ्क है परन्तु पृष्ठचन्द्र सकलङ्क है । इसलिये पूराचन्द्रको छोड़ राहु तुन्दार मुखचन्द्रको प्रसेवा । अतः श्रीघ्न भीतर जाओ । यद्यपि देकालङ्कारध्वनि है । अर्थात् व्यतिरेक अलङ्कार जिसमें सम्मानके उपमेयका आधिक्य वर्णित है, व्यङ्ग्य है ।

पुरा—पूर्यकालमें कवियोंकी गिताती दानेपर कनिष्ठिका कालिदासने लिये उपयुक्त हुए । अतः कालिदासने तुंग्य कविके न दानेसे अनामिका नाम सायक हुआ । शिवान् अपनी अगुलीसे ब्रह्माका सिर काटा इसलिये यह अपवित्र हुए उसको पवित्र करनेकी लिये धार्मिक विधियोंमें अगुलीके दमकी अगुठी पहिनी जाती है । अङ्गुष्ठ, तनूनी या प्रदन्ती मध्यमा, अनामिका, और कनिष्ठिका से अगुठेसे लेकर क्रमसे सब अंगुठियोंके नाम हैं ।

यास्यत्यद्य—यास्यति—जायगी, न यह गयी न जा रही है । यह लग का है, तो भी मैं आयना थाकुल हूँ । सप्तष्टम्—सप्तक षष्ठम् । कनुष



मन्वारमान०—३२ या श्रीर ४० यां श्लोक कालिदासको मीघदूतसे लिये गये हैं । हम यद्य, जो किसी मुग्धको आपसे अपनी प्रियासे विपुन हुआ है, मेघको द्वारा अपनी प्रियाके पास सन्देश भेज रहा है ।

ग्रामाख्यङ्गम् ०—ग्रामा—एक पताका नाम । चण्डो—मानिनी स्त्री ।

पाशाधि —पाशांसि छनाति वधातीति पाशोधिजलधि समुद्र इत्यथ ।

दूरादय घटयति—१ मन्त्री दूरसे अपने कायको सिद्ध करता है, २ कवि अपने शब्दोंसे व्यङ्ग्यार्थ निकालता है । अपशब्दम्—१ चट्टत शब्द, २ व्याकरणसे अशुद्ध शब्द । पञ् रचयति—१ मन्त्री उपायका व्यवलम्बन करता है, २ कवि पञ्की रचना करता है ।

यत् नस्ति—यद्य श्लोक प्राचीनकालकी सृष्टस्थीका वित्त खड़ा करता है । यद्य घर घर नहीं है जिसमें दही नहीं भया जाता, जिसमें बालक नहीं, और जिसमें बहोंके प्रति उचित आश्रय नहीं दिखाया जाता, किन्तु यद्य वन है ।

सौमित्रे—यद्य श्लोक राम तथा लक्ष्मणके सवादको वचनमें रामकी तात्रियोगकी आशाका प्रथन करता है । विरहकी दशामें विरही लोगोंको चन्द्र इत्यादि जीतल पदार्थ गरम मालूम होते हैं । रामको श्रम मृत्युका भ्रम होता है । लक्ष्मण कहते हैं कि यद्य चन्द्र है, क्योंकि मर्म कुरङ्ग ( भुगाकार कलङ्क ) है । हमसे रामको सुगनयना भीताका लक्ष होता है और यद्य सौताको 'कुरङ्गनयने, 'चन्द्रानने' इन पदोंसे न्यायन करते हैं ।

हिमांशु ०—यद्य तथा हमको वाका श्लोक भीताके प्रति रामकी सन्देश प्रथन करते हैं, जो सन्देश हनुमान् से कहा गया था ।

व्यतिकर —इत्तान्त । कभी २ हसका अर्थ मिश्रण होता है, जैसे व्यतिकर दूध भोजनतामको घेद्युनय, चत्तर रामचरितम् ।

मा मा ०—हे मित्र, सुनि सिखाओ कि सुन्दर जागेपर मैं तुमसे कहूँ । यदि मैं कहूँ कि 'मत जाओ', तो यद्य अमङ्गल होगा, यदि



है कि वे जिस किसीको देखें उसीकी मिथ्याकृति न करे । वह स्वाभिमानका उपदेश करता है ।

आड्र यन्ति—आड्र से नामघातु—गीना करते हैं ।

यद्दृश्य मुहुरीचसे—यह भी श्रयोक्तिका उदाहरण है । इससे कवि स्वाभिमानो तथा सन्तोषी पुरुषका वर्णन करता है ।

निर्णो वारिकनि-योक्तप्ररूपम् = निगत शौचारिक (द्वारपाल) पक्षमात् तत्र निर्णो वारिकम् । नि-या चासौ उक्तिश्च नि-याक्ति । नि-योक्त्या अपरूपान-योक्तप्ररूपम्—निर्णो वारिक च तद्विदयात्प्ररूप च निर्णो वारिक नि-योक्तप्ररूपम्—परमेश्वरके भवनपर कीड़े द्वारपाल मछी जो लोगोंको भीतर आनेसे राकी और न उद्या कोई रेषा आमी है जो कठोर वचन कहे ।

श्रीवत्सङ्ग—श्रीवत्स चिह्नसे युक्त । श्रीवत्स—उरसि रोमावत—वत्स खलका केशीका भयरा । भागवतमें कथा है कि यह भगुके लाल मारनेका चिह्न है । एकवार भगुको यह ज्ञानकी इच्छा हुई कि ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव इनमें सबसे श्रेष्ठ कान है । भगु इन तीनोंको यहा गये और उनके सामने अथिनय किया । ब्रह्मा तथा शिव उस अथिनयको न सह सके । इससे अनन्तर भगु विष्णु की यहा गये और उनके दृश्यपर लगत मारी । भगवान् विष्णु कुछ न बोले । यही श्रीवत्स चिह्न है ।

दृष्टकल्पितम्—मनसे कल्पित । यह श्लोक मानसिक पूजाका वर्णन करता है ।

भे-प्रतिपत्ति—भेका ज्ञान । मे उनको भिन्न नहीं समझता ।

रामो राजप्रति ०—इस श्लोकमें रामप्रदके सब विभक्तियोंसे एक वचनके रूप दिखाई देते हैं ।



## परिगिट ( क ) ।

कृ धातुके रूप ।

कृ—पर (कर्त्तरि)—करोति (लट्), करोतु (लोट्), अकरोत् (लङ्), कुर्यात् (लिट्), चकार (लिट्), कर्ता (लुट्), करिष्यति (लृट्) अकरिष्यत् (लृट्), अकार्षीत् (लृङ्), क्रियात् (आशीर्लिट्) ।

कृ—आत्मन (कर्त्तरि)—कुरुत, कुरुताम् अकुरुत, कुरुते, चक्रे, कर्ता, करिष्यत, अकरिष्यत, अकृत कृषीष्ट ।

कृ—(कर्मणि)—क्रियते, क्रियताम्, अक्रियत, क्रियेत, चक्रे कर्ता—कारिता, करिष्यत—अकरिष्यत अकरिष्यत—अकारिष्यत, अकारि, कृषीष्ट—अकरिषीष्ट ।

कृ—लिङ्गना तथा सङ्गन्तके रूप ३१२ वें पृष्ठमें दिये गए हैं ।

कृ—(पठ्) चक्रीयत इत्यादि, यल्लुगन्त—चकरोति—चर्कति—चरिर्कति—चरोर्कति ।

कृदन्त—कुरुत् (शतृ पर), कुर्यात् (शानच्—आत्म), क्रियमाण (कर्मणि शानच्), कृत (निष्ठा—क्त), कृतयत् (कर्त्तरि निष्ठा—सप्तम्) करिष्यत् (सन्धिधर्ति शतृ), करिष्यमाण (भवि आत्म शानच्), कृत्वा (अव्यय कृन्त), कार कारम् (समुच्), कर्तुम् (तुमुच्), चकृधम् (कृधु), चकार (आत्म कानच्), काय (ख्यत्), कारित—(लिङ्गना से क), कारयत् (लिङ्गना—शतृ), कारयित्वा, कारयितुम्, विकीपत्—विकीपमाण इत्यादि ।

ऊपर दिये हुए रूप केवल 'कृ' का हैं । इनका देखनेसे विद्यादियोंकी साहित्यमें आनेवाले रूपोंके पहिचाननेमें सुगमता होगी ।

लकारों के प्राचीन नाम—भरुनी (लट्) परीवा (लिट्) अनद्यतना (भुता) वा अकतना (लङ्) अद्यतनी (लृङ्), भविष्यकी (लृट्) अनद्यतनी (भाविनी) वा अरुनी (लृट्) अतिस्वर्ता (लोट्) विधातिका (लिट्) आगी (आशीर्लिट्) अतिपातिका (लृङ्), पठनी तथा समी ये भी लोट् तथा लिङ् के नाम हैं । क्योंकि पाणिनिकी लकारोंके क्रमसे यह पाँचवाँ तथा सातवाँ लकार हैं—लट्, लिट् लुट् लृट् लृङ् (इत्यादि) लृङ्, लृङ्, लिङ्, लृङ्, लृङ् ।

## परिशिष्ट (ख) ।

### पालिनीय पद्धति ।

संस्कृत व्याकरणोंमें पालिनिका नाम प्रसिद्ध है । पालिनिका व्याकरण जो आठ अध्यायोंमें है, अष्टाध्यायीके नामसे प्रसिद्ध है । अष्टाध्यायीके टीकाओंमें भट्टाचार्योचित्तकी सिद्धान्तकौमुदी बहुत प्रचलित है । संस्कृत व्याकरणके उत्तम ज्ञानके लिये सिद्धान्तकौमुदीका पढ़ना आवश्यक है । सिद्धान्तकौमुदीका सत्तप लघुसिद्धान्तकौमुदी है । इस ग्रन्थको पढ़नेके इच्छा रखनेवालोंके लिये माग सुगम करना ही इस परिशिष्टका उद्देश है ।

पालिनिके नियम सक्षिप्त है और बहुत अधिक बोध कराते हैं । ये सूत्र कदात हैं । अतिक्षिप्त होनेके कारण इनका कष्ट करना सुगम है । और इस कारण ये व्याकरणका पढ़ना सुगम बनाते हैं । 'संस्कृत शिक्षिका' पढ़ते समय इन सूत्रोंका अभ्यास करनेसे व्याकरणके नियमोंके मनपर सकार दृढ़ होगा । सूत्रोंके समझनेके लिये कुछ मन्त्रांशों और परिभाषाओं ( मनुष्याख्यान ) का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है । पालिनिके व्याकरणके मूलभूत अधालिखित चौदह माहेश्वर ( शिवसे प्राप्त ) सूत्र हैं —

अइउण् । अर्चक । अओः । अश्रीच । इयवरट् । लण् । रमड् । रनम् । भभञ् । घटघप् । खत्रगडइश् । खफकठयचटतव् । कप्रयः । शषचर् । एल् ।

इन चौदहों सूत्रोंके अन्तिम अक्षर तथा लण् में ख फा अ इत् कदाते हैं । इस प्रकार ए, क, ङ् इत्यादि इत् है । ए, य, इत्यादि व्यञ्जनोंके साथ का अ अक्षरोंके उच्चारणमें सुगमता देनेके लिये है । इन सूत्रोंके किसी अक्षरको इत् तथाके साथ मिलानसे अर्च अर्च, भञ्, अल् इत्यादि निकलते हैं । ये प्रत्याहार कदाते हैं । इनसे पहिले अक्षरसे लकर इत् तकके वर्णोंका (इत् छोड़कर) बोध होता है । इस प्रकार अक से क्को

से क्त तकसे मत्र वर्णों (अ, इ, उ, ऋ) का बोध होता है । अच् से मत्र खरौका बाध जाता है । 'इयत्राट्' से ट से दल' के लुक्तक दन प्रत्याहार है जिससे मत्र व्यन्तोंका बोध होता है ।

स्वर तीन प्रकारके हैं । ह्रस्व, दीर्घ, प्रुत । दूरसे किसीको पुकारनेमें सम्बोधनका अन्तिम स्वर प्रुत जाता है । इनमें प्रथम स्वर दो प्रकारका जाता है—अनुनासिक और अननुनासिक । इस प्रकार स्वर छः प्रकारके हैं । उन्नास अनुनास, तथा स्वरिता ये भी तीन स्वरके भेद हैं, जो ये भेद पाये जाते हैं । इस रीति से अ इ, उ इनमें प्रत्यकके अठारह भेद हैं । अ के भी अठारह भेद हैं । ल को बोध नहीं होता इस लिये उसको १२ भेद हैं । अ तथा ल के मध्यमें हैं, और इनके ३७ प्रकार हैं । ए, ऐ, औ तथा ओ का उच्चारण नहीं जाता, इस लिये इनमें प्रत्येक १२ प्रकारके हैं ।

ऊपर लिये हुए विषयका पढ़नेमें यह मालूम होगा कि लघु प्रत्याहार किसी स्वरका बाध करता है तो अपने सब प्रकारोंका बोध करता है । परन्तु य = उम स्वरके वाच्य 'तु' हो तो उमौका बाध होता है जिसकी वाच्य 'त' है । अक् छहनेसे मत्र प्रकारके अ इ उ, अ तथा लृ का बोध होता है । अच् से मत्र प्रकारके उच्चारण अ, आच् से बोध आ के मत्र प्रकारोंका बाध होता है ।

स्थानानि ( उच्चारणके दृष्टिय ) १० वर्गं प्रुत दखो ।

अकुचत्रिमर्णनीयानां कण्ठ ( अ, कु उत्रर्ग, ष् तथा त्रिमर्ग इनका कण्ठ स्थान है, अर्थात् ये कण्ठस्थानीय हैं ) ।

इचुयशाता तालु ( इ, चु—चयर्ग य तथा श् इनका तालु स्थान है, अर्थात् ये तालुस्थानीय हैं ) ।

अदुराषाणा मूर्धा ( अ टु—टयर्ग ट, तथा ष् इनका मूर्धस्थान है, अर्थात् ये मूर्धस्थानीय हैं ) ।

लुलुनानां दन्ता ( ल, लु लत्रर्ग, लृ, तथा ष् इनका दन्तस्थान है, अर्थात् ये दन्तस्थानीय हैं ) ।

उपपद्यमानोयानामोद्यो ( उ, पु पत्रा तथा उपपद्यमानोय \* इनका ओद्युस्थान है, अर्थात् ये आद्युस्थानीय हैं ) ।

चमहलनानां नासिका च ( ज, मु, ह्, ख, न् इनका नासिका स्थान भी है अर्थात् ये नासिकास्थानीय भी हैं ) ।

एतेतो कण्ठतालु ( ए तथा ऐ का + कण्ठ तथा तालु स्थान है ) ।

ओदीता कण्ठेष्टुम् † ( ओ ओ का कण्ठ तथा ओद्यु स्थान है ) ।

वजारस्य ऋतोष्टुम् ( व् का इत तथा ओद्यु स्थान है ) ।

त्रिहामूलोपस्य त्रिहामूलम् ( त्रिहामूलीय का स्थान त्रिहाका मूल है ) ।

नासिकानुस्वारस्य ( अनुस्वारका नासिका स्थान है ) ।

### सन्धिनियमा ।

१ । प्रति + उत्तरम् = प्रपुत्तरम्, मधु + अरि = मध्वरि, पितृ + अग्र = पितृप, रू + आश्रुति = लाश्रुति ।

‡ इको यर्थाच । ६।१।७७। इङ्—इ, उ, क ल—ये स्थानमें यत् अर्थात् य, उ, र, तथा ल दात है, यदि उनसे आगे अच् वा खर हो । २८ वे पृष्ठमें २रा नियम देखो ।

२ । दैव + अरि = दैवारि, ओ + ईग = औश, रस + उत्तम = रसत्तम, होतृ + शृकार = छातृकार, दातृ + शृकार = दौतृकार ।

० क के पु ४ अथ ३मस्य विभक्तौ त्रिहामूलीय तथा प के पु ४ अथ विवर्गस्य विभक्तौ उपपद्यमानोय कहत है । राम + करोति राम करोति वा राम ५ करोति, राम + पति = राम पति वा राम ५ पति । त्रिहामूलीय तथा उपपद्यमानोयके निखनिका प्रचार कम है ।

† यदि 'ओ' के पूर्व 'अ' हो तो वच् अ तथा ओ मिलकर ओ वा औ होगा है । औ—कण्ठीठम वा कण्ठीठम् ।

‡ अष्टाध्यायीके प्रति अध्यायमें चार पाद हैं और पान्थेमें सत्र हैं । दस दठ अध्यायके प्रथम पादका ८० वा सूत्र है । इसी प्रकार सूत्रोंके आठ दिठे हुए कर्तव्यकी समझना चाहिये ।

से अक्षर मय वर्णों (इ, ए, उ, अ) का बोध होता है। अक्षर से अक्षरों का बोध जाता है। 'इयत्' से ए से 'इल' की अक्षर इल प्रत्याहार है जिससे मय अक्षरों का बोध होता है।

इस तीन प्रकार के हैं। इत्य, इयत्, इत्। दूसरी किसीकी पुनरावर्तन सम्बोधनका अन्तिम अक्षर प्रुता जाता है। इनमें प्रत्येक अक्षर ही प्रकारका जाता है—अनुनासिक और अनुनासिक। इस प्रकार अक्षर इ यत्ता है। उन्त, अनुन्त, तथा अन्त में भी तीन अक्षरों में है, जो वे-में अक्षरों हैं। इस रीति से अ इ, उ इन में प्रत्येकको अठारह में हैं। अ यो भी अठारह में हैं। अ का बोध नहीं होता इस लिये उसके १२ में हैं। अ तथा ल से मय है, और इनमें ३० प्रकार हैं। ए, ऐ, औ, तथा ओ का इत्य नहीं जाता, इस लिये इनमें प्रत्येक १२ प्रकारों हैं।

उपरि लिखे हुए विषयका प्रकरणसे यह भाव्य होगा कि उक्त प्रत्याहार किसी अक्षरका बोध करता है ता अपने अक्षरोंका बोध करता है। परन्तु यान् अक्षरों का 'त्' हो ता अक्षरोंका बोध होता है जिसकी वारत् है। अक्षरोंके अक्षरों अ, इ, उ, अ तथा ल का बोध जाता है। अक्षरों से मय प्रकारका इत्य अ, अत् से बोध या का अक्षरोंका बोध जाता है।

स्थानानि ( उच्चारणके दृष्टिसे ) १० वीं प्रश्न देखो।

अक्षरानि ( अक्षरोंके दृष्टिसे ) १० वीं प्रश्न देखो।  
अक्षरानि ( अक्षरोंके दृष्टिसे ) १० वीं प्रश्न देखो।

इत्युच्चारणानि ( इत्युच्चारणके दृष्टिसे ) १० वीं प्रश्न देखो।  
अक्षरानि ( अक्षरोंके दृष्टिसे ) १० वीं प्रश्न देखो।

अक्षरानि ( अक्षरोंके दृष्टिसे ) १० वीं प्रश्न देखो।  
अक्षरानि ( अक्षरोंके दृष्टिसे ) १० वीं प्रश्न देखो।

अक्षरानि ( अक्षरोंके दृष्टिसे ) १० वीं प्रश्न देखो।  
अक्षरानि ( अक्षरोंके दृष्टिसे ) १० वीं प्रश्न देखो।

रहनेवाले अय्, आय्, अय्, आय ( ए, ऐ, औ तथा श्री के आदेशके ) य् वा य् का विकल्पसे लोप होता है ।

२४वें पृष्ठमें ६ वा नियम देखो ।

७ । इदूदेतुद्वियधन प्रष्टयम् । १।१।११॥ ईकारान्त, ककारान्त, तथा एकारान्त द्वियधन प्रष्टय कटाता है । २६ वा पृष्ठ वा नियम ।

८ । एहि कृष्ण अनु गौधरति वा एहि कृष्णाऽनु गौधरति ( भव भूतो विकल्पते )—कपी + आगच्छत = कपी आगच्छत , हरी + एतो = हरी एतो , यिष्णू + इमो = यिष्णू इमो , पचते + इमो = पचते इमो , अमी + इशा = अमी इशा —

भूतप्रष्टया अचि नियम् । ६।१।१२५ ॥ अर आगे रहनेपर भूत और प्रष्टय को नियम प्रकृतिभाज होता है , अर्थात् इनमें कोई सन्धिकाय नहीं होता । २६ वा पृष्ठ नियम ५, तथा ६५ वां पृष्ठ टिप्पणी १ में देखो ।

९ । इयनुभव वा इय्यनुभव , कर्ता वा कर्ता , वर्तमान वा वर्तमान —

अचोरदाभ्यां इ । ६।४ ४६ ॥ अच्से पर रहनेवाले र् वा ह् के आन्धे पर् को विकल्पसे द्वित्व होता है । ७१ पृष्ठ २ नियम ।

१० । विम्ब + औष्ठ = विम्बोष्ठ वा विम्बौष्ठ , खूल + आन = खूलोनु वा खूलोनु —

ओत्थोष्ठयो समासे वा ( वातिक )—समासमें अ वलक वात् यन् ओष्ठु वा ओष्ठु आत् तो पर का ( ओष्ठु वा ओष्ठु का ) रूप विकल्पसे होता है ।

११ । हरे + अय = हरेऽय , विष्णो + अय = विष्णोऽय—

एङ् पञ्चान्तादिति । ६।१।१०६ ॥ अ आगे रहनेपर पञ्चान्तमें रहनेवाले एङ् की पूवराव एक आदेश होता है, अर्थात् अ का लोप होता है । २३वां पृष्ठ नियम ४ ।

अक सवर्ण दीर्घ । ६।१।१०१॥ मवण ( समान ) अच् अने रहनपर  
यस को दीर्घ एकादेश होता है । १८ व पृष्ठमें ६ वा नियम देखो ।

३। उप + हन् = उपहन् , परम + इश्यर = परमश्यर , रमा +  
इंश = रमेश , चन्द्र + उच्य = चन्द्रोच्य , गङ्गा + उच्यम् = गङ्गाउच्यम्,  
कृष्ण + अट्टि = कृष्णाट्टि , तव + लुकार = तवल्कार —

अदल् गुण । १।१२॥—अत् अ तथा एह्—ए, ओ गुण कहाते हैं ।  
५ वा पृष्ठ पद्या । आद् गुण । ६।१८॥ अयणक आमे यदि अच् हो तो उन  
दानांको ख्यानमें एक गुण आण्य होता है । १८ वे पृष्ठमें ८ वा नियम देखो ।

४। कृष्ण + एकत्वम् = कृष्णैकत्वम् , परम + एश्यम् = परमैश्यम् ;  
गङ्गा + आघ = गङ्गाघ , महा + आर्षधि वा ओषधि = महार्षधि ।

वृद्धिरच् । १।१।१॥ आत्—आ, तथा ऐच् ए, ओ वृद्धि कहाते हैं ।  
५ व पृष्ठमें ११ वा नियम देखा । वृद्धिरचि । ६।१।८॥ ( आत् एचि  
वृद्धि )—यन् अयणन् वा एव दा ता उन दोनों स्वराने ख्यानमें एक  
वृद्धि आदेश होता है ३५ व पृष्ठमें ३ वा नियम देखो ।

५। हरे + ए = हरय , विष्णो + ए = विष्णय , ने + अक = नायक ,  
पो + अक = पायक —

एवाऽपवायाव । ६।१।१०॥ अथ आग रहनपर एच्के ख्यानमें अच्  
अत्र, आय्, आत् ये आदेश होते हैं । २४ व पृष्ठमें ५ वा नि० देखो ।

६। हरे + एचि = हर एचि वा हरयचि , विष्णो + इह = विष्ण इह  
वा विष्णयिह , अये + उद्यत् = अया उद्यत् वा अयायुद्यत् , गुरो +  
आप = गुरा अपि वा गुरायपि—

मुनिहन्त पञ्च । १।४।१३॥ मुण् ( कारक विभक्तियां ) वा तिङ्,  
( लकारोक्त प्रत्यय ) जिनके अन्त में टी य पञ्च कहाते हैं ।

१४ वा पृष्ठ ४ वा नियम देखो ।

लोप जोरुख्य । ६।३।१८॥ जाकनगावायो मत्तं पञ्च अन्तमें

य रक्षनेवाले वण का मवण वण अर्थात् थ होता है । दूसरे भूत्से का विकल्पसे लोप होता है । ६४ प्रु, टिप्पणी देखो ।

१८ । तद् + दितम् = तद्धितम् वा तद्धितम्, वाक् + हरि = वाहरि वा वाग्घरि —

अयो होऽन्यतरस्याम् । ८।४।६२॥ अय परस्मै ह्य (पूर्ववचन वक्तृत्वेन) — अय् (वगके पहिले ४ वण) से पर रक्षनेवाले ह् को विकल्पसे वगका चतुर्थ वण होता है (कोकि वगका चतुर्थ ह् का मवण, जो घाघ तथा महाप्राण है) १०८ प्रु, १२ नियम देखो ।

१९ । तद् + शिव = तच्छिव वा तच्छिव, तद् + श्लोक = तच्छ्लोक वा तच्छ्लोक, पर वाक् + श्योतति —

अश्लोक्ति । ८।४।६३॥ इत्वमसीति याचमम् । अय से पर रक्षनेवाले को विकल्पसे ह् होता है, यदि उससे आगे अट् या कात्यायनसे अनुसार म् ही ८२ प्रु टिप्पणी देखो ।

२० । उद् + पतति = उरपतति —

खरि च । ८।४।६५॥ (अर्ला खरि चर) — चर् आगे रक्षनेपर क्ल् को चर होता है । ११ या प्रु देखो ।

२१ । पुष्पम् + हरति = पुष्प हरति, स्वम् + करोषि = स्व करोषि अश्लोकोपि हरिम् + व् = हरि वन्दे वा हरिषु दे ।

सोऽनुस्वार । ८।३।२३॥ (पञ्चान्तस्य, हलि) हल्-आग रक्षन पर पञ्चान्त रक्षनेवाले म् का विकल्पसे अनुस्वार होता है १४ प्रु नियम ५ ।

२२ । पत्यह् + आत्मा = प्रत्यहकारमा, सुगल् + इश = सुगयीशः, म् + अचुत = मद्रचुतः —

हमो वृक्षाच्च ह्मुत्त नियम । ८।३।३२॥ ५६ प्रु, नि ५ ।

२३ । शार्दिन् + हिन्यि = शार्दिहिन्यि, कान् + चन = कांचन, शालान् + ताडयति = शिडालांस्ताडयति —



## अध्वनसन्धि ।

१२ । घाञ् + इञ् = घागोञ् , चित् + वपुष् = चित्पुष् —  
 भाना लज्जास्ते । ८ । २ । ३८७ ॥ घञ्के अन्तमें रहनवाले भन्त् का  
 नञ् होता है । ७१ पृष्ठ नियम ३ ( घ ) ।

१३ । हरिम् + गेते = हरिश्गेत , रामञ् + चिनोति = रामचिनोति ,  
 मत् + चित् = मच्चित् , मत् + जन = मज्जनः , शरीद् + लयति = शरी  
 लयति —

ल्लोञ्जना घृ । ८ । ४ । ४० ॥ म् तथा तत्रग का ङ तथा चवर्ग का योग  
 रहनपर श् तथा चवर्ग होता है । २४ पृष्ठ नि ० ।

१४ । रामञ् + घृष् = रामश्घृष् , तत् + टोका = तट्टोका — घृष्ना घृष् ।  
 ८ । ४ । ४१ ॥ म् तथा तत्रगो को ष् तथा टवर्ग का योग रहनेपर ष् तथा ट  
 वर्ग होता है । ३० पृष्ठ, नियम ६ ।

१५ । तत् + मरश्म = तद्मरश्म वा तम्भरश्म , एतत् + सुरारि  
 = एतद्सुरारि वा एतम्सुरारि , तत् + मातुम् = तम्मातुम् , चित् +  
 मयम् = चित्मयम् , याक् + मथम् = याक्मथम् —

यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा । ८ । ४ । ४५ ॥ अनुनासिक आगे रहनपर  
 पदके अन्तमें रहनीवाले यर को अनुनासिक विकल्पसे होता है । प्रत्यये  
 भाषार्या नित्यम् । ७१ पृष्ठ नि ३ ( ब ) ३ ( फ ) ।

१६ । तत् + लय = तल्लय विद्वाद् + लिप्यति = विद्वांलिप्यति —  
 तोति । ८ । ४ । ६० ॥ ल् आगे रहनपर तत्रगको परसदृश होता है ।  
 १२१ वा पृष्ठ देखो ।

१७ । उञ् + स्थानम् = उत्थानम् , उञ् + कामनम् = उत्तमनम् ।  
 उत्थानम् तथा उत्तमनम् भी होता है पर प्रयागमें कम आता है ।

उञ् आकाशमी पूर्वम् । ८ । ४ । ६१ ॥ उञ् पूर्वक स्था तथा काम्  
 धातुको पूर्ववर्धय होता है । दूमरे मूत्रसे स्था तथा काम् के म् वा लक्ष

२९ । हरि + श्लेते = हरिश्श्लेते वा हरि श्लेते , हरि + स्फुरति = हरिस्स्फुरति, हरि स्फुरति, वा हरिस्फुरति—

वा शरि । ८।३।३६॥ शर् आगे रहनेपर विभक्तिको विभक्त होता है अर्थात् यह कायम रहता है । ३५ प्रपु, नि १ ।

उपरि शरि वा विभक्तलोपो उक्तव्य — ऐसा शर् निभके बाद यग हो, आगे रहनेपर विभक्तिका विकल्पसे लोप जाता है । राम + स्याता, राम स्याता, वा रामस्याता ।

३० । स + जग्मु = स जग्मु , एष + विष्णु = एष विष्णुः , पर एषक + रुद्र = एषको रुद्र , अस + शिव = अस शिव , वा असशिव , एष + अतु = एषोऽतु—

एतत्तन्ने सुलोपोऽकारनञ् समासि हलि । ६।१।१३२॥ हल आगे रहने पर ककाररहित एनद् तथा तद् को ष् का लोप होता है , पर नञ समासमें नहीं होता । (इसलिये एषको रुद्र और अस शिव) ३५प्रपु नियम २ ।

### अन्तर्गत सन्धि ।

३१ । पितृ + नाम + पितृणाम् , कर + न = कण , कृष + न = कृष्ण रामेण, रामाणाम्, रामान्—

रघान्यां नो ख समानपठे । ८।४।१॥ एक ही पत्रमें र् तथा ष को प्राग् प्रागवाले न् को ण् होता है । १० प्रपु, नि १ ।\* अर्थात् अथ कर्त्तव्यम् — अथ को प्राग् प्रागवाले न् को ण् होता है । १० प्रपु, नि १ । अर्त्कृत्प्रादनुम् अवापेऽपि । ७।४।२॥ अट्, कृ—कयग पु—पयग, आट् (उपसग आ) नुम् (अनुच्चार) इनका व्यवधान होनेपर भी, अर्थात् अ, र् वा ष तथा न् को बीचमें अट् अर्थात् रहनेपर भी न् को ण् होता है । प्रपु १० नियम २ ।

\* पाठिनिक सूत्रोंकी न्यूनता काव्यायनन अपने वाकिकी पूरणी की। वाकिक अन्तर्गत वाच्यम् वा कलव्यम् आता है। इन लोपोंकी न्यूनता भाव्यकार पल्लवनिने पूरणी का जिनके नियम प्रति कर आते हैं। इतियोंके अन्तर्गत 'इत्यन् आता है।

मन्त्रप्रयोगान् । ॥१०३॥ २८ पृष्ठ, नि ३ । प्रमान् अथवाऽपि । प्रान् + प्रिरोमि = प्रमाञ्जिवाति, प्रमाञ्जिनानि नदी ।

२७ । ए + हापा = एहापा, अ + हिनत् = अहिनत्, वि-  
ए - विहत् -

ए च । ६।१।०३॥ छ्वाग रदन पर कृष्णका मुक्त आगम होता है ( १. त्रिमका 'लाघुमा यु' से च होता है ) १२६ पृष्ठ, १ टिप्पणी - छा ।

अहिनत् -

१।घण । ६।१।०५॥ छ्वाग रदनपर शोधको भी मुक्त आगम होता है, १२६ पृष्ठ टिप्पणी १ - छा ।

सहमी + हापा = सहमीहापा या सहमीहाया -

पञ्चान्ताद्वा । ६।१।०६॥ पञ्चान्तमे रदनप्राप्ते शोधका त्रिकल्पस मुक्त आगम होता है १२६ पृष्ठ टिप्पणी १ ।

आ + हापति = आहापति मा + हिन्ति = माहिन्ति ।

आह्वापाय । ६।१।०७॥ यह 'पञ्चान्ताद्वा' का आधिक है । आ तथा मा को नित्य मुक्त होता है १२६ पृष्ठ, टिप्पणी १ ।

### विसर्गसन्धि ।

२५ । म + रय = मनोरय, म + टर = मनोटर वीर + शक्ति = योगशक्ति । पृष्ठ १८ नियम ७, ८ तथा पृष्ठ २३ नियम ४ ।

२६ । युक्त + चपतति = युक्त चपतति, आला + आगच्छन्ति = आला आगच्छन्ति, देवा + जयन्ति = देवा जयन्ति । पृष्ठ १९ नियम ९, तथा १४ पृष्ठ, नियम २ ।

२७ । कवि + शन्ति = कविरन्ति, मनी + श्रवत्यानि = मनोरपत्यानि, नि + रस = नोरस, नि + राग = नीराग २३ पृष्ठ, नियम २ तथा ३ ।

२८ । अल + चरति = अलचरति, अन + तरति = अनचरति, राम + टोक्ते = रामटोक्ते । पृष्ठ १३ नि १, तथा पृष्ठ २९ नियम ४ ।

३७ । वृष् + त = वृध् + ध = वृद्ध + ध = वृद्ध ।

भ्रमस्योपो ऽघ । १८२।४०॥ भ्रमसे पर आनवाले त तथा थ् को घ् होता है, पर धा धातुको त् वा थ् को नहीं होता । १८६ पृष्ठ, नियम (आ)।

३८ । लिह् + ति = लेह् + ति = लेट् + टि = लेठि, लेटा, लीट्, ऊट् —

लिह् + अति = लेह् + अति = लेट् + अति = लेक् + अति = लेक् + थति = लेक्षति—

हो ट् । १८२।३९॥ भ्रल आगे रहनेपर वा पान्तमें ह् को ट् होता है १८६ पृष्ठ, नियम (अ) ।

घटो क सि । १८२।४१॥ घ् आगे रहनेपर घ तथा ठ को क् होता है १७४ पृष्ठ नियम (ए) ।

३९ । दुह् + तासि = दोह् + तासि = दोघ् + घासि दोग + घासि = दोगघासि, दोह् + आसि = ाघ् + आसि = धोघ् + आसि—  
दादेर्धातोघ । १८२।३८॥ भ्रल आगे रहनेपर वा पान्ते अन्तमें दकाराणि धातुको ह् को घ् होता है । १८७ पृष्ठ, नियम (ई) ।

एकाधो वशो भय् भ्रपन्तश्च क्कवा । १८२।३७॥ पृष्ठ १८८, नि (ए) ।

४० । द्रोग्धा, द्रोडा, स्नेह् + अति = स्नेक् + अति हत्यादि = स्नेक्षति, मूढ् वा मुग्ध—

वा द्रुह्मुह्ण् ह्यिहाम् । १८२।३३॥ भ्रल आगे रहनेपर वा पान्तमें द्र ह् मुह् स्नुह् तथा स्निह् को ह् को चिकरणसे घ् होता है, पक्षमें ट् होता है । १८७ पृष्ठ, नि (व) ।

४१ । नह् + ता = ण् + ता = नध् + धा = नह्ता, नक्षति, छपा-  
नक्षि —

नहो घ । १८२।३४॥ भ्रल आगे रहनेपर वा पान्तमें नह् के ह् को घ् जाता है । १८७ पृष्ठ, नियम (उ) ।

४२ । सघ् + त = सट् + त = सट् + ध = सट् + ट = सोट, योटुघ्—

३२ । वाच + सु = वाक् + सु —

वा कु । ७।२।३०॥ भक्तु आगे रहनेपर वा पदान्तमें सु—चवगको कु—कवग होता है ५६ पृष्ठ नि २ ।

३३ । वाच + भ्याम् = वाक् + भ्याम् = वाग्भ्याम्, वुघ् + घ = वुङ्घ + घ = वङ्घ, लभ् + घ = लघ्य, वुघ् + घ = वुग्घ ।

भवा लङ् भक्ति । ८।४।५३॥ भक्त आगे रहनेपर भल को लङ् होता है । १६८ पृष्ठ, नि (घ) ।

३४ । वाक् + सु = वाक् + सु = वाक् कमल + सु = कमल + सु = कमलु धार + सु = वाधु रामे + सु = रामेषु, हरियु, वृषु, वधुषु, पान्शु रमाषु ।

आदेशप्रत्यययो । ८।३।५८॥ \* इत् तथा कवगके पर पन्शे अन्तमें न रहनेवाले आदेश वा प्रत्ययकी घ् की सूचन अथवा घ् होता है । ५६ पृष्ठ, नियम ४ ।

३५ । शाम् + त = शिष् + त = शिष् + ट = शिष्ट चरित, अघ् + इत् = अक्ष् + इत् = अक्ष् + इत् = अक्षित ।

शामिश्रमिधमोर्ना च । ८।३।६० ॥ इत् तथा कवगके पर काष्, वष्, तथा घम् वा घ् का घ् होता है । १०२ पृष्ठ, नियम ( इ ) ।

३६ । पुना + रामे = पुनारमम् ।

रो नि । ८।३।९४॥ र आगे रहनेपर र् का लोप जाता है २३ पृष्ठ, नियम ३ ।

टनावे पूषथ शीर्षोऽण । ६।३।१११॥ ट् तथा र् को लोप करमेवाल वल अर्षोत् ट् तथा र आगे रहनेपर पूष अण् ( थ, ड, ष ) को शीर्ष होता है । १८० पृष्ठ नि० ( इ ) ।

\* इत् इत् प्रवाहार इत् मन्थ कि मन्थका है चवत् व व च, ल, घ का है, २१ इत् व र ल् ।

१ । भ्वादि ।

वञ्चि अभिधानस्तुयो ( वन्दने ) ।  
 वञ्चि सिञ्चिञ्चलने ( स्फुल्ल ) ।  
 वृषुष् सञ्जायाम् ( ज्ञेयिणे ष्से ) ।  
 वसूष् वदने ( वक्षामिध्वे वक्षाम्ध्वे ) ।  
 कसु पादविलेपे ( क्षमित्वा क्रात्वा,  
 क्रात्वा ) ।  
 कसु श्नी ।  
 गाहृ विलोढने ।  
 शसु स्तुता ।  
 यसु ध्वसु असु श्रयस्त्र सन ।  
 वसु वतन ( वसित्था—वृत्ता ) ।  
 वधु वृत्ता ।  
 काहृ प्रस्रवणे ।  
 कृषु सामर्थ्ये ।  
 रसु ह्रीडायाम् ।  
 असु चला ।  
 यन्ल विशरणप्रत्ययसान्नु ( लुह्—  
 श्रसन्त् ) ।  
 गुहृ मवरणे ।  
 मन्त् सन्त् गतो ( श्रमसत्, श्रसपत् )  
 पत्त् गतो ।  
 इशिर् प्रेक्षणे ( श्रशत् श्रदाक्षीत् )  
 डीह् विद्यापना गतो ( डपते ) ।  
 डैह् पालन ।  
 श्रिञ् मीढायाम् ( श्रयति त ) ।

भञ् भरणे ।

दृञ् दरणे ।

शीञ् प्रापणे ।

धृञ् धारणे ।

२ । अदादि ।

चक्षिह् व्यक्ताया वाचि ।

श्रीह् स्वप्ने ।

पूह् प्राणिमभविमोचने ।

पुञ् क्षुत्ते ।

ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि ।

सूञ् शुद्धे ।

कश्चि अर्थाविभाषन ( प्ररीक्षीत्—  
 अशस्त ) ।

शासु अनुशिष्टे ।

३ । लुहीत्यादि ।

लुभञ् धारणपोषणयो ।

ओडाह् गता ।

दुदाञ् ज्ञान ।

दुधाञ् धारणपोषणयो ।

४ । दिवादि ।

दिवु क्रीडायां ।

तृषी चर्हणे ।

वृत्ती मातृविधिषे ।

वनौ प्रादुभाये ।

शसु वपशमे ।

तसु काहृद्यायाम् ।

### पाणिनिकी सञ्ज्ञाओंके अर्थ ।

लट्—अनमान, लिट्—परोक्षभूत, लुट्—अनद्यतनभविष्यत् ;  
 नृट्—सामान्यभविष्यत्, खेट्—विधि (वैशिक), लोट्—आना,  
 लङ्—अनद्यतनभूत, लिङ्—विधि तथा आशीर्वादिङ्, लुङ्—सामान्य  
 भूत, लृङ्—क्रियातिपत्ति ।

लिट्—प्रोक्षायक प्रत्यय, लृट्—इच्छायक प्रत्यय, लृङ्—पौन  
 पुण्यायक ( द्वार २ छेनेके अर्थमें ) प्रत्यय ।

अङ्गन्तोऽकारान् या यक्षास्त्रनिट् एलि वेडयम् ।

अङ्गन्त इट् नितानिट् काट्यायी लिटि खेट् भवेत् ॥

अङ्गन्त या एना धातु जिनमें अकार हो, सांतास ( अनद्यतनभविष्य का  
 प्रत्यय ) आगे रहने पर अनिट् होता है, लृट् ( परोक्षभूतका प्रत्यय ) आगे  
 रहने पर खेट् होता है, इस प्रकारका अकारान्त धातु नियम अनिट् होता है,  
 और कृ इत्यादि ( कृ, ख, भ, ख, लु, लृ, लृ, लृ ) के लिये अन्य धातु  
 लिट में खेट् होने हैं । २६२ प्रष्टु, नि ८ तथा २६३ प्रष्टु नियम १०, ११ ।

सङ्कृत व्याकरणोंमें धातु कुल अनुबन्धोंके साथ दिये गये हैं, जैसे—  
 लृङ् अङ्गो, मङ् मरणी, हुङ्ङ् करणे, लृङ् लृणणे, लिङ् लृणीकरणे,  
 धनु अनवस्थान, गृतो गानुवितपे । इन धातुओंमें ल, ख, ल, क, इरु,  
 ल तथा लृ ये अनुबन्ध हैं । लृ अनुबन्धवाले धा-ओंमें नियमसे लुङ्का  
 द्वितीय प्रकार होता है, इरु अनुबन्धवाले धातुओंमें विवरपक्ष लुङ् का  
 द्वितीय प्रकार होता है, ल अनुबन्धवाले वेट् है, लृ अनुबन्धवाले  
 आत्मने तथा ल अनुबन्धवाले लभयपत्नी होत हैं, ल अनुबन्धवाले धातु  
 ओके अन्वयभूत कृन्तमें विकररसे इ आगम होता है इ अनुबन्धवाले  
 धातुओंमें ल आगे रहनेपर इ आगम नहीं होता । यद्यपि धातुओंका उनको  
 अनुबन्धोंके साथ या करना परियोजना काम है परन्तु यह परिश्रम सफल  
 है, काकि विशाचियोंको या करना सुगम होता है । प्रधान धातु उनको  
 अनुबन्धोंके साथ जोड़ दिये जाते हैं —

१ । भ्वादि ।

वदि अभिवादनस्तयो ( वन्दते ) ।  
 स्पदि किञ्चिच्चलने ( स्पन्दते ) ।  
 वृप्पूर् लक्ष्णायाम् ( वेपिर्षं ष्से ) ।  
 क्षम्पूर् घट्टन ( चक्षमिध्वे चक्षर्ष्वे ) ।  
 क्स्वु पाठवर्त्तप ( क्स्वित्वा-क्कात्त्वा,  
 क्स्वत्वा ) ।  
 अस् अइने ।  
 गाष्ट्रं थिलोहने ।  
 अस् सुता ।  
 अस् ध्वस् अस् अत्रस्त घने ।  
 वृप् वत ( वृत्तिस्त्वा—वृत्ता ) ।  
 वधु वडो ।  
 क्स्वर्त्त प्रक्षयणे ।  
 कृप् सामर्थ्ये ।  
 रस् क्रीडायाम् ।  
 अस् सला ।  
 यल् विशरणमत्ययसामान्ये ( लुह्—  
 अस्त् ) ।  
 गुह् मवरणे ।  
 गम्भ सप्त् गतो ( अगमत्, अरपत् )  
 पल् गतो ।  
 वृश्चिर् मेत्तणे ( अइश्चत् अत्तौत् )  
 डोह् विहायमा गतो ( डयते ) ।  
 वेह् पालने ।  
 अिज्-सैवायाम् ( अयति त ) ।

भृप् भरणे ।

दृज् हरणे ।

खीज् प्रापणे ।

धृज् धारणे ।

२ । अदादि ।

चत्तिह् व्यक्ताया वाचि ।

शौह् क्षमे ।

पूह् प्राणिगभविसोचने ।

पुज् क्षुतो ।

मूज् व्यक्ताया वाचि ।

गन् शुद्धौ ।

दन्नि अशुचिसोचन ( अरोडौत्—  
 अस्त् ) ।

शाशु अनुशिष्टौ ।

३ । लुहोत्तरादि ।

दुमज् धारणपापणया ।

श्रोदाह् गतो ।

दुनाज् दाने ।

दुधाज् धारणपापणया ।

४ । दिवादि ।

दिवु क्रीडाणिषु ।

गुषी चङ्गे ।

वतो मातृविच्छेपे ।

सनो प्रादुर्भावे ।

अमु सपशने ।

तमु फाह्छायाम् ।



ऋषु उपशमं ।  
 ऋषु तपसि षेदं च ।  
 भ्रुषु अनश्रम्याने ।  
 सम सहन ।  
 ऋषु ग्लानां ।  
 मन्त्रौ हर्षं ।  
 ऋषु क्षेपणं ।

## ५ । स्यादि ।

पुन श्रमिषये ।  
 चित्र चयन ।  
 मृष आङ्गान्न ।  
 उज्ज वरण ।  
 वज्ज कम्पन ।  
 गक्त् शक्ती ।  
 वाप्ल वाप्तौ ।

## ६ । तुदादि ।

वन्दो हृदय ।  
 दृद् आन्द्रे ।  
 धृद् श्रयस्थान ।  
 प्रह आधामे ।  
 मद् माणयामे ।  
 मन्लु विशरणात्सि ।  
 मुव्त् माणल ।  
 सुप्त् देन ।  
 विप्त् लाभे ।  
 वृत्तौ देन ।

## ७ । रुधादि ।

रुधिर श्रावणं ।  
 द्विप्त् द्विधीकाण्ये ।  
 मिप्त् विदारण्ये ।  
 रिप्त् विरेचने ।  
 युप्त् योगे ।  
 शिप्त् विशेषण्ये ।  
 पिप्त् सचूर्णन ।  
 श्रुप्त् व्यक्त्यात्सि ।

## ८ । तनादि ।

तनु विस्तार ।  
 तणु तिसणु द्विभाषाम् ।  
 मनु श्रवणीधने ।  
 यनु पाचनं ।  
 दुक्त् फरणे ।

## ९ । क्रादि ।

दुक्तीज द्रव्याग्निमय ।  
 ग्रीप्त् तपण्ये कान्तौ च ।  
 पूज् पयने ।  
 क्षुप्त् श्रावणान्न ।  
 शृज् धरणे ।  
 धृज् कम्पने ।  
 लृज् ह्येन ।  
 क्रिप्त् विशाधन ।

## १० । चुरादि ।

चृज् कम्पने ।  
 मीप्त् तर्पणे ।

## परिशिष्ट ( ग ) ।

सदन्त रूप ।

घातु	भू कृ	अथ सृ कृ	तुम्
जा	जात	जात्या	जातुम्
स्था	स्थित	स्थित्वा	स्थानुम्
दा	दत्त	दत्त्वा	दानुम्
श्राप्	श्रात् श्रात्त	श्राप्य	श्रादानुम्
प्रप्	प्रत्त प्रत्त	प्रप्य	प्रदानुम्
धा	हित	हित्वा	धानुम्
पा	पौत	पौत्वा	पानुम्
हा-होङना	होन	हित्वा	हानुम्
हा जाना	जान	हात्या	हानुम्
नी	नीत	नीत्वा	नितुम्
शु	शुत	शुत्वा	शानुम्
कृ	कृत	कृत्वा	कानुम्
तृ	तीण	तीत्वा	तरितुम् तरीतुम् तनुम्
पृ	पूण	पूत्वा	परितुम् परीतुम् पनुम्
ट	हृत	हृत्वा	हानुम्
शै	गीत	गीत्वा	गानुम्
शै	ग्रात्त ष	ग्रात्वा	गानुम्
है	ज्ञान	ज्ञात्या	ज्ञानुम्
रले	रलान	रलात्वा	रलानुम्
सो	सित	सित्वा	सानुम्

पच्	पक्	पक्ता	पक्तुम्
मुष्	मुक्त	मुक्त्वा	मोक्तुम्
युन्	युक्त	युक्ता	योक्तुम्
वत्	वत्त	वृत्त्या वृत्तित्वा	वर्तितुम्
श्रद्	श्रग्ध	श्रग्ध्वा	श्रत्तुम्
खिद्	खिन्न	खित्वा	खेत्तुम्
क्लिद्	क्लिन्न	क्लित्वा	क्लेत्तुम्
क्रुध्	क्रुद्ध	क्रुद्धा	क्रोद्धुम्
तन्	तत्त	तत्त्वा तनित्वा	तनितुम्
मन्	मत	मत्वा	मन्तुम्
द्वन्	द्वत्त	द्वत्वा	द्वन्तुम्
खन्	ख्यात	खनित्वा ख्यात्वा	खनितुम्
जन्	जात	जनित्वा	जनितुम्
लभ्	लब्ध	लब्ध्वा	लभ्युम्
गम्	गत	गत्वा	गन्तुम्
नम्	नत्त	नत्वा	नन्तुम्
यम्	यत्त	यत्वा	यन्तुम्
रम्	रत्त	रत्वा	रन्तुम्
क्राम्	क्रान्त	क्रामित्वा, क्रान्ता, क्रान्ता	क्रामितुम्
शम्	शान्त	शामित्वा, शान्ता	शामितुम्
प्रच्छ्	पृष्ट	पृष्ट्वा	प्रष्टुम्
विश्र	विष्ट	विष्ट्वा	वेष्टुम्
दग्	दृष्ट	दृष्ट्वा	द्रष्टुम्
दृज्	दृष्ट	दृष्ट्वा	मष्टुम्
नग्	नष्ट	नष्ट्वा	नष्टुम्
यज्	दृष्ट	दृष्ट्वा	यष्टुम्

यष	उस	उपुत्या	यपुस
यच्	उक्त	उक्ता	यक्तु म
यष्ट	ऊठ	ऊठा	योठुम
यम्	उषित	उषित्वा	वषुम
यद्	उदित	उदित्वा	यत्तुम्
यध्	विह्व	विह्व्या	यह्वु म
ग्रह	गृहीत	गृहीत्वा	ग्रहीतुम्
लिह्	लीठ	लीठा	लेठुम्
हुह्	हुग्ध	हुग्धा	होग्धम्
नह	नह	नहा	नहु म
षह्	षोठ	षाठा, षहित्वा	षाठम षहितुम
भङ्ग	भग्न	भक्ता, भङ्क्ता	भङ्क्तु म्
बभ्	बहु	बहु	बहु म्
चुर	चोरित	चोरयित्वा	चोरयितुम्
कृ प्रे०	कारित	कारयित्वा	कारयितुम्
निवित्रु प्रे०	निवेन्त	निवदा	निवेन्पितुम्
अवगण्	अवगणित	अवगणय्य	अवगणयितम्
विरच्	विरचित	विरचय्य	विरचयितुम्

---

धातु भू कृ  
 व्या—व्रीन  
 क्षि—क्षित क्षीय  
 शी—शयित  
 डी—डीन्  
 लू—लून  
 ल—लाम  
 मरन्—मर  
 मद्—मत्त  
 प्याय्—प्यान, पीन (पीन मुखम् ।  
 अन्यत्र प्यान पीन स्त्री)  
 म्नाय्—म्नोत  
 ल्वर—ल्वरित लूर्ण  
 फल—फल  
 श्वि—श्वित श्विन ( विलिगीषाया  
 श्वितम् )  
 धाव्—धौत  
 श्विक्—श्वित  
 श्विक्—श्वित  
 श्विक्—श्वित  
 श्विक्—श्वित  
 मुह्—मुरध—मूढ  
 निर वा—निर्वात व ( निर्वाणो  
 ऽग्निभुनिय निर्वातो वास ) ।  
 घा—घात व  
 षी—षीत व

धातु—धव भू कृ  
 प्र स्या—प्रस्थाय  
 वि जि—विक्रिय  
 प्र स्तु—प्रस्तुत्य  
 अधि श्—अधीत्य  
 श्नु कृ—श्नुकृत्य  
 जि स्तृ—जिस्तृत्य  
 श्नु भू—श्नुभूय  
 वद् तृ—वत्तोर्य  
 श्राष्ट—श्राष्ट्य  
 श्नु मस्—श्नुमस्य  
 नि दन्—निदन्त्य  
 श्रा गम्—श्रागस्य, श्रागत्य  
 नि यम्—नियस्य, नियत्य  
 प्र णम्—प्रणस्य, प्रणत्य  
 वि रम्—विरस्य, विरत्य  
 अप वद्—अपोद्य  
 प्र षव—प्रोषव  
 उष वस—उषोष्य  
 श्नुवन्—श्नुवन्त्य  
 सम शी—समश्य  
 कत्तरि श्रुतकृदन्त ।  
 गम्—गतवत्  
 कृ—कृतवत्  
 परीक्षभृ कृदन्त ।  
 दा—ददिवत्



शू—शुश्रूत् तौ  
 श्रु—श्रुयत् तौ  
 शास—शासत् तौ  
 जसृ—जसृत् तौ  
 हन्—हन्त् तौ  
 जामृ—जामृत् तौ  
 आत्मने ।

शास्—शासीन ना  
 श्राधिष्—श्राधीयान ना  
 शू—शुवाण या  
 शी—श्रयान ना  
 श्रु—श्रुवान ना  
 हंश—हंशान मा  
 जसृ—जसाण या  
 जमृ—जमान ना  
 परस्मै ।

शु—शुश्रूत् तौ  
 हा—(होइना) जसृत् तौ  
 भी—भिम्यत् तौ  
 हा—हन्त् तौ  
 ही—जिहृयत् तौ  
 भृ—विधत् तौ  
 निज्—नेनिजत् तौ  
 आत्मने ।  
 हा ( जामा )—जिह्वान ना  
 भा—भिमान ना

दा—ददान ना  
 भ—विधाण या  
 निज्—नेनिजान ना  
 परस्मै ।  
 स्वा वि—विश्रवत् तौ  
 श्राप्—श्राप्नवत् तौ  
 श्रु—श्रुयवत् तौ  
 हृ—हृयवत् तौ  
 आत्मने ।

वि—विश्रवत् ना  
 श्राग्—श्रागुवान-ना  
 हृ—हृयवान ना  
 परस्मै ।

स रुध्—रुधत् तौ  
 श्रश्—श्रश्नत् तौ  
 क्लिद्—क्लिन्दत् तौ  
 हिम्—हिंसत् तौ  
 आत्मने ।  
 रुध्—रुधान ना  
 इन्ध—इन्धान ना  
 क्लिद्—क्लिन्धान ना  
 भुज ( खाना )—भुजान ना  
 परस्मै ।

तना तद्—तद्वत्—तौ  
 कृ—कृयत्—तौ  
 चण—चयवत् तौ

आत्मने ।

तन्—तन्धान ना

कृ—कृत्याप-या

यन्—यन्धान ना

परस्मै ।

कृग क्री—क्रीणत् ती

घृ—घृह्णत् ती

मुष्—मुष्यत् ती

ज्ञा—ज्ञानत्-ती

बभ्र—बभ्रत्-ती

आत्मने ।

क्री—क्रीणान ना

घृ—घृह्णान-ना

ज्ञा—ज्ञानान ना

भवि कृदन्त ।

कृ—करिष्यत् ती स्त्री

गम्—गमिष्यत् ती स्त्री

शी—शियिष्यमाण-या

कृ—करिष्यमाण या





## शुद्धिपत्र ।

—०—

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	ऋ	ऋ
४	अन्तिम	स्मर + अ	स्मर् अ
६	१४	सुजाना	सुभाना
६	२१	छते	छूते
७	१	उपर	ऊपर
१०	१४	ऋ	ऋ
१०	१५	न	न्
१०	१७	कण्	कण्ड
१७	१४	रामाणाम	रामाणाम्
१७	२३	णमें	ण् में
१८	हेडिंग	स्कृत	संस्कृत
१८	१	व्याघ्रभ्य	व्याघ्रेभ्य
१८	८	वृक्षाद्	वृक्षाद्
२०	४	अपके	अर्थके
२१	२०	इरीणाम	इरीणाम्
२१	२६	भानुभ्याम	भानुभ्याम्
२७	४	पुप्याणा	पुप्याणां
२८	८	मस	मस्

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
२८	१६	मस	मस्
३२	२१	प	प्र
३२	२३	सवे ण	सवेण
३३	८	पनिद्ध	पु लिद्ध
३३	८	सव	सर्व
३५	१	उनके	उनकी
३५	२३	देवता	देवता
३७	६	कुलपते	कुलपते
३७	८	विघ्नघ्न	विघ्न
३७	२२	श्वश्व	श्वश्या
३८	२०	वध्वी	वध्वी
३८	०	अति छ्म	अतिसूक्ष्म
४०	१५	होतेते	होते
४१	इडिग	अर	और
४३		और	और
४४	३	प्रनिदिन	प्रतिदिन
४५	अन्तिम	समास	समान
५३	२१	भगवन्तो	भगवन्ती
५६	१७	कसन्के	कमन्के
५८	१७	श्री	शैल
५८	११	अव्यय	अव्यय

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
५८	टिप्पणी	लचीवत्	लक्ष्मीवत्
५८	२	भूमिमत्	भूमिमत्
५८	”	सप्राप्त	समाप्त
६०	५	स्त्रीलिङ्ग	त्रीलिङ्ग
६०	अन्तिम	प्रहर्तम्	प्रहर्तुम्
६३	”	ल्ल—	ल्ल—
६४	७	निले	निये
६४	१६	मत्र	मैत्र
७५	१६	भ्वा	भ्वा
८३	४	विद्येतते	विद्योतते
८४	८	(ष्टरा)	(ष्टुरा)
८४	१८, २०	कर्ता कर्त	कर्ता कर्त
८७	५	नृणा	नृणा
८०	५	जाता है	आता है
८०	८	स्थानम	स्थानम्
८५	हेडि ग	ऋकारान्त	ऋकारान्त
८६	१	१७	१८
८६	१४	वस्तु	वस्तुपु
८८	१७	पूर्वके	पूर्वके
१००	८	३	२
१००	१७	द्वैवायत्त	”

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१०८	४	प्रेरणार्थक	प्रेरणाथक
१०८	४	समासाद्य	समासाद्य
११०	३	(रत्नम्) पु	(रत्नम्) न
११०	१२	ब्राह्मण	ब्राह्मण
१११	टिप्पणी	प्रयद्	प्रत्यद्
११२	११	रतपरीक्षा	रत्नपरीक्षा
११३	२२	पुप—	पुप्—
११४	२	द्वि व	द्वि व
"	,	उ व	व व
"	१८	स्नात्—	स्नात्—
११६	६	साधु	साधु
"	२०	(अद्भम्)	अद्भम्
११७	२०	वाल्मीकि	वाल्मीकि
११८	५	साध	साधुत्व
११८	२१	जाता	आता है
१२०	४	किय	किया
१२०	१२	सेदिवद्भ्य	सेदिवद्भ्य
१२०	१६	सेदियाम	सेदिवांस
२२१	१२	गरिष्ठ	गरिष्ठ
१२१	२०	बलिष्ठ	बलिष्ठ
१२२	२४	क्लेशान्	क्लेशान्

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१२३	१	तिष्ठन्ते	तिष्ठन्ते
१२४	७	भ्राष्ट	भ्राष्ट्र
१२५	२१	घोर	घौर
१२६	५	एकद्वि.	एक, द्वि.
१३१	२४	सुष्टु	सुष्टु
१३४	अन्तिम	स्थिय	स्थिय
१३५	१८	अच्चि	अस्थि
१३५	२०	अचन्	अस्थन्
१३५	टिप्पणी	रजम्बला	रजस्वला
१४०	अन्तिम	शृण	शृणु
१४३	७	पररमपद	परस्मैपद
१४५	२०	ध्रुवा	ध्रुवा
१४८	३	तुम	तुम्
१४८	२०	दीरधु	दीग्धु
१५०	१५	अक्रोणाय म्	अक्रोणायाम्
१५१	१८	सम्यत्सम्पद	सम्पत्सम्पद
१५३	१३	(ज व)	(ज व)
१५३	१५	ओजस्विता	ओजस्विता
१५४	१२	(सुयोधन)	(सुयोधन)
१५८	२१	ब्रूषीत	ब्रूषीत
१६३	२०	वृद्धि	विद्धि

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१६४	१८	अशुठी	अशुठी
१६५	०	करण	कारण
१६७	१६	त्व	त्वा
१६८	१५	भस्ज	भस्ज्
१६८	१५	श्वस	श्वम्
१७५	१८	देवेन	दैवेन
१७८	टिप्पणी	प्रत्यग	प्रत्यय
१८३	"	रुन्धम्	रुन्धम्
१८४	२०	भिन्ते	भिन्दताम्
१८४	२४	भिन्ते	भिन्दताम्
१८५	२	अभिन्ताम्	अभिन्ताम्
१८७	२२	दृष्ट	द्रुष्ट्
१८८	२२	दिवसे	दिवस
१८९	अन्तिम	अनुकूल	अनुकूल
१८२	टिप्पणी	रञ्ज	रञ्ज्
१८४	२२	मकारो	नकारो
१८७	४	—तृत—	—तृतृ—
१८७	१८	विभराम हे	विभरामहे
२०२	१४	पाप	पाप
२०३	५	कत	कृत
२०३	६	पुनर्दर्शनानि	पुनर्दर्शनानि

पृ०	प०	अग्रह	शुद्ध
२०८	१२	यावनमत्यक्रामत्	यीवनमत्यक्रामत्
२११	१	श्वतस	शततस
२१८	१	अवयव	अवयवै
२१८	७	अव्ययीभाव	अव्ययीभाव
२२१	५	अपर	अपर
२२१	६	मध्याह्न	मध्याह्न
२२१	१३	कमलम	कमलम्
२२५	हेडिग	तत्प रूप	तत्पुरुप
२२५	१	कोट	कोट
२२६	अन्तिम	उत्पस	उत्पस
२२८	२	सविज्ञान	सविज्ञान
२२८	१५	इत्यादि	इत्यादि
२३३	६	(विहार)	(विहार)
२३४	१३	शब्दसमष्टा	शब्दसमष्टौ
२४०	१०	प्रजायन्त	प्रजायन्ते
२४०	१६	च्छ्रोतु—	च्छ्रोतु—
२४१	३	रुदता	रुदतो
२४४	१	(परिचय)	(परिचय)
२४७	८	परिवर्तन	परिवर्तन
२४७	२४	धातुको	धातुभीको
२४७	टि० ३	उद्दन्तै—	ऊद्दन्तै—



पृ०	प०	अग्रद	शुद्ध
२५०	३	मुट्	लट्
२५०	८	मुड्	लड्
२५१	७	हृध	हृध
२५२	८	अनामिक	अनुनामिक
२५३	७	प्रकृत	प्रकृति
२५६	७	मारकी	मोरकी
२५७	२२	हृहृघ	यहृघ
२६२	७	चिक्राय	चिक्राय
२६२	१२	पमच्छ	पमच्छु
२६२	१७	जङ्गु	जङ्गु
२६३	७	अविकार	अविकारक
२६३	१४	र, व	र्, व्
२६६	१	गुण सन्निपाते	गुणसन्निपाते
२६६	१७	पररपर	परस्पर
२६७	५	हृत्ति	हृत्ति
२७०	१८	ऋकारान्त	ऋकारान्त
२७१	८	वच	वच
२७३	३	पूर्व	पर
२७३	अन्तिम	ब्राह्म	ब्राह्मण
२७५	२	शखाये	शाखाये
२७५	३	वप	वप

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२७८	१५	माला कारा	मालाकारा
२८२	२०	मात	मिति
२८५	६	(स्त्री)	(स्त्री)
२८६	१५	दूर्धी	दुधी
२८१	हेडिग	दित	तदित
२८३	८	दर्शन	दर्शन
२८४	२	पड	पड्
२८४	५	परिष्वजे	परिष्वजे
२८८	३	अवादिष्ठाम्	अवादिष्ठाम्
२८८	१७	इष्ठाम्	इष्ठाम्
२८८	अन्तिम	अचानिप	अचालिपु
३०५	१३	न्यत	न्यत
३०६	११, १३	यतयस्य	यतयोऽस्य
३०६	१६	रत्युपाय	ऽस्युपाय
३०६	१६	तेनत्यन्तिक	तेनात्यन्तिक
३०८	२०	सदनुण	सद्गुण
३०८	५	क्रया	चुरा
३१०	६	चित्तिधेनुरिव	चित्तिधेनुरि
३१३	२४	रुद्रैच्छिन्ना	रुद्रैच्छिन्ना
३१४	१३	तावुभो	तावुभौ
३१६	१७	कुरनेमे	करनेमै

श्रुति	सं०	अर्थ	शब्द
१११	१	उरु	उरु
१११	१५	शोधन	शोधन
११३	७	समाधानं च्चनानां समाधानं च्चनानां	समाधानं च्चनानां
११३	१५	चक्षुः शब्द	चक्षुः शब्द
११७	१०	शब्द	शब्द
११७	८	मूर्ध्निनाकार	मूर्ध्निनाकार
११८	७	मूर्ध्नि	मूर्ध्नि
११९	५	शब्द	शब्द
११९	११	शब्द	शब्द
१२०	९	भूमि	भूमि
१२०	११	मिथ	मिथ
१२१	१०	मानिह्वय	मानिह्वय
१२५	६	भम	भम
१२७	१५	शोकोच्छ्रय	शोकोच्छ्रय
१२८	४	शोभ्य	शोभ्य
१२९	११	तदन	तदन
१२९	८	शभ्य	शभ्य
१३३	१३	राषा	राषा
१३५	१५	य	य
१३८	१४	का नापटी	कानापटी
१४०	१८	या यामवस्था	यामवस्था

पृ०	प०	अगुड	गुड
३५०	१०	धम	धम
३५१	५	नाश्रुते	नाश्रुते
३५१	८	वशी	वशी
३५२	८	मृत्यना	मृत्यना
१५५	३	चन्द्रोज्ज्वला	चन्द्रोज्ज्वला
३५२	२३	द्रुमालय	द्रुमालय
३५७	२५	वक्त्रव्य	वैक्त्रव्य
३५८	२५	दूरत—	दूरत—
३६०	१	०नुलक्ष्या	नुलक्ष्या
३६२	७	चाटन्	चाटून्
३६२	८	नपा	नैपा
३६५	१७	विधय	विधेय
३६६	६	अतिकान्ती	अतिक्रान्ती
३७१	२२	प्रत्यभ्यज्ञास	प्रत्यभ्यनासी
३७८	११	माऽर्था०	मोऽर्था०
३८०	१८	पङ्क चनेवाला	पङ्क चनेवाला
३८१	२	मुनिके	मुनिके
३८३	५	ह	है
३८८	१३	वाद	बाद
३८८	अन्तिम	शाकल्पस्य	शाकल्पस्य
३८८	१	य	य



